प्रकाशक आत्माराम एण्ड संस
कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006

शाखा 17, अशोक मार्ग, लखनऊ

मोरिशस के लिए इंद्रधनुष रिसर्च फाउंडेशन
30, स्वामी दयानंद स्ट्रीट,
बोबासे, मोरिशस

मूल्य 250.00

प्रथम संस्करण 1936

द्वितीय संस्करण 1998

ISBN 81-7043-378-9

मुद्रक तरुण प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-110032

HINDOO MAURITIUS (Social History) by Pandit Atmaram Vishwanath
Introduction & Ed by Pahlad Ramsurrun

यह पुस्तक

भूतपूर्व पुलीस इन्सपेक्टर

स्वनाम धन्य

श्रीमान शिवशंकर घूरनसिंह

M. B. E. को

सादर समर्पित है।

लेखक पं० आत्माराम

# भूमिका

सन् १९३६ ईसवी मे प आत्माराम विश्वनाथ ने 'हिन्दू मोरिशस' ग्रन्थ की रचना करके मोरिशस के भारतवशियो का अभूतपूर्व गौरव बढाया था। यह ग्रन्थ कोई ४५० पृष्ठो का था। इसमे मुख्य रूप से देश के ऐतिहासिक मदिरों, समाज सचालको तथा समाजसेवको के पचपन चित्र आर्ट पेपर पर छपे है। सन् १९३५ ईसवी तक इस देश के भारतवशियो मे कोई प्रभावशाली राजनेता उद्भूत नही हुआ था, शायद इसीलिए इसमे कोई भी भारतवशी राजनेता का न चित्र छपा है और न ही किसी के राजनीतिक कार्यकलापो का उल्लेख हो पाया है।

'हिन्दू मोरिशस' ग्रन्थ श्रीमान शिवशंकर घूरन सिह एम बी आई (पुलिस इंस्पेक्टर) को समर्पित है। इसकी विषय सूची मे केवल तीन शीर्षक हैं शायद इसीलिए इस पुस्तक का मूल्यांकन अभी तक नही हो पाया है। इस ग्रन्थ मे भूमिका भी नही है। इसके प्रारम्भ मे 'भ्रम बिसरन' शीर्पक के अन्तर्गत पुस्तक के कलेवर मे आये नव भूलो का सुधार किया गया है। इस ग्रन्थ के मुद्रक एव सचालक थे एम. आई रावत, जिनका निवास १०, रेमी ओलिए गली, पोर्टलुई है। इसका मूल्य तीन रुपये था। इस ग्रन्थ के आवरण पर पुस्तक और लेखक दोनो के नाम अग्रेजी मे छपे थे। यह ग्रन्थ सजिल्द था।

वैसे इस ग्रन्थ मे हिन्दू मदिरो और हिन्दू सस्थाओ का इतिहास दिया गया है। किन्तु बारीकी से देखा जाए तो ऐसा लगता है कि इसमे प आत्माराम विश्वनाथ ने 'मदिरो एव सस्थाओ' के इतिहास के अतिरिक्त स्वतंत्र शीर्षको के अन्तर्गत दस-बारह उच्च कोटि के निबन्ध पेश किये है, जैसे— निचोड अर्थात आचार-विचार, मदिर आख्यान, सभा सोसाइटियाँ, सस्थाओ का स्वरूप,

हिन्दू समाज पर एक दृष्टि, पुस्तक लिखने का उद्देश्य, विरोध में शक्ति, मुसलमानो से शिक्षा, चित्र-रहस्य, ऋण की अदाई, हम और उपसंहार। अतः इस दृष्टि से यह ग्रन्थ हिन्दी साहित्य की श्रेणी मे भी एक महत्त्वपूर्ण कृति है।

## ग्रन्थ की विशेषता

इस स्थूलकाय ग्रन्थ मे प आत्माराम विश्वनाथ ने एक तरह से भारतवशियो के सौ साल के कष्टमय ऐतिहासिक अस्तित्व पर प्रकाश डाला है। यही नही, इसमे लेखक महोदय ने भारतवशियो के धार्मिक, सामाजिक एव सास्कृतिक अस्तित्वो पर अपना विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। ऐसा करते हुए उन्होने हिन्दुत्व के सिद्धान्तो पर भी अपना स्वतत्र विचार प्रकट किया है। हिन्दुत्व के जबर्दस्त विरोधिनी मिस मेयो के विरुद्ध अपना मत देकर उन्होने अपने गहन ज्ञान का परिचय दिया है। इसी मूल्यांकन के दौरान उन्होंने गिबन जैसे विश्वविख्यात इतिहासकार के ग्रन्थ 'रोमन साम्राज्य का उत्थान और पतन' का उल्लेख करके, गालिलेओ जैसे वैज्ञानिक के अनुसंधान का उदाहरण देकर, १७८९ की फ्रासीसी जनक्राति का जिक्र करके इस देश के भारतवशियो के मानस को झकझोरने की कोशिश की है।

प आत्माराम ने इस ग्रन्थ के माध्यम से भारत की ऐतिहासिक घटनाओ का उदाहरण देकर, यह प्रश्न किया है कि हमारी विरासत की श्रेष्ठ धार्मिक, सास्कृतिक और दार्शनिक परम्परा होने के बावजूद भी भारत कोई हजार वर्षो तक क्यो विदेशी जातियो के अधीनस्त शासित रही ? उन्होने हिन्दुत्व मे पाये जाने वाले विरोधी सिद्धान्त, जैसे— साकार-निराकार, अवतारवाद तथा धर्म और नीति के लक्षणो की मीमासा की है।

उन्होंने भारतवशियो की अशिक्षा से उद्भूत समस्याओ से उत्पन्न दुष्परिणामो का उल्लेख किया है। अतः आर्य समाज द्वारा चलाई जा रही कन्या पाठशालाओ की उपयोगिता को सराहा है। प आत्माराम ने त्रिनिडाड और रीनियन के हिन्दुओ के धार्मिक एव सास्कृतिक पतन का उदाहरण देकर मारिशस के भारतवशियो को सावधान किया है। उन्होने देश के नौजवानो

को शिक्षित होकर धर्म, जाति, भाषा और संस्कृति की रक्षा करने हेतु कार्यरत होने का आवाहन किया है।

पं आत्माराम ने १९३६ मे इस देश के भारतवशियो को धार्मिक क्रान्ति करने का आवाहन करते हुए कहा है—"मोरिशस मे यह धार्मिक क्रान्ति हमारे विचार से होनी चाहिए। क्रान्ति के नाम से डरने की कोई आवश्यकता नही।" उन्होंने गौतम बुद्ध, स्वामी शकराचार्य तथा स्वामी दयानन्द आदि द्वारा चलाए गये धार्मिक क्रान्तियो का उदाहरण देकर अपने गन्तव्य को पुष्ट किया है। किन्तु ऐसा करते हुए भी उन्होने फ्रास और रूस की खूनी जन-क्रान्तियो के विरुद्ध अपना स्वतंत्र विचार प्रकट किया है।

इसी प्रकार उन्होने आप्रवासी भारतवशियो के शताब्दी समारोह की चर्चा की है। यह समारोह दिसम्बर १९३५ मे दयानन्द धर्मशाला के भवन पोर्ट लुइस में सम्पन्न हुआ था। इस ऐतिहासिक महोत्सव के सबध मे भारतीय नेताओ का विचार प्रकट करते हुए कहा है—"महात्मा गाधी और सरोजिनी आदि ने सलाह दी कि शताब्दी के दिन, उत्सव के रूप मे मनाने की कोई आवश्यकता नही है, किन्तु उस विषय की एक पुस्तक लिखी जाए। परन्तु यहाँ के नवशिक्षित लोग इस विचार से सहमत नही हुए और उन्होने शताब्दी तिथि मनाने का आग्रह किया। उन्होने स्वामीनाथन को बुलाया और शताब्दी-उत्सव किया। भारतीयो को मोरिशस मे आकर बसे सौ साल हो गए। उसके उपलक्ष्य मे एक शिला स्तंभ का अनावरण किया गया। यह विधि मद्रास की 'इडियन कोलोनियल सोसायटी' के अधिकृत प्रतिनिधि श्री टी. के स्वामीनाथन बी ए द्वारा हुआ था। यह स्तम्भ आर्य परोपकारिणी सभा की भूमि मे खडा किया गया है। २९ दिसम्बर १९३५ को रविवार के दिन दिवसकाल मे यह अनावरण विधि निष्पन्न हुआ था। अग्रेजी, हिन्दी, उर्दू और तामिल आदि भाषाओ मे स्तभ की चारो ओर शताब्दी सम्बन्धी लेख खुदे हुए हैं। उपर्युक्त भाषाओ मे व्याख्यान हुए, बच्चो का राष्ट्रगीत हुआ और कुछ सगीत के बाद समस्त कार्यक्रम तीन घटे मे समाप्त हुआ। दो-तीन हजार मनुष्यो की उपस्थिति थी। इस शताब्दी के सम्बन्ध मे दो पुस्तके प्रकाशित हुई है। एक फ्रेच भाषा मे जिसके लेखक श्री अनत बिजाधर है

और दूसरी अग्रेजी मे है जो कि अनेक लेखो का संग्रह है और जिसका सम्पादन श्री बुधन ने किया है।"

इस ग्रन्थ मे प. आत्माराम ने भारतवशियो के उत्थान के जिम्मेवार हिन्दुत्व की रीढ का विशेष रूप से उल्लेख किया है ओर उसके चार हाथो का जिक्र करते हुए कहा है कि मारिशस मे हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज को मूर्त रूप देने वाले चार हाथ है। पहला हाथ है रामायणी लोगो का, अर्थात सनातनियो का जिन्होंने भगवान, झडी, धोती, रामायण, बाबाजी, कथा आदि का सहारा लिया है। दूसरा हाथ है आर्य समाज का जिसके अनुयायियों ने जर्मनी के महान् सुधारक मार्टिन लूथर के समान सुधारक स्वामी दयानन्द के वैदिक सिद्धान्तो का प्रचार करके, हिन्दुत्व के कलेवर से पाखण्ड और अंधविश्वास को चुनौती देकर मिटाने का प्रयत्न किया है। इसी प्रकार वह तीसरा हाथ है शेकसपियर के भक्तो, अर्थात अग्रेजी और फ्रेंच पढे-लिखे नौजवानो का जिन्होंने सारे पुराने और सडे-गले सिद्धान्तो को फेककर आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज को कुछ नया उपहार देना चाहा है। और वह चौथा हाथ है यहाँ की प्रतिकूल परिस्थिति और सभ्यता है (यहाँ क्रियोल और यूरोपीय सभ्यता का सकेत है) जिसके प्रभाव मे आकर बहुत से भारतवशी नौजवान और नवयुवतियाँ अपने पैतृक विरासत से बिछुडने लगे है। अतः मूल रूप मे देखा जाए तो प आत्माराम ने इस महान् ग्रन्थ के जरिए, यहाँ के हिन्दुओ के सर्वांगीण उत्थान पर अपने सुधारवादी विचारों एव सिद्धान्तो को लेखबद्ध किया है।

इस ग्रन्थ मे भारतवशियों के धार्मिक जगत के दो अग्रगण्य पुरुषो के कार्यकलापों पर सारगर्भित सामग्री देकर प आत्माराम ने भावी इतिहासकारो का मार्ग प्रशस्त किया है। वे है प सजीवन लाल और खेमलाल लाला। एक ने सनातनी धर्मावलम्बियो को एक स्वस्थ दिशा दी है तो दूसरे ने आर्य समाज आदोलन की आवाज की बुलन्दी की है। प सजीवन लाल ने त्रियोले के ऐतिहासिक शिव मदिर का निर्माण करके, वही से शिवरात्रि के अवसर पर प्रथम बार परीतालाब की यात्रा शुरू की। इसके विपरीत खेमलाल लाला ने किसी बगाली सिपाही की दी हुई महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थ

प्रकाश की प्रति को पढकर इस देश मे आर्य समाज का प्रचार प्रारम्भ किया था। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में रोसबेल के शिव मंदिर के निर्माता स्वर्गीय दुःखी गगा के जीवन पर विस्तार से प्रकाश डाला है। पोर्टलुई शहर के विष्णु क्षेत्र मदिर पर भी बडी दुर्लभ और उपयोगी सामग्री दी है।

इस ग्रन्थ मे लेखक महोदय ने १८९८ से १९३६ के बीच भारतवशियो द्वारा स्थापित सस्थाओ की एक लम्बी सूची दी है। इसके अतिरिक्त संस्थाओं के इतिहास प्रकरण मे मोरिशस आर्य सभा (आर्य परोपकारिणी सभा) हिन्दू महासभा, गीता मण्डल, आर्य प्रतिनिधि सभा, आर्य रविवेद प्रचारिणी सभा तथा हिन्दी प्रचारिणी सभा आदि का इतिहास विस्तारपूर्वक दिया है।

'हिन्दू मोरिशस' ग्रन्थ का लेखन तब हुआ था जब पं. वासुदेव विष्णुदयाल का आगमन नही हुआ था। पं आत्माराम ने इसमें 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग संकुचित अर्थ मे न करके, एक व्यापक अर्थ मे किया है और इसके अन्तर्गत मोरिशस के सम्पूर्ण भारतवशियों को समावेश किया है।

## ग्रन्थ की कुछ कमियाँ

इस ग्रन्थ मे कुछ कमियाँ रह गई है जिनकी ओर संकेत किया जाना आवश्यक है। यद्यपि इसमे १९. . में हुए महर्षि दयानन्द के जन्मशती-समारोह तथा मेहता जैमिनी के प्रचार कार्य का ज़िक्र हुआ है तो भी इसी समय मे आये भारत के प्रतिनिधि कुँवर महाराज सिंह के आगमन और उनकी ऐतिहासिक रिपोर्ट का उल्लेख नही हुआ है। याद रहे कि इसी प्रतिवेदन के सिफारिशो से भारतीय मज़दूरो का यहाँ आना बन्द हो गया था।

इस देश के भारतवशियो के इतिहास मे १९२५ वर्ष का महत्त्व इसलिए अति अधिक है क्योकि स्वामी दयानन्द की जन्मशती समारोह, मेहता जैमिनी का प्रचार कार्य तथा कुँवर महाराज सिंह के प्रतिवेदन के छपने से नवजागरण का जो चिह्न नजर आया था, उसी के परिणामस्वरूप जनवरी १९२६ के आम चुनाव मे भारतवशियो के दो सुपुत्रो की जीत सभव हो पायी थी। श्री धनपत लाला ग्रानपोर्ट ज़िले से निर्वाचित हुए थे और राजकुमार गजाधर फ्लाक ज़िले से चुने गये थे। यह राजनीतिक सफलता भारतवशियो की सबसे महत्त्वपूर्ण

उपलब्धि थी। इससे उनका राजनीतिक हौसला बुलन्द हुआ था। ऐसे महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना का उल्लेख होना चाहिए था।

*'हिन्दू मोरिशस'* मे भारतवशियो के राजनीतिक कार्यो का अकन नगण्य है। शिवधारी भगत इस देश के सर्वप्रथम भारतवशी थे जिन्होने १९०६ के आम चुनाव मे प्लेन विलियेम्स जिले से चुनाव लडा था। इसी तरह १९११ मे बुधन लाला ने पाम्पलेमूस जिले से और एस दासाय ने मोका ज़िले से चुनाव लडा था। इसी प्रकार १९२१ मे भारतवशियो का प्रथम बैरिस्टर रामखेलावन बुधन ने ग्रानपोर्ट जिले से आम चुनाव लडा था। किन्तु १९२६ से पहले समस्त भारतवशी उम्मीदवार गोरे उम्मीदवारो से चुनाव हारते आये थे। रामखेलावन बुधन को १९२१ मे ही सरकार ने मनोनीत सदस्य के रूप मे सरकारी काउसिल का सदस्य बनाया था। १९३१ के आम चुनाव मे कोई भी भारतीय उम्मीदवार निर्वाचित नही हुआ था। तब सरकार ने राजकुमार गजाधर को नामज़द करके काउसिल का सदस्य बनाया था। लगभग ऐसी ही स्थिति १९३६ तक बनी रही।

यद्यपि १९३५ के उत्तरार्द्ध मे डा शिवसागर रामगुलाम विलायत से डाक्टरी की उपाधि लेकर लौटे थे और तभी से उनका सामाजिक और राजनीतिक कार्य शुरू हो गया था, तथा फरवरी १९३६ को डा कीरे ने मजदूर दल की औपचारिक स्थापना की थी, तो भी ये दोनो घटनाएँ अभी इतिहास का रूप नही धारण कर पायी थी शायद इसीलिए इनका उल्लेख 'हिन्दू मोरिशस' मे नही हुआ है। किन्तु इन सबके बावजूद दिसम्बर १९३५ मे आप्रवासी भारतीयो की शताब्दी समारोह के उपलक्ष्य मे विभिन्न लेखको द्वारा लेखो का जो सग्रह छपा था, उसमे डा शिवसागर रामगुलाम का ऐतिहासिक लेख 'आप्रवासियो की सन्ताने' छपा था। उसमे डा रामगुलाम का राजनीतिक दर्शन परिलक्षित होता है जिसको साकार करने के लिए, आगे चलकर डा रामगुलाम भारतवशियो के साथ-साथ मज़दूर दल के नेता बने थे। और एक लम्बे राजनीतिक सघर्ष के बाद उन्होने १९६८ मे मारिशस को आजाद किया था, फिर चौदह वर्षों तक प्रधानमत्री और अन्त मे गवर्नर जनरल बनकर मृत्युपर्यन्त मोरिशस का नेतृत्व किया था। इसीलिए आज

उन्हे मोरिशस के राष्ट्रपिता होने का सौभाग्य प्राप्त है।

'हिन्दू मोरिशस' के प्रथम संस्करण मे भारतवंशियो के प्रथम, द्वितीय और तृतीय राजनेता, बैरिस्टर रामखेलावन बुधन, राजकुमार गजाधर और डा शिव सागर रामगुलाम के चित्र नही छपे थे। इस सस्करण मे इनके चित्र प्रकाशित किये जा रहे है। साथ-साथ भारतीय प्रतिनिधि कुँवर महाराज सिंह के चित्र भी सम्मिलित किये जा रहे है जिनके प्रतिवेदन छपने पर भारतीय मजदूरो की शर्त बद-प्रथा हमेशा के लिए वंद हो गई थी।

## ग्रन्थ का अभूतपूर्व स्वागत

प आत्माराम विश्वनाथ के अद्भुत ग्रन्थ 'हिन्दू मोरिशस' की समालोचना १८ जून, १९३६ को स्थानीय 'मोरिशस आर्य पत्रिका' पर छपी थी। समालोचक थे प्लेन मार्यों के निवासी शिवनारायण लालजी उन्होने इस ग्रन्थ की प्रशंसा करते हुए लिखा था—"हमे भूलना नही चाहिए कि इस देश में पडित, विद्वान, चतुर्वेदी, त्रिवेदी, द्विवेदी, एकवेदी, भगवती आदि उपाधिधारी हुए है, परन्तु आज तक किसी को साहस नही हुआ कि इस तरह की पुस्तक लिखकर जनता के सामने रख दे। परन्तु प आत्माराम ने मोरिशस में पहली बाजी मार ली है। 'मोरिशस का इतिहास' और 'हिन्दू मोरिशस' ये दो अद्भुत पुस्तके पडितजी के स्मारक रूप मे चिरकाल तक रह जायेगी।"

इस ग्रन्थ के प्रकाशित होते ही पं आत्माराम को बधाइयाँ और उपाधियॉ मिलने लगी। २७ अगस्त, १९३६ को 'मोरिशस आर्य पत्रिका' में एक सूचनात्मक लेख छपा था जिसमे पं आत्माराम को हिन्दुओ का महा-पुरोहित की उपाधि समर्पित की गई थी, 'हिन्दू आर्क बिशप ऑव मारिशस'। यह उपाधि फ्लाक निवासी, दानवीर श्री हनुमान बिसेसर ने 'आर्यवीर' साप्ताहिक की ओर से पडित आत्माराम को प्रदान की है। उनके इस सम्मान के लिए हम प आत्माराम को बधाई देते है। शर्मा, वर्मा की उपाधियाँ आजकल घर-घर मे हो गई है। किन्तु 'महामहोपाध्याय' जैसी नई उपाधि भारत से अभी नही आई है और यूरोपियन सभ्यता की आजकल सर्वत्र चलती है। इसीलिए वैसी उपाधि से पडितजी को विभूषित किया गया है। यह उचित

भी है। प आत्माराम सुधारवादी और नई सभ्यता के पोषक है और उनकी वेशभूषा भी उनके अनुकूल ही रहती है। अतः दाता और ग्रहणकर्ता दोनो के औचित्य की हम प्रशसा करते है।

इसके बाद विदेशी विद्वानो और लेखको के प्रशसात्मक पत्र लेखक को मिलने लगे थे। हिन्दी प्रचारिणी सभा के मत्री एस एम भगत ने 'हिन्दू मोरिशस' की अनेक प्रतियाँ खरीदकर भारतीय विद्वानो को भेट की। इस पर उन्हे अमरीका के निवासी डा सुरेन्द्रनाथ बोस का तथा भारत के घनश्याम दास बिडला के प्रशसात्मक पत्र मिले। दक्षिण अफ्रीका से स्वामी भवानीदयाल ने लिखा था—"आपकी तारीख ८ अगस्त, १९३६ की चिट्ठी मिली और 'हिन्दू मोरिशस' की एक प्रति भी। एतदर्थ आपको धन्यवाद। मैने सरसरी दृष्टि से यह पुस्तक देख ली है। मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आजकल के प्रवासी हिन्दी साहित्य मे यह बहुमूल्य अभिवृद्धि है। मै आपके लेखन की प्रशंसा करता हूँ।"

इसी प्रकार से 'सरस्वती' और 'सुधा' जैसे विख्यात हिन्दी पत्रो के सम्पादको ने भी 'हिन्दू मोरिशस' की प्रति-प्राप्ति को स्वीकारते हुए पुस्तक की और एक-एक प्रति की माँग की, जिससे वे भी उसकी समालोचना प्रकाशित कर सके। एस एम भगत ने उक्त स्थानीय पत्रिका के दूसरे अक मे 'हिन्दू मोरिशस' ग्रन्थ पर 'प्रताप' दैनिक द्वारा की गई समालोचना प्रकाशित करने का विचार प्रकट किया था।

भला जिस पुस्तक को इतना सम्मान मिले, वह साधारण पुस्तक नही हो सकती। इस तथ्य को ध्यान मे रखकर प आत्माराम की अनमोल कृति 'हिन्दू मोरिशस' का पुनर्मुद्रण किया जा रहा है। इसकी ऐतिहासिकता बनाये रखने के लिए इसके सम्पादन की आवश्यकता नही समझी गई है। इसमे भूमिका और सारगर्भित विषय सूची जोडी गई है। आशा है, इस प्रयास के जरिए आने वाली पीढी को यहाँ के भारतवशियो के विकासात्मक जन-जीवन की वास्तविक स्थिति की जानकारी होगी।

२० अप्रैल, १९९८ —*प्रह्लाद रामशरण*
बोबासें, मोरिशस

# चित्र-सूची

# विषय-सूची

# भ्रम निरसन

व्याकरण की भूलों के संबंध में इस पुस्तक के निचोड के अत मे, जो कहना चाहिए, वह हमने गिडगिड़ाकर कह दिया है। परन्तु जहाँ भ्रम उत्पन्न होने का संभव है, उसके निरसन के लिए ही पाठक निम्नलिखित भूल-सुधार पढ़ने की कृपा करें। ये भूल सुधार केवल अंको के है।

पन्ना ३४ पर 'मुसलमान ४१ २/३' की जगह ६०० पढें।

पन्ना ७० पर '५७ हिन्दू संस्थाएं' की जगह ६३ पढे।

पन्ना ७१ पर 'सन ८७४' की जगह १८७४ पढ़ें।

पन्ना १९२ पर '४६ साल बाद अर्थात १८०५' की जगह १० साल बाद अर्थात १७६९ पढ़ें।

पन्ना २०२ पर '४०' की जगह ६० पढे।

पन्ना २६० पर प. देवदत्त शर्मा के बांचे हुए भागवत की लगभग ११०० रुपयो की आय पढें।

लेखक के चित्र के नीचे RT की जगह PT पढें।

Mr S Ghoorun M B E , retired Inspector of Police and President of the Kshatreeya Maha Sabha

# निचोड़

मोरिशसके सर्वसाधारण हिन्दू लोगोंके लिए यदि कोई कुछ लिखना या कहना चाहे, तो वह केवल एक ही विषयमें वैसा कर सकता है, और वह विषय है धर्म।

हिन्दुओंको अपनी मातृ भूमिसे बिछडे, इस द्वीपमें १०० वर्ष हो जानेपर एवं सर्वथा विपरीत परिस्थितिमें रहते और झगडते वे अब तक अपने धर्मसे विमुख नहीं हुए हैं, यह एक हिन्दू धर्मावलंबियोंके लिए अवश्य ही गर्वकी बात हो सकती है। पर यह भी जानना चाहिये, कि उनका धर्म क्या है?

धर्म किसको कहते हैं? धर्म शब्द कैसे बना है? धर्म शब्दका धातु धृ है, और उसका अर्थ है, धारण करना, याने स्वीकारना आदि बातों पर हम यहां चुप साध लेते है। धर्म शब्दकी जड़, उसका धड, शाखा, पत्ता, फूल फल या विस्तार इत्यादि बातोंपर हम लिखना नहीं चाहते है. और वह विषय भी हमारे लिए गहन है। धर्म शब्दका आज जो प्रचलित और रूढ अर्थ है, अर्थात, जिन-जिन बातोंको और क्रियाओंको धर्मके नामसे पहचाना जाता है, उसीके सम्बन्धमें हम लिखते है।

पुस्तकोंकी बाते पुस्तकोंमें। मोरिशसमे धर्मग्रन्थोंका अभ्यास करेने वाले तथा उनकी आज्ञाओंका पालन करने वाले कौन है, हमको मालूम नहीं। खुद भारतमें ही यह दशा है। परम्परा या आचार-धर्मके पालन करनेमे एक हिन्दू निजको कृत कृत्य मान लेता है यह

हम प्रति दिन देखते हैं। विहारी हिन्दू, महावीर स्वामीकी घर-घर झंडी उडाते हैं। परन्तु किस मान्य धर्म-ग्रंथके आधारपर वे वैसा करते हैं, मालूम नहीं। गुजराती, तामील, मराठी, पंजाबी, सिंधी आदि हिन्दू जातियां झंडी नहीं उड़ाती हैं। धर्म पुस्तकोंमे झंडी उड़ाने का विधान हो या न हो; मर यह तो निश्चित है, कि झंडी उड़ाना विहारियोंका एक आचार-धर्म हो गया है। पैर लावाल और पीर-पूजाके लिए कहां प्रमाण है ? इसी प्रकारकी चली चलाइ और देखा देखी प्रथाओंको लोगोंने धर्म मान लिया, और पुस्तकोंमे लिखा हुआ धर्म, उन्हीमें रह गया। अन्य धर्मवालोंके आचारोंको देखनेसे हमारे आचारोंका स्वरूप स्पष्ट रीतिसे देखनेमे आएगा। दोनोंको साथ रखनेसे उनके गुण दोषोंको समझना भी सुलभ होगा। इसी पद्धतिका हमने अवलंबन किया है। अर्थात चीना, इसाई और मुसलमान आदिकोंके उदाहरण देकर हमारे आचार-धर्मकी मीमासा करना हमने ठीक समझा है।

वेदमें ऐसा लिखा है, गीतामें वैसा कहा है, यह मनुस्मृतिका श्लोक है और वह रामायणकी चौपाई है आदि प्रमाण देकर पाठकोंको वे ग्रंथ ढूंढनेके कष्ट देना हम उचित नहीं समझते। इन धर्म ग्रंथोंमे वे प्रमाण पाने पर शायद कोई यह भी आपत्ति ला सकेंगे, कि उनके अर्थ झूठे या गलत हैं। फिर दूसरा झगडा खडा हो जाएगा। सच्चा अर्थ करनेके लिए एक निःपक्षपाती विद्वान न्यायाधीश खोजना पडेगा। यह सब हो जानेपर कोई महाशय यह भी बता देंगे, कि पराशर स्मृतिमें वह बात लिखी है और धर्म सिंधुमे वह बात आई है। है भी ठीक। हमारे सैकडों पुस्तक हैं और सबोंको हमे मानना ही चाहिये। इस प्रकार टंटा बढता ही जाएगा। इन पुस्तकीय झंझटोंसे छुटकारा पानेका सरल मार्ग प्रत्यक्ष प्रमाण ही एक है। घडी भरके लिए इन

पुस्तकोंको अलमारीमें बन्द करके हम आगे बढते हैं। आचारको हम लोगोंने धर्म माना है और अन्य धर्मवाले उसको केवल तरकारीका मसाला मानते हैं। इतना दूसरोंमे और हमारोंमें जमीन आस्मानका फरक है। इस बातको हम हमारे पडोसी चीनी प्रजाके उदाहरण द्वारा विशद करते हैं।

हम देखते हैं कि एक चीना मोरिशसमें आते ही कुछ समयके बाद एकदम काया पालट करके, मानों कि किसी दूसरी ही योनीमे प्रवेश कर जाता है। पुरुषोंने तो एक ही दिन अपनी लम्बी चोटिया काटकर उनकी होली बना डाली। २५ वर्ष पूर्व चीन देशमें जब प्रजा सत्ताक राज्यकी स्थापना हुई थी, तब की वह बात है। मांचू नामकी एक विदेशी जाति चीनपर राज्य करती थी। ये लोग मद्रासी लोगोंके समान सिरपर लंबे बाल रखते थे। अपनी विजय और राज्यके चिन्ह स्वरूप अपनी चोटीको याने उस केश धारण प्रथाको भी मांचू राजाओंने चीनी प्रजाके सिर पर लाद दिया था। धीरे-धीरे चोटीका प्रचार हुआ और कालान्तरमें स्वयं चीना लोग ही उसे सनातन मानने लगे।

इस बीसवीं सदीके आरम्भमे, चीनमें मांचू राज्यके विरुद्ध आन्दोलन शुरू हुआ और उनके राज्यके साथ चीनाओंकी सनातनी चोटीको भी गुलामीका एक चिन्ह समझकर काटकर फेक दिया गया। चीना सनातन वादियोंने धर्मकी दुहाई देकर विरोध करनेमे कुछ बाकी नहीं रखा था; पर देश भक्तोंने लोगोंका मुण्डन संस्कारकर ही डाला!! अब उनकी स्त्रियां भी अपने बाल काटकर नये जमानेकी दीक्षा हमारी आंखोंके सामने ले रही हैं।

चीनाओंके पुराने तेलिया कपडे अब देखनेमें भी नहीं आते हैं। उनकी स्त्रियोंका पायजामा भी लुप्त होने लगा है। सनातन रीति

रवाजोंको छोड देनेमें उनको संकोच तो होता ही नहीं; किन्तु नयी सभ्यता (संस्कृति) का स्वीकार करने में भी उनका दिल नहीं हिचकता है। शादी विवाह, पोशाक, खान पान, भाषा, रहन सहन, काम धंधा आदि हर एक बातमें वे युरोपियनोंकी बराबरी कर रहे हैं। इतना ही नहीं; किन्तु उनकी औरतें भी गलेमें और कमरमें हाथ डाल कर पर पुरुषोंके साथ खुल्लम-खुल्ला नाचने लगी है। डाक्टर आचम की बेटी कुमारी योमान्दका वायोलिन वाद्यमें हाथ पकडने वाली मोरिशसमें और कौन स्त्री है? देखे तो सही, हमारी हिन्दी स्त्रियोंमें कोई माईकी बेटी है, जो बाल कटवाकर जरा नाच कर बता दे।

हमारे लिए इस में आश्चर्यकी बात यह है, कि घरेलू हिन्दू कीडे, चीनाओंकी इन बातोंकी प्रशंसा करते हैं, और उनकी तरक्कीका आदर्श हिन्दुओंके सामने रखते हैं।

चीनाओंकी संख्या यहां नौ हजारसे अधिक नहीं है; पर मोरिशस की तमाम दुकानदारी उन्हींके हाथोंमें है। यह एक ही दृश्य उनकी चढ़ाईका साक्षी है। अब प्रश्न यह उठता है, कि चीना लोग यह सब कुछ किस तरह कर सकते हैं और हिन्दू लोग नहीं? इसका उत्तर यही है, कि समयानुकूल अपने आचारोंमें बदल करनेमें तथा नयी बातोंके ग्रहण करनेमें चीना लोग पाप नहीं मानते, और हिन्दू लोग अपनी रूढियोंको इस तरह चिपके रहते हैं, जैसे कि जूं चमड़ीको!

हिन्दुओंका धर्म उनके आचारोंमें समाया हुआ है। धोती पगडी लपेटना, नीचे बैठकर उंगलियोंसे खाना, पावलगी करना, बैठकर लघुशंका करना, पीतलके लोटेमें से ही पानी पीना, सिंदूर लगाना, खस्सी देना, झंडी उडाना, जल चढाना, स्त्रियोंको ढांपना, विवाह-वस्त्र हलदीमें रंगाना, मोर, पाटमौरीसे मुख तोपना और मरनीमें मुंड मुण्डाना आदि हिन्दुओंका उठना, बैठना, खाना, पीना, रहना, पहन-

ना सब कुछ सम्पूर्ण जीवन ही जनमसे मरण पर्यंत आचार-धर्म की शृंखलासे ऐसा बंधा हुआ है, कि उसको तोडना जानों कि धर्म-भ्रष्ट होना है।

हिन्दू धर्म, अन्य धर्मोंके समान नहीं है। ईसा तथा बायबलको मानो और निश्चित समयपर गिरजा (ईसाई मंदिर) में जाकर प्रार्थना करो और पादरीका उपदेश सुनो। इतना करने पर कोई भी मनुष्य ईसाई कहला सकता है। उसी प्रकार एक ईश्वरको मानो महम्मद को उसका प्रेषित (भेजा हुआ) मानो तो कोई भी मनुष्य, मुसलमान कहलवानेका अधिकारी हो जाता है।

हिन्दुओंमें भी यदि धर्मका सिद्धान्त ऐसा ही अल्प, सरल और सहज बुद्धि गम्य होता अर्थात, वेदादि पुस्तकोंको मानना और मंदिर में जाकर पूजा पाठ करना और उपदेश सुनना, तो हम भी आचारों को धर्म नहीं मानते और बिना रोक टोकसे समयके अनुकूल उसमें फरक करते रहते। परन्तु आचार ही धर्मका प्रधान अंग बन जानेसे हिन्दू लोगोंको उसमें परिवर्तन करना मानों धर्मसे पतित होना ही मालूम होता है। रामकृष्णको मानना चाहिये और धोती पगडीको भी! पीतलको भी मानना चाहिये और आमके पत्तेको भी! इसी को आज कलके लोगोंने धर्म समझ रखा है।

अन्य धर्म, मनुष्यके नित्यके व्यवहारमें हस्तक्षेप नहीं करते। खान पान, रहन सेहन आदि बातोंमें अन्य धर्मोंमें मनुष्य स्वतंत्र है। परन्तु हिन्दूको वह स्वातंत्र्य नहीं है। सुधारवादी आर्य समाजको भी जब हम देखते हैं, कि वे भी घी की आहुति देनेके लिए आमके पत्ते की खोजमें दौडते फिरते हैं, अथवा वधुवरोंको पूर्वाभिमुख बैठाने पर ही डटे रहते है, तब पौराणिक हिन्दुओंके लिए कहना ही क्या? तात्पर्य यही है कि, हिन्दू चाहे पुराणमतवादी हो अथवा नवमत

वादी, सूर्यकी परिक्रमणा करती रहनी वाली पृथ्वीके समान; अपनी परम्पराकी गरदिशमें ही फिरा करता है।

इस बाहरी आचारोंसे बाबाजी और यजमान दोनोंका कुछ लाभ भी हुआ है। आचमन करो, नाक दाबो, कान पकडो, पानी छोडो, स्वाहा बोलो, फूल चढ़ाओ और घंटी बजाओ आदि विधि करा देनेसे बाबाजीकी जीविका चली जाती है एवं यजमान भी संतुष्ट रहता है। अब वेद शास्त्रका मुखमें अभ्यास करनेकी आवश्यकता ही क्या है ?

लगभग १५० वर्ष पूर्व युरपके विद्वानोंके परिश्रमसे वेद लिखे गए। तब तक वे ब्राह्मणोंके मुखमे ही रहते थे। "ब्राह्मणोस्य मुख मासीत" यह वेद मंत्र आज कल बहुत लोग जानते है। ब्राह्मण उसका मुख है, और ब्राह्मणके मुखमें वेद है। बस दूसरोंके मुखमे वे जाय कैसे और लोगोंको उसका ज्ञान हो कैसे ? ईसाईयोंके शंकराचार्योंने (पोप) लगभग एक हजार वर्ष तक बायबलको इसी प्रकार अपने बाबाजीके मुँहमें रख दिया था। सर्वसाधारण जनताको उसे पढ़ने का अधिकार नहीं था। हमारे समान ही अपने यजमानोंको आचार-धर्म की मुट्ठीमें उन्होंने रखा था। पाद्रीके कथनको "बाबा वाक्यं प्रमाणं" मानो तथा घंटा, मोमबती और धन द्वारा मोक्ष-प्राप्ति कर लो। इतना ही उनको बतलाया जाता था। विख्यात अंग्रेज लेखक गिबनने अपने सुप्रसिद्ध इतिहासमें (*The decline and fall of the Roman Empire*) अर्थात (रोमन सम्राज्यका ह्रास और पतन) कतिपय पोपों की करतूतोंका कुछ वर्णन दिया है। पाद्री शिनिक्रीने (*Chiniquy*) अपनी पुस्तकमें (*The Priest, the women and the confessional*) (पाद्री, औरत और पाप विमोचन) जान, आलेक झाण्डर आदि पोप एवं मारो क्रिया, थिओडोरा आदि वेश्याओंके कर्मोका जो इतिहास

दिया है, उसके पढनेसे यही प्रतीत होता है, कि रोमकी साधु पिटर की गद्दीपर शैतान विराजमान हो गए थे। कहा निष्कलंक ईसा और कहां वे उसके कलंकित प्रतिनिधि पोप ? पोप संप्रदायकी निन्दा होने लगी और नये पंथ निकलने लगे। पोपोंने उनपर हथियार चलाया। Inquisition Courts (धर्मापराध अदालतें) द्वारा पोप और उनके हस्तकोंने हजारों स्त्री पुरुषोंको तलवार, फासी और आगसे मार डाला और लाखोंका जीवन नष्टकर छोडा। वे सर्व शक्तिमान पोप राजा महाराजाओंको उनके सिंहासनोंपरसे उतार देते थे तथा चढा भी देते थे। बायबल ही उनका ज्ञान-संग्रह था। जो उसमे नही वह सब झूठ और गलत समझा जाता था। जैसे कि हम हमारे वेद पुराणादि धर्म पुस्तकोंको मान रहे है। विचार और विज्ञानके तो वे वैरी थे। पृथ्वी स्थिर नहीं है; किन्तु वह घूमती रहती है, ऐसी घोषणा करनेके कारण जग विख्यात ज्योतिषी गालिलियोको उस समयके पोपने जेल बता दिया था। (बायबलमे पृथ्वीको स्थिर माना है)

ज्ञानको कौन मर्यादा डाल सकता है ? जर्मनीके मार्टिन लूथरने (हमारे स्वामी दयानन्द) प्रोटेसटन्ट नामक नए पंथकी स्थापनाकी। पोप प्रथाका धिक्कार होने लगा। बायबलका अभ्यास होने लगा और लोगोंकी आखे खुलने लगी। यह पोप संप्रदाय ही हमारे समस्त क्लेशोंकी जड है, इस विचारसे फ्रान्स देशकी प्रजाने अठारहवी शताब्दीकी राज्य-क्रान्तिमें लगभग ३०,००० पोपीय पाद्रियोंको तलवार के घाट उतारा।

पोपकी सत्ता इस समय नाम मात्रकी रह गई है। इटलीके सर्वाधिकारी मुसोलिनीकी कृपासे उनको एक छोटासा गाव मिला है। अब वे किसीको आगमें जला नहीं सकते; किन्तु ज्ञान-विज्ञानकी प्रखर अग्निमें स्वयं ही जल रहे है।

एशिया देशमें लोकहितके मंदिर, पाठशालाएं बन गये हैं, या सिनेमा, होटेल आदि द्वारा जन सेवा कर रहे हैं। ईश्वरार्थ जिये तो वहां स्थान ही नहीं रहने दिया है। पोपको पूछता ही कौन है? धर्मको वहां अफीम समझते हैं!!

युरपकी हानियां इतनी नहीं थीं। अपने पुरुषार्थसे उन्होंने सांप्रदायिक, अर्थात, आचार-धर्मके विरुद्ध दलवा मचाया और उसमें विजय पाई। इतिहास-वेत्ताओंका कथन है कि एक हजार वर्षसे अधिक समय तक युरप अंध कूपमें पड़ा हुआ था *Dark Ages* याने 'काला युग' के नामसे वह समय इतिहासमें मशहूर है।

ये कॅथोलिक ईसाई एक समय आचार-धर्मके जालमें कैसे फंसे हुए थे, उसका एक मजेदार नमूना हम हमारे पाठकोंकी सेवामें पेश करते हैं। उनके एक होली कम्युनियन (Holy Communion) नामक संस्कारमें जीसस-क्रैस्ट-का मांस और रक्त, रोटी और मद्य के रूपमें प्रसादीके तौरपर खाया जाता है। उनका एक पंथ खमीरकी रोटी (जैसे ईस्ती फूली हुई) काममें लाता था और दूसरा पंथ बिना खमीरकी मामूली रोटीका उपयोग करता था। एक समय था कि रोटी जैसे अर्थशून्य विषयपर वे लड़ पड़ते थे। आज भी वे रोटीका उपयोग करते हैं; पर अब झगड़ते नहीं हैं। रोटीको जेसीका मांस मानकर हमारी प्रसादीके समान थोड़ीसी खा लेना यह मुख्य विधि है अब वह रोटी खमीरकी हो अथवा बिना खमीरकी उसमें बिगड़ा ही क्या? पर उस समयके ईसाइयोंके पोपोंमें उतना विचार नहीं था; हमारे समान ही वे आचार-धर्ममें अधिक श्रद्धा रखते थे। ऐसी ही बातोंसे उनमें अनेक पंथ हुए, जो एक दूसरेको शत्रुवत समझते और आपस ही में कट मरते थे। उसीसे उनकी शक्ति क्षीण हुई थी। ईसाई धर्म, आचारोंके व्यर्थ आडंबरमें न फंसा हुआ होता तो शायद
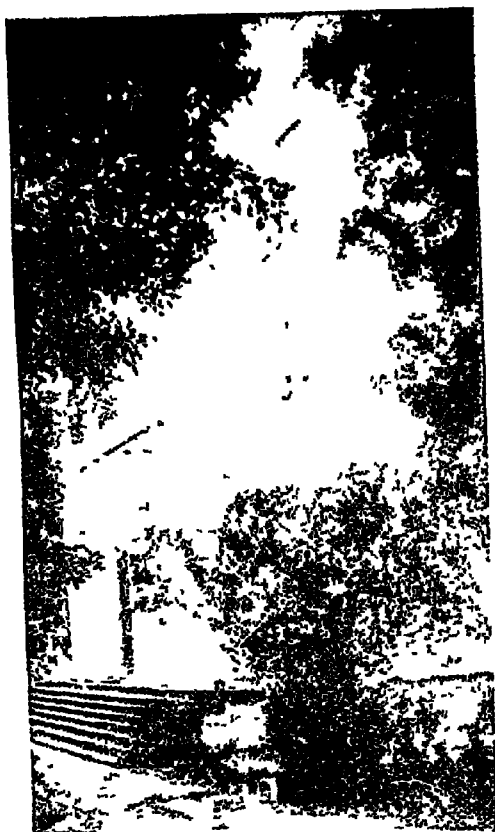
Maheshwarnath temple of Triolet.Photo by the kindness of
Mr. Ranchchodjee G Desai Merchant, Port Louis

रोमण साम्राज्यमे इस्लामका उतनी शीघ्रतासे फैलाव भी न होता। संसारका १७०० वर्षका पुराना महाप्रतापी रोमन साम्राज्य, जिन कारणोंसे नष्ट हुआ; उनमें ईसाई आचार-धर्म भी एक प्रमुख कारण है। इस्लामकी तलवार गरदनपर आ रही है, और उपरोक्त रोटीके लिए वे अंधे क्रिश्चयन आपसमें ही लड रहे हैं !! यह कैसा दृश्य है ? हिन्दुस्थानमे भी ऐसा ही हुआ है।

इस प्रकारके आचार-धर्मका जबरदस्तीसे पालन करानेमें पोपोंने क्या क्या किया, यह ऊपर हमने बतलाया ही है। हिन्दुस्थानके शंकराचार्योंने वैसे अमानुष अत्याचार नहीं किये हैं, जिससे जनताने कभी उनका तीव्र विरोध नहीं किया है। हिन्दुओंकी लापरवाही और नरम स्वभावका यह एक उत्तम सोलह आना प्रमाण है। धर्म-द्रोही हिन्दुओंको दंड देनेकी हमारे शंकराचार्योंने कभी चेष्टा नहीं की। बुद्ध जैन, सिख, कबीर, ब्रह्मो समाज, आर्य समाज आदि पचासों पंथ हिन्दू धर्मसे निकले पर शंकराचार्योंने न तो उनका विरोध किया न उन्हें वे दंड ही दे सके। उसी प्रकार पतित महन्त, मठाधीश या शंकराचार्योंसे भी हिन्दुओंने कभी घृणा प्रकट नहीं की। तुम्हारी मर्जी तुम करो हमारी मर्जी हम करेंगे। इस दोनों ओर की बातकी बेपरवाहीकी भावनासे धर्म-विषयमे कोई शासक और शासित रहा नहीं, और सर्वत्र गडबड घोटाला मच गया और हमारी एक समयकी अत्युच्च जाति एक अंग्रेज बिशपके शब्दोंमें अथवा मिस मेयोके अनुसार (बुरे और गंदे शब्दोंकी शिकार) बन गई है। (यह इसका अर्थ नहीं, कि सबके सब ऐसे हैं; पर प्रश्न है बहुसंख्याका) जो हमको दूषण देते हैं, उनको गाली देना अथवा आत्म संशोधन करना ये दो ही मार्ग हमारे लिए खुले हैं। पाठक अपनी इच्छानुसार इसका या उसका अनुसरण करेंगे।

हिन्दुओंमें ३००० से अधिक जातियां हैं, और सबोंका धर्म अर्थात आचार अलग-अलग है। इस पर तुर्रा यह है कि, आज तो बूढ़े-बूढ़ियां ही शंकराचार्य बन बैठी हैं!! मोरिशसके ४,००,००० हिन्दुओंमें ही हमने ५० जातियोंके नाम सुने है।

ईसाकी जन्म भूमि जेरूसलेमका उद्धार करनेके लिए पोपोंने मुसलमानोंके विरुद्ध धर्म युद्ध (*Crusade*) की घोषणा की, जिसमें लाखों मुसलमान और ईसाई मारे गए; परन्तु सर्वश्रेष्ठ महापवित्र क्षेत्र काशीके बचावके लिए क्षत्रिय, मराठा या राजपूत किसीने कुछ नहीं किया; न हमारे शंकराचार्योंने ही हिन्दुओंको उकसाया। [काशीके दो हजार ब्राह्मणोंने अपना कर्त्तव्य पालन किया। नंगे पांव और नंगे सिर औरंगजेबके सेनापतिके सामने जाकर गिडगिडाते हुए उन्होंने उससे प्रार्थना की, कि आप जितना मांगें उतना धन देनेको हम तैयार हैं; पर कृपा करके विश्वेश्वरका मंदिर तोडना नहीं। गरीब ब्राह्मणोंको कौन पूछता है ? उसने तो शिवालय तोड ही डाला।

अन्य धर्मियोंकी अपेक्षा हिन्दुओंकी श्रद्धा इतनी कमजोर क्यों ? हिन्दुओंमे अनेक देवी देवता तथा धर्म-पुस्तकें हैं, जिससे उनकी श्रद्धा सर्वत्र थोडी अधिक प्रमाणमें बटी जानेसे वह निर्बल हो जाती है। शिवजीका मंदिर टूटा; पर विष्णुका तो है न ? विष्णु पर आफत गुजरी, पर रामचंद्रजी तो कुशल है न ? रामचंद्रके जानेपर, कालीमाईकी पूजा में तो कोई बाधा नहीं ? इसी प्रकार पंथ भी अनेक हैं। शिव भक्तों की आपत्तिके लिए विष्णु भक्तोंको क्या चिन्ता पडी है ? मराठोंमें गणेश चतुर्थि एक राष्ट्रीय महोत्सव है; पर तामिल और बिहारी, गणेश उत्सवके लिए सर्वथा उदासीन हैं। ये तीनों हिन्दू हैं; पर तीनोंके तीन चूल्हे। यदि कुछ थोड़ीसी बातोंमे ही हिन्दुओंकी श्रद्धा समाई रहती, तो वह अवश्य ही बलवान होती और विधर्मियोंसे बराबर टक्कर देती,

पर बिखरी हुई दशाके कारण, वह निर्जीव हो पडी है। उदाहरण द्वारा हम हमारे कथनको स्पष्ट कर देते हैं।

समझो कि किसी मनुष्यकी दस स्त्रियां हैं। अब देखना चाहिये कि क्या एक पति दस पत्नियोंपर एकसा प्यार कर सकता है? सुन्दर और सुशील स्त्रीपर वह संभवत: अधिक प्यार करेगा, पर उससे अधिक सुन्दरी मिलनेपर पहिलीका प्यार अवश्य ही घट जाएगा। अर्थात, उसका प्यार इस प्रकार दस स्त्रियोंमें बट जानेसे किसी एक को भी वह दिलोजानसे नहीं चाहेगा। और जब कभी ये आपसमें लड पडती है, तब तो बेचारेकी कमबख्ती हीं! उनमें से दो चार मर जाए, तो भी उसको उसका दु:ख नहीं, क्योंकि प्यार भी बटता और दु:ख भी बटता। दूसरी औरते कहने लगती है, कि क्या हम नहीं है? जिसकी सौ दो सौ (पुराने मुसलमान राजा आदि) औरते हैं, उस का हाल ही क्या पूछना? उन सबको वह पहचानता भी न होगा। प्रेम को वह जानता ही नहीं है। भंवरेके समान इस फूलसे उस फूलपर उडते हुए मधुका स्वाद लेनेमें ही उसका जीवन व्यतीत हो जाता है। मधु-भक्षण हो जानेपर फूल मरे या जीवे, भंवरेको उसकी क्या परवाह?

अब जिसकी एक ही पत्नी है, उसके लिए तो वह उसकी देवी है, वह उसका प्राण है। वह उसकी अर्धांगिनी है। वह उसके लिए सब कुछ है। श्री रामचंद्रजीने अपनी अकेली सीताके लिए कितनी मुसी-बतें उठाई है, यह तो सबको विदित ही है।

दूसरा उदाहरण। एक व्यक्तिको सात आठ संतान हैं: उनमेंसे किसी बीमारीमें तीन चार मर गए। माता पिता अवश्य ही दु:खित हो जाते है; पर अपनी शेष सन्तानोंके प्यारमें झट अपना दु:ख भूल भी जाते हैं। प्रकृतिका यह नियम ही है। अब जिसको एक ही बेटा है, उसकी मृत्यु, जानों कि उसके माता पिताके ऊपर वज्रपात ही

है। उनका सारा प्रेम अपने एकलौते पुत्रपर ही जमा हुआ है। वह संसारकी दूसरी किसी वस्तुमें बटा हुआ नहीं है। उसके लिए वे सब कुछ करनेको तैयार हैं। उनका पुत्र गया तो समझो कि उनके लिए दुनिया डूबी। अर्जुन और सुभद्रा अपने एकलौते अभिमन्युके लिए दुःख सागरमें कैसे डूब गए थे, यह कथा हमारे पाठक भली-भांति जानते ही हैं।

तात्पर्य यह कि, हमारी श्रद्धा-भक्ति एक से अधिक स्थानोंपर बिखरी हुई होनेसे, उसकी शक्ति घट जाती है। और अन्य धर्मोंमे वह एक ही विषयपर जमी रहनेसे दृढ, कायम और शक्तिमान बन जाती है। ईसाईयोंकी ऐसी ही दशा थी; पर सुधारकोंने पोपीय आचारोंको उठा दिया, बिखरी शक्तिको इकट्ठा किया और धर्मका विशुद्ध स्वरूप लोगोंके सन्मुख रखा। यही कारण है कि, युरोपियन प्रजा आज उन्नतिके शिखरपर पहुंच गयी है, समर्थ हुई है और संसारकी गुरु बन गई है। हमारे आचार रूपी धर्म ने क्या किया है और उससे हमें हानि लाभ क्या हुआ है यह भी अब देखना चाहिये।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि, इस आचारबद्ध धर्मसे हिन्दुओंकी कुछ रक्षा भी हुई है। ईसाई लोग शापो (टोपी) और मुसलमान फेज (तुर्कीटोपी) पेहनते हैं तथा गोमास खाते हैं। पगडी प्रिय गौ पूजक हिन्दूके लिए वे धर्म खान पान और शापो फेजके कारण ही विषवत हैं और उसी आचार-धर्मने हिन्दुओंको कुछ अंश तक बचाया भी है।

जब लोगोंमें अपने आचारोंमे वैसा विश्वास था और उसमें परिवर्तन करनेकी जरूरत नहीं थी तब आचार-धर्म ही ठीक था और उसने कार्य कर भी दिया है। ग्रीक आलेकझाण्डर और म्लेछ कनिष्क ने हिन्दुस्थान पादाक्रान्त किया। ईगनियोंने भी ऐसा ही किया;

पर इनमेंसे बहुतसे यहां ही रह गए और हिन्दुधर्ममें सम्मिलित हो गए। आचारोंसे हिन्दू-जातिको हानि नहीं पहुंची; परन्तु वर्त्तमान युगमें पिछले एक हजार वर्षोंसे आचार-धर्मसे निवाह होना असंभव हो गया है। आजकल सर्वत्र कुर्सीने प्रवेश किया है। चटाई और गुनी अब पाकशालामें पडी रहती है। धोती पगडीको तो नवयुवक नजदीक नहीं आने देते। ऐसी दशामें शिवालयोंमें एवं अन्य धार्मिक अवसरोंपर इनको जूता निकालकर चटाई आदि पर बैठनेके लिए वाध्य करना कहां तक धर्म प्रचारमें सहायता पहुंचाएगा, यह एक सवाल ही है।

रोज-हिल तामिल मंदिरके प्रधान नाडारजीका कथन है कि नवयुवक इस लिए मंदिरमें नहीं आते कि जूता खोलकर और पलथी मारकर नीचे बैठनेसे उनके कपडे खराब हो जाते हैं। न मंदिरमें आना न मंदिरको कुछ देना। कमी अधिक-प्रमाणमें सर्वत्र यही स्थिति है। मंदिर चले तो चले कैसे ?

इसीको बदली हुई परिस्थिति कहते हैं। इस नए युगमें मंदिरके उपरोक्त आचार-धर्मको बलात् पालन करवानेमें मंदिर खाली पड़ जानेका डर है, क्योंकि कोई कहता है, कि हमारे पांव सफा हैं, तो किसीको सर्दी पकडनेका भय है। क्या किया जाय ? " सर्व नाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पंडितः" जान गंवानेकी अपेक्षा पूंछ ही पर वितने दो। हमारे विचारमें मंदिरोंकी बनावट नये ढंगकी होनी चाहिये और बैठनेका प्रबंध भी समयानुकूल होना चाहिये। पूजा पाठ यह धर्म है, उसका पालन करो पर कालसों (पटलून) पहनकर अथवा किसी ऊंचे आसनपर बैठकर (पलथी नहीं) वह हम नहीं कर सकते हैं ? गिरजाघरमें साड़ी या धोती पहनकर प्रार्थना करते हैं; परन्तु उनको कोई हिन्दू नहीं कहता है। सारांश अब आचार-धर्मके दिन

नहीं है; किन्तु वर्तमान समयमें विचार-धर्मकी आवश्यकता है। विचार-धर्मका अर्थ क्या यह अब देखना चाहिये।

मनुस्मृतिके एक श्लोकका आधार लेकर लोग यह कहा करते हैं कि, दया, क्षमा, शान्ति, सत्य आदि धर्मके दश लक्षण हैं। हम कहते हैं कि बुद्ध मतका यह एक रूपान्तर है। सून सनातन या वैदिक धर्मके वे लक्षण नहीं हैं। वे नीतिके लक्षण हैं, न कि धर्मके। इस लिये प्रथम धर्म और नीति ये दो भिन्न विषय हैं। इस बातको स्पष्ट रूपसे जानना चाहिये। जिसमें दया, क्षमा, भक्ति गुण हो उसको हिन्दू-धर्मीय समझा जाय, तो एक मोफ़ालिक या चीना भी हिन्दू हो सकता है। परन्तु कोई भी हिन्दू किसी दयावान या क्षमाशील मालगाशको हिन्दू माननेको तैयार नहीं होगा।

हिन्दू धर्मीयके लिए वेदादि पुस्तक एवं राम कृष्णादिमें विश्वास तथा गौ रक्षण जैसे कुछ बंधन न हो तो वह हिन्दू नहीं है। इसीको हम-विचार धर्म कहते हैं। एक मनुष्य कैसा ही बदमाश क्यों न हो, जब तक वह उस मूल मंत्रमें याने बंधनमें विश्वास रखता है, तब तक वह हिन्दू ही रहेगा। खाना पीना, पहनना, रहन सहन आदि आचारों पर उक्त विचार-धर्मका जरा भी अंकुश नहीं होना चाहिये। खाने पीने के लिए डाक्टरकी सलाह लो, कपड़ोंके लिए हवा पानीको पूछो और रहन सहनके लिए स्वास्थ्यसे काम लो। इन बातोंके लिए वेद पुराणोंको नहीं ढूंढ़ो। आज कल लोगोंने धर्मको एक खिचडी बना रखा है। वेदादि धर्म-पुस्तकोंको लोगोंने जादूगरकी धोकडी बना दी है। जो चाहे सो वस्तु उसमेंसे निकालकर प्रेक्षकोंकी आंखोंमें धूल फेंकने की करामात की जाती है। प्राचीन ऋषि "रेडियो" द्वारा संसारको वेदकी ऋचा सुनाते थे, और पौराणिक राजा "एरोप्लान" में चढकर स्वर्गकी सैर कर आते थे!! ये लोग मानो कि बीसवी सदीका एक नया

पुराणा ही बनाना चाहते हैं ! ऐसी बातें करनेमें उन महाशयोंका उद्देश्य बड़ा ही उमदा होता है। वे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि संसारका ज्ञान भांडार केवल हमारे प्राचीन धर्म-ग्रंथ ही है। अपने पूर्वजोंके लिए इतना गर्व रखना यह निःसंदेह देश भक्तिका एक लक्षण है। परन्तु सवाल यह पैदा होता है, कि समस्त ज्ञानका ठेका यदि हमारे प्राचीनोंको दिया जाए, तो इस जगतमे पैदा होकर हमारे करनेके लिए काम ही क्या ? बाप दादाओंकी कमाईपर मजा उड़ाना इतना ही हमारे लिए काम रह जाता है। पुरुषार्थके लिए हमे अवसर ही नहीं मिलता है। एक धर्मनिष्ठ पर तेजस्वी व्यक्तिके लिए यह मनो-दशा बड़ी ही करुणास्पद हो जाती है। वह खिन्न हृदयसे यही कह-ता होगा, कि मेरे पूर्वज ऐसे स्वर्थी थे, कि उन्होंने हमारे लिए कुछ नहीं छोडा। इन विचारोंसे धीरे-धीरे लोगोंमें "किं कर्तव्य मूढता" का भाव फैलने लगा और हिन्दू जाति आलसी, मूर्ख, निरक्षर, निर्धन और पौरुषहीन बन गई, और संसारकी अन्य जातियोंकी शिकार बन गई २,२०० वर्ष पूर्व शिकंदर *(Alexander the Great)* के आक्रमणके उपरान्त बीसों विदेशी जातियोंने भारतको पादाक्रान्त किया "गरीबकी बहू सबकी भाभी" इस लोकोक्तिके अनुसार उसको बना छोडा। पिछले सवा सौ वर्षोंसे (१२५) जबकी छः हजार मील दूर रहने वाले अंग्रेजोंने आकर भारतमें अपने सार्वभौम राज्यकी स्थापनाकी, तबसे विदेशियोंके आक्रमण बन्द हो गए।

हमारे वेदादि ज्ञान भाण्डार, सूर्य और चंद्रवंशी महा प्रतापी क्षत्रिय राजा, त्रिकालदर्शी ऋषि, हिमालयके योगीराज, हमारी सती देवि-यां, भक्त शिरोमणि एवं हमारे शंकराचार्य, ये सब उन दिनों कहां थे ? किसीसे भी अपनी मातृ-भूमिकी रक्षा न हो सकी ? हमने यह जो कुछ लिखा है, वह गप गपोडे नहीं है। वह ऐतिहासिक सत्य

है। रामेश्वरका दर्शन करो, जगन्नाथ पुरीकी यात्रा करो, काशी विश्वेश्वरको देखो अथवा सोमनाथका स्मरण करो, हिन्दुस्थानके चारों धामोंके स्थानोंपर हमारे कथनके प्रमाण आज भी पाठक पा सकेंगे। विचार-धर्म लोगोंमे न होनेसे और आचारोंको ही धर्म मान लेनेसे यह सब आपत्ति हुई।

तोपकी आवाजके सामने हमारा शंखनाद किसको पसीना लाएगा? परन्तु हम शंख ही फूकते रहे और अन्तमे शंख भी फूटा और नाद भी बन्द हो गया! हमारी प्राचीन गदा किसीका सिर फोडने से पहले ही बन्दूककी एक छोटीसी गोली गदाधारीको धरतीपर सदैवके लिए सुला देती है। वीर अभिमन्युके व्यूह आज किस कामके?

हर एक व्यक्ति और हरएक वस्तु अपने समयके लिए बढ़ी चढी रहती है। आम अपने मौसममे ही अपनी मिठास दिखा सकता है। बे मौसमके फल (कोल्ड स्टोरेज) मे वह स्वाद नहीं रहता, यह तो सबके अनुभवकी बात है। जर्मनीका बादशाह कैसर विलियम इतना बड़ा, पर आज हिटलरका बोलबाला और कल मालूम नहीं कौन आएगा? महात्मा गांधी आज वह नहीं हैं, जो दश वर्ष पूर्व में थे। मनुष्यकी बुद्धि इतनी अल्प और छोटी है, कि अपने जीवनमें होने वाली घटनाओंका ज्ञान भी वह प्राप्त नहीं कर सकता है। इस हालत मे चार पांच हजार वर्ष पूर्व बनी हुई घटनाएं और नियम आजकी बदली हुई परिस्थितिमे कैसे काम दे सकेंगे? महा पुरुष अपना-अपना कार्य करके दिवंगत हो जाते है, और दूसरोंके लिए जगह खाली कर देते है।

वेदके ऋषि विवाह करते थे तथा लंबी दाढ़ी और जटाएं रखते थे। उस समय सन्यासी नहीं थे। बुद्ध-कालमें वे आए और आज

The Late Pandit Shiwprasad Ramlall Tiwaree, Attorney-at-law Born 1867, died 1923.

कल जहां देखो, वहां सन्यासियोंका जमाना है। वे मूंछ मुंड़ाते हैं, दाढ़ी चट करते हैं और सिरपर उस्तरा फिरा देते हैं। ऋषिके समान उनकी पदवी है। अब कहो स्त्री पुत्रका त्याग करके सन्यासी बनना क्या वेद विरुद्ध कहा जाएगा? मद्राजी लोगोंकी देवियां मारीअम्मेन या द्रोपदीअम्मेन कौनसे वेद में हैं? प्राचीन समयमें पत्तोंपर (ताड़ पत्र, तमाल आदि) लिखते थे, तो क्या आजका समाचार पत्र पत्तों का निकालेंगे?। वेद कालमें स्त्री पुरुषोंके नाम वसिष्ठ, अगस्ति, गार्गी, विश्वामित्र, पाणिनी, पतंजली, मैत्रेयी ऐसे होते थे। अब कामताप्रसाद, जालिमसिंह, मुतुकारपें, गांधी, नेहरु, कस्तुरीबाई, सरोजिनी ऐसे हैं। ये नाम वेदमें कोई बता सकेगा? वैदिक ऋषि, कहते हैं कि निमक नहीं खाते थे। कलकतियाओंके धार्मिक रसोईमें शायद इसी वास्ते निमक नहीं डालते होंगे। आज तो निमक बिना कौर गले नहीं उतरता है। यह भी वेद विरुद्ध ही है न? प्राचीन समयका नियोग कोई करनेको तैयार होगा? स्वामी दयानन्दने उसको जागृत किया था; पर वह मृतप्राय ही रहा। धर्मराजाके समान अपनी पत्नीको कोई जुएमें लगाएगा? किसी स्त्रीके पांच पति होंगे? वैदिक कालीन हवनके सिवाय और कुछ "वैदिक" कहीं देखनेमें आता है? ये सब बातें गई मर गई। उनका श्राद्ध भी कोई नहीं करता है। नहीं मालूम प्राचीन सभ्यताके नामसे ये लोग क्यों चिढ़ते रहते हैं। प्राचीन सभ्यताका पालन करना नहीं; पर उसका जप करते रहना, क्या यह एक ढोंग नहीं है?

कोई पदार्थ या प्राणी संसारमें ऐसा नहीं है, कि जो नित्य एक ही रूपमें रहे। परिवर्त्तन प्रकृतिका एक अटल नियम है, और इसी को विकाशवाद (*Evolution*) कहते हैं। हम लोग इस नियमको नहीं जानते हैं और कहते हैं, कि अमुक एक व्यक्ति 'न भूतो न भविष्यति'

अर्थात ऐसा मनुष्य न हुआ न होगा। व्यक्ति कैसा ही श्रेष्ठ क्यों न हो, उसका जीवन या मरण सृष्टिके क्रमको अटका नहीं सकता है। हमारे दश अवतार भी इसमें असमर्थ रहे हैं। एक अवतारसे कार्यकी पूर्ति न हो सकी; इस लिए ईश्वरको दस बार अवतीर्ण होने पड़ा, यह बात तो सूर्य प्रकाशके समान स्पष्ट है। सब अवतारोंके आचार भिन्न-भिन्न हैं। पुराण प्रणीत रामकृष्णादि अवतारोंके कार्योंका निरीक्षण करनेसे हमारे कथनकी पूरी तौरसे पुष्टि होती है। श्रीरामचंद्रजी एक पत्नी व्रत धारी थे और श्री कृष्णके कई विवाह हुए थे। मालूम होता है, कि एक अवतारमे एक पत्नी बस थी; पर दूसरे अवतारमे स्थिति बदली हुई होनेसे, बहु पत्नियोंकी आवश्यकता होगी। रामचंद्रजीसे पहले परशुरामका अवतार हुआ था, जिन्होंने एक्कीस बार तमाम क्षत्रियोंको मार डाला था। वह आजन्म ब्रह्मचारी थे। इन तीनोंके तीन प्रकार हैं। इन बातोंको देखनेसे, यह सिद्ध होता है, कि समयानुकूल आचार और कर्म बदल सकते हैं और उनमें कोई अधर्म नहीं है।

जिसने सृष्टिकी रचना की, क्या उसको स्त्रीकी जरूरत थी? परन्तु उनके चरित्रोंसे हम देखते हैं, कि उन्होने यह सब कुछ किया है। अवतार कार्य विना किसी हेतुसे नहीं होते हैं। उनका खास उद्देश्य है और वह यह कि लोग भी तदनुसार वर्त्तन करे।

रामायण, महाभारत, भागवतादि पुराण ग्रंथोंमें कहीं भी इस बात की चर्चा नहीं, कि पहला अवतार ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करता था; इस लिए दूसरे अवतारमें भी वैसा ही होना चाहिये। भागवतमे नहीं लिखा है, कि रामकी एक ही सीता थी; इस लिए कृष्णको भी एक ही राधा होनी चाहिये। रामको दो ही हाथ थे पर कृष्णको चार। रामचंद्रजी धनुष बाण से लड़ते थे; पर कृष्ण सुदर्शन चक्र फेकते

थे और गदा भी रखते थे। रामचंद्रजी शिकार करते थे और श्री कृष्ण दही माखन लूटते थे। कृष्ण भगवान बांसरी बजाते थे और रामचंद्रजी वेद घोष करते थे। रुक्मिणीने पत्रिका लिखकर (लोग इस वास्ते अपनी कन्याओंको नहीं पढाते हैं; कि वे पत्र लिखने लग जाती हैं) कृष्णको बुलाया था, और रामने बाहुबलका परिचय देकर सीताको ब्याहा था। राम बारह वर्ष तक बनवासी थे और कृष्ण भोग विलासमें मग्न थे। समस्त अवतारोंके रूप, कार्य और आचार ऐसे ही भिन्न-भिन्न प्रकारके हैं तथा एक दूसरेमें आकाश पातालका अंतर है। उपरोक्त बातोंसे यही ज्ञात होता है, कि बदली हुई स्थितिमें आचार और कार्य भिन्न ही होने चाहिये। पुराणोंसे हमें यही शिक्षा लेनी चाहिये कि परिस्थितिका सामना करना हो तो आचार भी बदलना चाहिये। हमारे बनाये हुए आचारोंके हम गुलाम बन गए हैं, उनसे हम मुक्त हो नहीं सकते हैं और मांगते हैं स्वराज्य !!

कोई कहते हैं कि हम हमारे आचार छोड देंगे, तो हिन्दूत्वका कोई चिन्ह भी हमारे पास नहीं रहेगा। हम कहते है कि एक चीना को दस लकडी (यार्ड) लंबी धोती पेहना देनेपर भी वह दीक्षित नहीं हो सकेगा। वह चीना ही रहेगा। जापान सिरसे पैर तक युरोपियन संस्कृतिसे लदा हुआ है, तो भी उन्हें कोई युरोपियन नहीं कहता और संभव है कि प्रलय काल तक वे जापानी ही रहेगा। उसी प्रकार हमारे आचार बदल जानेसे हम भी मोम्मास्मिक या गोरे नहीं हो जाएंगे। हमारे मंदिर ही देख लीजिए। मंदिरके ऊपर गुम्बज बनाने की प्रथा मुसलमानी है। तामिलोंके मंदिर देखनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। स्वयं ईश्वरने ही अपने घरका ढंग बदल दिया है, तब हम क्यों न बदलें ? जीलेबी मुसलमानी मिष्टान्न है; पर उसके खानेसे हमारा धर्म नहीं गया है।

जिनको पंडिताई करनी हो, उनकी प्राचीन सभ्यता उनके लिये अवश्य ही होनी चाहिये; परन्तु सिपाहियों की पलटन के समान सब को एक ही वर्दी (*Uniform*) पहनने पर क्यों विवश किया जाय ? सबको एकही ढंगके कपडे देनेसे धर्म-कार्य कराने वाले पंडितकी महत्ता भी घट जाती है । टके सेर भाजी टके सेर खाजा । समाज में अन्य लोगों की अपेक्षा पंडितों का अधिक मान आदर होना चाहिये । एक निरक्षर शूद्र और एक विद्वान ब्राह्मण पुरोहित को पहचान होना भी आज कठिन हो जाता है; क्योंकि दोनोंकी वर्दी एकही! आप नाटक देखो, सिनेमा देखो, तमाशा देखो अथवा किसीजुलूसमें घूमो, आपको सर्वत्र पोशाककी विभिन्नताही देखनेमें आएगी और उसीमें उसकी शोभा, गंभीरता और प्रभावभी है। यदि ऐसा न होतो मानवसमाज और भेड बकरीके झुंडमें फरकही क्या? अपने घरमें ही अपनी माता बहनों के कपडों को देख लो। उनका पहनने का ढंग जुदा और उनका रंग भी जुदा । जो लोग कहते हैं कि, पोशाकमें क्या है, वह किसी स्त्रीको धोती पहनाकर जरा देखे तो सही ! धोतीसे उसकी स्त्री जातिका नाश नहीं होगा; पर उसको सदैव धोतीमें देखने को कोई राजी होगा ?

ईसाईयोंमें कपडोंसे पादरी पहचाना जाता है, और उसे देखते ही टोपी उठाकर लोग उनको वंदना करते हैं। पादरीके सामने वे नम्रता पूर्वक खडे रहते हैं और अदबसे बात करते हैं । यह नहीं समझना चाहिये कि, पादरी अपने लंबे जामेमें सुन्दर लगता है अथवा ठंडी, गरमीमें बारह मास एक ही ढंग और रंगकी झूल पहननेमें वह खुश रहता है । किन्तु उससे उसको जरा कष्ट ही है । ढीले और लंबे वस्त्र पहनने फिरनेमे थोडीसी दिक्कत ही करते हैं। पर उनका दर्जा और अपने पवित्र पेशेके लिए कुछ कष्ट सहना, उनका कर्त्तव्य समझा

जाता है और इसी वास्ते वे सम्मान पात्र होते हैं। हमारे सच्चे सन्यासी का जीवन कष्टमय होने से ही हम उन को मानकी दृष्टि से देखते हैं। समाज के लिये जो दुःख उठाता है, जरूर ही समाज उसका आदर करता है। यह एक लेनदेन जैसा ही व्यवहार है। क्या हमारे पंडित भी वैसी किसी खास पोशाकमें माननीय नहीं होंगे? यह नहीं समझना चाहिये कि, केवल लिबाससे ही कोई व्यक्ति महात्मा बन जाय अथवा उससे कभी कोई अनुचित कार्य न हो। फक्त वैसे कपडे डालकर कोई घूमे और कुछ कर्म न करे तो वह एक नाट्य प्रकार होगा, और ऐसे व्यक्ति पर जनता पत्थर ही चलाएगी। कपडों के साथ रहन सहन भी वैसा ही होना चाहिये। कुछ भी हो एक बात तो निःसंदेह है कि वैसे वस्त्र उस व्यक्ति को सदैव अपनी श्रेष्ठ पदवीका स्मरण देते रहेंगे। उसके लिये वे वस्त्र अंकुश के समान हैं। अंकुश का डर रहने पर भी, हाथी कभी मस्ती करने लग जाता है और जहां वह डर नहीं है, वहां पूछनाही क्या? संसार भर मे क्रिश्चयन धर्म का इतना प्रचार हो गया है, उसका कारण यह नहीं समझना चाहिये कि, वह धर्म अन्य सब धर्मोंकी अपेक्षा उत्तम है; किन्तु उनके पाद्री अथवा मिशनरीयों का स्वार्थ त्याग, श्रद्धा, निर्भीकता और पुरुषार्थका वह फल है। दुनिया की जंगली और क्रूर जातियोंमें रह कर उनकी भाषा और रीति रिवाजों का अभ्यास करनेमें और उनकी भाषा द्वारा उनको धर्म सिखलानेमें, उनमेंसे कईयोंका सारा जीवन व्यतीत हुआ है। यह धर्म कार्य करते हुए पचासों पाद्री मारे गये हैं। पुरुष तो क्या, उनकी स्त्रीयोंने भी ऐसा ही धर्म की वेदीपर अपना बलिदान किया है और कर रही हैं। इस घडी चीन देशसे जो समाचार आते हैं, उनको पढनेसे हमारे कथन की सत्यताका पूरा प्रमाण पाठक पा

सकेंगे। इन स्त्री पुरुष पादरी मिशनरियोंके विशेष प्रकारकी पोशाक ने उनके धर्म प्रचारमें बड़ी सहायता पहुंचाई है, इस बात की ओर हिन्दू जनता का ध्यान हम खींचना चाहते हैं।

"धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां" अर्थात—धर्मका तत्व गुफामें छुपा हुआ है। उसको ढूंढना और जानना बहुत मुशकिल है; यह उसका मायना है। सर्व साधारण जनता धर्मके रहस्यको बहुत कम समझती है। धर्मके प्रतिनिधि पादरीपर ही उनकी नजर रहती है। वह जो कुछ कहता है, वही उनके लिये धर्म है। ऐसे प्रतिनिधिका लिबास और उस के कर्म अन्य लोगोंसे भिन्न न हो तो पादरीका न उतना आदर होगा न उसके धर्मका इतना प्रसार ही होगा। हमारे हिन्दू धर्म को देखनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है।

सेनापतिकी मान मर्यादा एवं उसका भय सदैव कायम रखनेके लिये ही उसकी खास वर्दी और उसपर कुछ विशेष चिन्ह होते हैं, जो कि साधारण सैनिक तथा अन्य अफ़सरोंसे भिन्न होते हैं। सरकसमें पशु-शिक्षक (*Ring Master*) हमेशा एक ही ढंग और रंगके लिबासमे रहता है। उद्देश्य यह कि, उस लिबास को देखकर पशु उसका भय खाए और उसकी आज्ञाओंको बराबर माने।

खास पोशाक धारण करनेका बड़ा लाभ यह है कि, पुरोहित अपनी जिम्मेवारी और अपना दर्जा समझ सकेगा। सबकी नजर उसके वस्त्रोंपर रहेगी, जिससे दुनियाका वह भय करेगा और सदा-चारी बने रहने की चेष्टा करेगा। इतना ही नहीं; किन्तु लोग भी उन पवित्र वस्त्रोंके सामने सिर झुकाएंगे। अन्य जातियां भी हमारे पुरो-हितोंको तब पहचान सकेंगी और वे उनकी इज्जत करेंगी। दूसरे लोगोंके हमारे पंडितोंके प्रति आदरके भाव देखकर हमारा उत्साह

बढेगा. और हम उनका अधिक मान करेंगे । हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति दोनोंका सिर ऊंचा होगा । यह सुधारका जमाना हैं, देख लीजिए अजमाकर । हमारे बहुतसे भाई कहते हैं कि, पोशाकमें क्या है ? हम कहते हैं कि, पोशाकमें बहुत कुछ है । साड़ी देखकर सती अनुसूयाका स्मरण होता है और लहंगा देखकर राधा राणी याद आती है । यह सब पोशाकका प्रताप ! चोर, पुलिसको जानता नहीं; पर उसकी वर्दी देखकर भागता है । पोशाक निर्जीव है, पर उसके अन्दर चैतन्य है । लुहार, चमार, हजाम, बाबाजी सब एक समान । पंडितको पूछे कौन ?

विशेष प्रकारकी पोशाक एक बंधन है और पंडित पुरोहितोंके लिए वह आवश्यक है; पर औरोंके ऊपर उसकी जबरदस्ती करने से, उनके भाव एवं विचार संकुचित तथा दांभिक हो जाते हैं, और जीवन-कलहमें वे अग्रसर नहीं हो सकते । कोई भी नये कामके लिए वे भयभीत रहते हैं । गांजा वे बेच सकते हैं; पर शराबका व्यापार करनेसे डरते हैं । पूडी वे बेचते हैं; पर पाव रोटी (ज़िपे) को देखकर शरमाते हैं । कारण उतना ही कि, अपनी पोशाकके कारण वे निजको धर्मात्मा ही मान बैठते हैं ।

भारतमें पहले पोन्दामूर (टमाटो) लिसू फ्लेर (काबी फ्लावर) और आलु नहीं खाते थे । यहां भी भारतमें न होने वाली शाक भाजी खाने में देशी भाई संकोच करते हैं । हिन्दू तथा मुसलमान दोनों एक ही देश से यहां आए और कुदाडी तथा कूतो ही उनकी जीविकाके साधन थे । मुसलमानोंने अब कुदाडीको फेंक दिया है और लोतो (मोटर) में चढकर अब धन कमाते हैं और गुलछर्रे उड़ाते हैं । सावान जिलेमें "शेमे ग्रीयें" एक छोटासा ग्राम है । अधिकतर आबादी हिन्दुओंकी है; पर वहांका ऐश्वर्य और सुंदरता अल्प संख्या वाले

मुसलमानोंने अपनाई है। वे अच्छे-अच्छे घरोंमें रहते हैं। उनकी एक अच्छी मसजिद है, एक पाठशाला उसमे चलती है। मोटरों भी उन्हींकी दौड़ती हैं। वे ही सायकलों पर चढते हैं। जानो कि गांव की सजावट उन्हींके कारण हुई है। सब धंधोंमें उनका प्रवेश है। जिससे पैसा वे अधिक कमाते हैं, और पैसेसे अपनी बल वृद्धि करते हैं। सब ही स्थानोंपर कमी अधिक प्रमाण में, यही दृश्य नजर आता है। अब एक हिन्दूको देखिये।

किसी कारणवश एक बडके बाबूजीके पास लेखकका जाना हुआ था। बाबू साहब वहां के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। उनकी जगे जमीन थी। उनकी इच्छा होती, तो वे भी अच्छे मकानमे रह सकते; पर उनका धंधा रहा खेती और थे ऋषि मुनीकी संतान। सडकसे दूर, भीतर गन्नोंके पत्तोंके एक आश्रम रूपी स्थानमें, आप रहते थे। वह एक अब उमर वाले नाटेसे मनुष्य थे। पूछते पाछते हम वहां पहुंच गए। हमको देखते ही एक स्त्री ओढनी खींचते खाचते हमको ताक-ने लगी। यह जानकर कि, कोई केओल है, देवीजी वहांसे हटी नहीं। पर बाबूजीने हमको देखते ही उठकर धोतीका खूटा तानते हुए पांव-लगी कहा। यह सुनते ही देवीजीने पीठ घुमाई। हम भी अब घरके समीप पहुंच आये थे। दूपहरका समय था। स्त्री पुरुष कामपर चले गए थे। घर (झोपड़ी) मे शांति थी। हमने ताड़ लिया कि, देवीजी बनुवाईन थी। उनके सामने चावलका सूप था और बाबूजी समीप ही एक पीढेपर बैठे हुए आइनेमें देखदे-खकर नाकके बाल निकाल रहे थे और साथ-साथ अपनी पत्नीसे बातें भी करते जाते थे। एक दो बार देवीजीके गलेके गिरनीके हार पर भी उनकी आंख फिर गई थी। एक ही नजरमें हमने यह सब देख लिया था। आधे घंटेमें हमारी बातचीत खलास हो गई और बाबूजीको हमारे सत्कारके
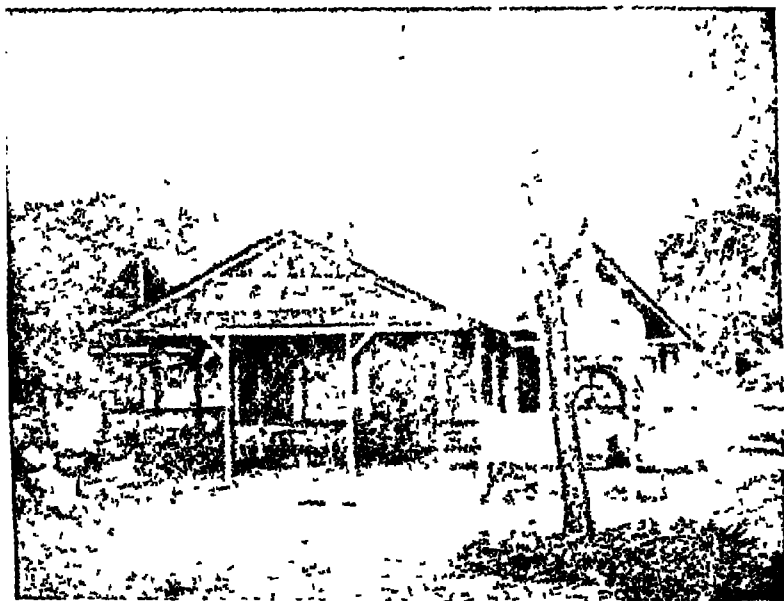
The temple of Shri Vishnoo Kshetra, Port Louis.

लिए धन्यवाद देकर हम वहांसे विदा हुए। इस अल्पावधिमे ही हमने जो कुछ देखा उसे हम भूले नही। जहां जाओ एक ही नमूनादेखने मे आता है, जिससे उसकी स्मृति ताजी हो जाती है।

घरके आंगनमें आतेहीं खाद (फीमियें) की बूने हमारा पहले स्वागत किया। जरा आगे बढो तो कहीं मुर्गीने उपद्रव किया हैं। तो कहीं कचडा जमा पडा है। एक ओर कपडे सूख रहे थे। दूसरी ओर बकरी में कर रो रही थी। घर के अन्दर भी यहीं हाल। कहीं मकई टांगी है तो कहीं लशुन। बाबूजीका बेटा छठी श्रेणीमें था। उस के लिये एक छोटा सा कमरा जैसा अलग स्थान था। उतनी जगहमें आधुनिक सभ्यता की कुछ झलक दीख पडती थी। बाबूजीमें रंग, रूप, विद्या वैगरे कुछ नहीं था, पर उनकी जाति और धन के कारण गांवमें उनकी इज्जत थीं। पोर्ट लुईस शहर उनके लिये एक नयी दुनियां थी। अपने गांव का यह राजा शहर पहुचतेही रंक हो जाता था। साहब सुबा के वास्ते वे हमेशा एक मुसलमान को अपनें साथ रखते थे। "राजां बाबू साहेब" आदि उपाधियां शहरमें काफूर हो जाती थी। किसी आफिसमें साहेब के सामने उपस्थित होना उनके एक संकट था। "एता मंग्राज, कां तो पु पेये सा कौन्त ला" साहबके इस प्रश्न को "वै मां मोशे" (जी हां हुजूर) कह कर साथ लाई हुई डाली साहब को भेट देकर वह अपनी जान छुड़ा लेते थे अथवा अधिक बोलना करना हो तो अपने साथी मियाजी पर सोंप देते थे. अपनी गयलीमें वे प्रवीण थे; पर "इसो लबा" (इधरे उधर) में उनकी जीभ नहीं घूमती थी

ये सब बातें देख कर और सुनकर हमने यही ठान लिया कि, एक हिन्दू, कितना धन संपन्न क्यों न हो, उसे अपनी झोपड़ी, वह गिरनी का हार, उसकी खेती, मुर्गी, बकरी और उसकी महावीर स्वमीकी झंडी तथा उसकी बाबूजी या महतों की पदवी उसके लिये सब कुछ है। "येन केन प्रकारेण" अर्थात्, किसी ढंगसे पेट भरने के लिये सत्य युग का यह जीवन ठीक हो सकता है, पर इस कलियुगमें, याने खलोंके जमानेमें, साधु संतों का गुजारा होना मुशकिल हो रहा है। यही कारण है कि, आजकल साधु भगत की पैदायश बन्द सी हो गई है पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और तेज इन पंच महाभूतों की कृपा पर निर्भर रहने के दिन अब जा रहे हैं। आज का जमाना निजके पुरुषार्थ का है. ठंडी बरसात और धूपमें मर कर बिचारा अपनी खेती बनाता है और कोई दलाल पट्टी मार कर सौ रुपयों की फसल आधे दाममें लेजाता है. इस दशा मे हमारे महतों उठे कैसे ? बोना वे जानते हैं; पर दलाली मे और गुणों की आवश्यक्ता है और वे उनमें नहीं है.

मुसलमान के पांवमें अचार-धर्म की बेडियां नहीं है; इस लिये वह ऊंचा उठ सकता है और हिन्दू उस जंजीर से बंधा पडा है, जिससे वह अपनी झोपडी से बाहर निकल नहीं सकता है. खेती और पशु, मनुष्यके जीवनका पाया है; पर उनसे पूरा लाभ, हमारे आचार-धर्म के कारण हम उठाना नहीं जानते हैं. हम पाया खोदते हैं; पर उस पर मकान कोई दूसरा ही चढ़ाता है, यही हमारे कथनका अभिप्राय है.

अधिकतर हिन्दू अंडा मुर्गी, मांस मछली खानेवाले हैं; पर ऋषि मुनियों के कपडे पहनकर उसका व्यापार करना पाप

समझते हैं. कपड़ा बदलना भी उसके लिये अधर्म ही है. इन कपड़ोंने ही इसको ढोंगी बनाया है. हमारे अहीर प्राचीन कालसे दूध बेचते आए हैं; पर मक्खन बना कर एक नया रोज-गार करना मुसलमान जानते हैं। हिन्दू लोग तम्बाकू बोते हैं; पर सिगारेट चीना लोग बनाते है। केला हम लोग पैदा करते है और उससे मद्य दूसरे लोग बनाते हैं। हिन्दुओंके लिये उनकी सनातन धोती, प्राचीन कुदाडी और अनादि खेती यही कायम रहता है। आज का व्यापारी युग है। व्यापार नही तो धन नही और धन नही तो सत्कार्य नही।

यहां विषय को छोडकर हम जरा दूसरी एक ओर देखते हैं। एक आर्य समाजी सज्जन, हिन्दुओंकी इस आर्थिक दशा पर समय-समय आंसू गिराता रहता है। अपने लेख और व्याख्यानोंमे इसी विषय को दुहरा २ कर हिन्दू प्रजा को व्यापार करने को उत्साहित करता रहता है। उसका दूसरा भाई मास मदिरा का निषेध करते हुए वेद पुराणोंको छान मारता है। दोनो की बात सुन कर एक आध व्यक्ति दाल चावल वेचना शुरू कर देता है। एक लिवर चावलमे उसको पूरा एक सेन्ट भी लाभ नहीं होता है। उसका सहव्यवसायी चीनी एक लिवर (सेर) सुनुक मछलीमे चार आना नफा करता है और शराब की एक गुडकीमें पाच सेन्ट कमाता है। हमारा विचारा भगत, उपरोक्त उपदेशकोंसे प्रभावित हो कर तीन चार सौ रुपयोंकी अपने पसीनेकी पूंजी गुमा बैठता है और छः मासके अन्दर फिर कुदाडी के लिये डंडा ढूंढने लगता है।

ये उपदेशक चाहे सनातनी चाहे आर्य समाजी, यही समझे

बैठे हैं कि, मोरिशसमें घोडा, गाय, बकरी जैसे शाकाहारी मनुष्य ही केवल बसे हैं। मोरिशस, काले महाद्वीप आफ्रिका का एक छोटासा भू भाग है। ऋषि मुनिके संतानोंने उसको बसाया नहीं है। ऐसी जगह मांस मद्यका विरोध करने से, जो धार्मिक लाभ होता होगा, उससे अधिक आर्थिक और सामाजिक हानि हमारी हो रही है। इस बातकी ओर हम हमारे समाज-हित-चिंतकोंका ध्यान आकर्षित करते हैं। मोरिशस में आर्य समाजी और सनातनी केवल इन दो मतोंम ही खींचातानी हुआ करती है। वे हमेशा वेद पुराणोंमें लपटे रहते हैं। बाहरकी हवा उनमे प्रवेश नहीं होती है। आर्यावर्त्त छोड़कर इस निशाचरोंके देशमें रहते हुए १०० वर्ष बीत जानेपर भी, हमारे जंग चढे हथियार हमारी कमरमें बोझा रूप लटके पडे है। हमारी समझमें भारतके समान यहां भी अब इन दोनोंसे परे रहकर एक तृतीय पंथकी स्थापना करनेका समय आ गया है।

बहुतसे लोग कहते हैं कि प्राचीन समयमें धोती वालोंने बडे-बडे साम्राज्य चलाए थे। बात बिलकुल ठीक है। पाडव कौरव के जैसे ही थे, उनका सामना वे कर सकते थे। बालीने अपने भाई सुग्रीवसे राज्य छीन लिया था। चक्रवर्ती राजा अशोक या चंद्रगुप्तने बंगाली और मद्राजी प्रजापर विजय पाई थी। ये सब युद्ध और विजय अपने ही देशमें और धोती वालोंमें ही थे। परन्तु विदेशियोंके मुकाबिलोंमे हिन्दुओंने हार ही खाई है। सबके लिए एक ही आचार-मार्गका और क्या परिणाम निकल सकता है? आजके बौद्धिक युगमें आचारोंकी व्यर्थता प्रतीत होने लगी है और वे छूटे जा रहे हैं। विचार-धर्म तो है ही

नहीं और धोती प्रमुख आचार धर्म भी मृत्युकी शय्यापर। फिर क्या ?

वृद्धोंके लिए कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है। वे आज हैं और कल नहीं होंगे। पर नवयुवकोंके लिए तो कुछ कहना ही होगा। वे बाह्य आडम्बरको मानते नहीं और धर्म उनको कोई सिखलाता नहीं। किन्तु पचासों पुस्तकोंमें समाया हुआ धर्म सिखलाने वाले न तो गुरु ही यहां है न विद्यार्थी ही उन्हें मिलेंगे। इंग्लीश, फ्रेंच, लाटिन ग्रीक भाषाओंमें वे रंगे हुए हैं। प्लाटो, सीज़र, शेक्सपीयर, ह्यूगो प्रभृति युरोपियन महानुभावोंको वे जानते हैं; पर वाल्मिकि, कालीदास, तुलसीदास आदि भारतीय महा कवियोंका उनको शायद ही दर्शन होता है।

कोई बारिष्टर अथवा डाक्टर बनकर आ गया तब तो पूछना ही क्या? घरके सारे आदमी उनकी दहशत खाते हैं। यहां आनेपर वे "मों मोशे" (बडे साहब) बन जाते हैं। बेटेके बुरे भले व्यवहारके लिए बापके मुंहसे चूं तक नहीं निकलता है। एक "मों मोशे" को कोई कुछ कह सकता है? बाप को अब झंडी उड़ानेका भी डर लगता है!!

आंग्ल विद्या संपन्न युवकोंके लिए सहचारिणी भी वैसी ही होनी चाहिये। स्त्रियोंको न पढाना भी हमारा एक आचार-धर्म है और युवक चाहता है एक अपनी जैसी शिक्षिता कन्या। मिले कहांसे? तब जहां मिले वहां वह ढूंढने लगता है। कोई क्रिश्चन सिविल छोकरीके साथ प्रेम लगाकर या तो आशक माशूकका जीवन व्यतीत करता है, अथवा अपनी प्रियाका धर्म स्वीकार कर विवाह कर लेता है। कभी कभी उसको अपने हिन्दू नामसे भी घृणा रहती है। झट नाम भी

बदलकर प्रसादसे पोल बन जाता है। क्रेओल कन्या, हिन्दू युवकके लिए कितनी लालायित रहती है, यह हमारी आंखों देखी बात है। वह चाहे काली, भद्दी, नकटी ही क्यों न हो अपनी लटक-मटकसे हमारे युवकको उल्लू बना देती है और अन्तमें हम उसको खो बैठते हैं। हमारा युवक "लामुर" (प्रेम) की इज्जत करता है। वह उसने पुस्तकों द्वारा पढा है और रोज देखता भी है। अपनी जातिकी कन्याके साथ बात चीत करना तो दूर, उसको देखना भी मना है। अब वह करे तो करे क्या ? वह कहता है कि, पिताने हमको पढ़ाया ही क्यों ? यदि हम निरक्षर रहते, तो किसी भी चसकट्टी कन्याके साथ हमारा निर्वाह हो जाता। हमको सिखाया है बन्दूक चलाना और कहते हैं मारो बाघ ! विवाह एक धर्म का अंश है और पिण्ड दानके लिए पुत्र उत्पन्न करना ही चाहिये आदि धर्मशास्त्रोंकी अब परवाह ही कौन करता है ? केवल सन्तान पैदा करना आजका ध्येय नहीं है। मौज करना प्रधान हेतु है।

बुढे युवक अपनी शोचनीय दशाके लिये सदैव दुःखीत रहते हैं। वे कहते हैं कि, अपने जीवन का वे बलिदान कर रहे हैं। वह स्वतन्त्र हैं, सरकारी नौकरीमें है, आनन्दसे जीवन व्यतीत कर सकते हैं; परन्तु उनके कुटुम्बके मनुष्य, उनके मित्र एवं उनका समाज एक तरफ और वे एक तरफ, यह स्थिति होनेसे एक कुजातके समान उन्हें अपने दिन काटने पड़ते हैं। घरमें उनकी पत्नी है। मसाला पीसना और पुडी तलना आदि रसोई बनानेमें वह प्रवीण है। पति का पेट भर जाता है; पर उनका दिल खाली

ही रहता है, उसका. मनरंजन करने की उसमें शक्ति नहीं है। अपने बीमार बच्चे को एक चम्चा दवा पिलाने के लिये उसे किसी क्रिश्चिन 'मादाम' को ढूंढना पडता है! ऐसी स्त्री के साथ क्या वार्तालाप हो सकता है। मास मछली वे खाते हैं पर चोरी छुपीसे! इस ढोंगी जीवनसे उनका शील भी बिगड जाता है। सबसे भारी दुःख उनको इस बातका होता है कि, अशिक्षित और अंधश्रद्धालु समाजके डरसे उनका जीवन ऐसा कंटकमय हो जाए? वे कहते है कि कर्मफल भुगतने के लिये ही ईश्वरने हमको हिन्दू बनाया है!! फल स्वरूप धर्मान्तरकी ओर वे झुकने लगते हैं।

औसत मनुष्यके लिये धर्मत्याग एक संकट ही है। लाचारी से मनुष्य अपना धर्म छोडने पर तैयार होता है। धर्म भ्रष्ट होजाने पर भी उसके भाव एकदम नष्ट नहीं होते हैं। ऐसे ही एक महाशयके साथ हमारी बातचीत हुई थी। उन्होंने अपनी लाचारी ही प्रकट की। जरा ज़ास्ती छेडनेपर उन्होंने स्वीकार किया "पंडितजी, हमको न इस न उस धर्म का कोई पूरा ज्ञान है। पर मुझे इतना अवश्य मालूम हो गया है कि, मेरा सारा व्यवहार अब खुल्लम खुल्ला होता है। मैं पहले भी खाता पिता था और अब भी खाता, पीता हूं। लेकिन पहले मैं निजको चोर समझता था, अब साव समझता हूं। नवीन धर्मने मेरे ढोंगी भाव निकाल दिये हैं। मेरा शील भी सुधर गया है। मैं कुछ स्वतन्त्र और निर्भय सा हो गया हूं। सभ्य जनोंमें मेरा आना जाना होता हैं। हिन्दू रह कर यह सब असम्भव था। मुझे आशा है कि, मेरी सन्तान जरा बढी चढ़ी ही निकलेगी। बोलिये हम क्या करें?" हम तो आवाक

रह गये। हमारे पाठक समझ जायेंगे कि, हिन्दुओं के आचार-धर्म के कारण ही लोग पर-धर्म की शरण लेते हैं।

सारांश, जो अपनी भाषा नहीं जानते, सभ्यता नहीं जानते, धर्म नहीं जानते; किन्तु उनसे घृणा करते हैं अथवा बेपरवाह रहते हैं; ऐसे नवयुवक हमारे धर्म का भविष्य बना रहे हैं। इन युवकोंके लिये क्या किया जाय, यही मुख्य प्रश्न है। अंग्रेजी शिक्षासे उन्हें विमुख करना अब कोई स्वीकार नहीं करेगा। न वेदाभ्याससे ही कोई सफलता प्राप्त होने की संभावना है। सामाजिक और धार्मिक बातोंकी जो खिचडी बनी है उसे पहले एक दूसरेसे पृथक करना चाहिये। धर्मका स्वरूप हमने बताया है, उस प्रकार का होना चाहिये और सामाजिक बातोंके साथ उसका सम्बन्ध नहीं होना चाहिये। तबही हमारे युवकों को हम इधर उधर भटकनेसे कुछ रोक सकेंगे। अन्यथा ट्रिनिदाद, ब्रिटिश गायना, आफ्रिका, बूरबोन आदि उपनिवेशोंमें हिन्दुओं की जो हालत है, वही और पचास या सौ साल बाद मोरिशसके हिन्दुओंकी होनेका खतरा है।

हिन्दूके घर पली हुई क्रिश्चियनके पेटकी सन्तान अथवा क्रिश्चनके घर पली हुई हिन्दू सन्तान, हिन्दू रहने लगी है, यह बहुत ठीक है; पर वह अपने कुछ न कुछ संस्कार हिन्दू कुटुम्बमें ले आते हैं, इस बातको भी नहीं भूलना चाहिये। हिन्दू जाति उन संस्कारोंको हजम कर डाले तब तो अच्छा ही है; अन्यथा उससे धोखा ही है। मुसलमान और क्रेओलके मध्यमे यहां हिन्दुओंको रहना है। उनका सामना तो वे कर ही नहीं सकते। बचाव कर ले तो भी गनीमत है। क्रओल प्रजा सुसंस्कृत है। अपनी हिन्दू पत्नी

Members of the Managing Committee of the Sanathan Dharma Pracharini Sabha, Port Louis.

(यदि हो) के धर्म भाव तथा सभ्यताकी वे मर्यादा करते हैं। परन्तु मुसलमान, कानोंमें सुराख और देहपर बाजू, सुथनी तथा अभक्ष्य भक्षण आदिसे हिन्दूत्वकी जानो कतल ही कर देता है। एक दिन पछतावा होनेपर भी लौट आना मुश-किल हो जाता है। मुसलमानका घर उसके लिए एक प्रकार का पुनर्जन्म ही है। पुरुषके लिए भी इस्लाममें लिंगाग-छेदन विधि अवश्य है। साराश, एक अपने प्रेम दूसरा अपनी कड़ाई से हमे खीच रहे हैं। प्राचीन समयमे ये बातें नही थी, किन्तु हम ही दूसरोंको खीचते थे।

यवन (ग्रीक) शक, हूण, (हन) चीना, ईरानी, तुर्की आदि अनेक विदेशी जातियोंको हमने प्राचीन समयमें हिन्दू बना लिया है। राजपूत, सिख आदि जातियोंका इतिहास पढ़ने से मालूम होता है कि उनका मूल स्थान कहां है। इन जातियोंने, भारतको अपनाकर, उसकी जो सेवा की है, वह तो सर्वश्रुत है। राणा प्रतापसिंह, छत्रपति शिवाजी, महाराजा रणजीतसिंहको कौन नहीं जानता है। परन्तु बहुत थोडे लोग हैं, जो उनके असली वंशको जानते है। ये वंश बाहरसे आकर हिन्दुस्थानमे बसे है। यह प्रजा राज्य कर्ता हो जाने पर ब्राह्मणोंने उनको क्षत्रिय बनाया और किसीको सूर्य एवं किसीको चंद्रवंशसे विभूषित किया। मुसलमानी समयसे याने लगभग १,००० वर्षसे नया और ताजा खून 'आनेमिक' भारत को मिलना बन्द हो गया। तबसे भारतकी बीमारी बढती ही गई और हजार इलाज करनेपर भी रोग हटनेके चिन्ह प्रतीत नही होते है। अपने से जिनके आचार विचार भिन्न है, उनको हिन्दू धर्ममे स्थान मिलना बन्द हो गया और हमारी अलग खिचडी पकने लगी। उसी

आचार-धर्मको लेकर हम परदेश-गमन करते हैं। अपनेसे भिन्न संस्कृति वालोंसे दूर रहना इसमें कुछ अर्थ है और वह मनुष्य-स्वभावके अनुकूल है; परन्तु यह अलग रहन इतना बढ़ गया कि, हिन्दू लोग घर वालोंके साथ ही वैसा व्यवहार करने लगे। अपनी पत्नीके हाथका भोजन खानेमें निषेध मानने वाले लोग हिन्दुस्थानमें आज भी विद्यमान है !!

हमारी इस मनोवृत्तिसे हमने ८०,०००,००० (कातरवें मिलियों) मुसलमानोंको और लगभग १०,०००,००० (जिस मिलियों) ईसाईयोंको हमारी पवित्र तपोभूमिमें पैदा होने दिया, जो आज हमे घड़ी घड़ी सता रहे हैं। मोरिशसमें भी यही हो रहा है। सन् १९२१ सालकी मनुष्य-गणना (Census) के अनुसार मोरिशसमें ४४,००० मुसलमान थे। दस वर्षके बाद याने १९३१ में वे ५०,००० से अधिक हो गए हैं। ईसाई-योंकी संख्या भी उसी दस वर्षकी अवधि में १४ हजार के करीब बढ गई है। और हिन्दू उसी अवधिमें केवल ३०० बढे हैं। हिन्दू, मुसलमान और ईसाई इन धर्मावलंबि-योंका हिसाब नीचे दिया जाता है।

हिन्दू प्रति वर्ष ३० के हिसाबसे बढे हैं।
मुसलमान " " ४१ २/३ के हिसाबसे बढे हैं।
ईसाई प्रति वर्ष १४०० के हिसाबसे बढे हैं।

क्या कारण है कि, हिन्दू बढते नहीं है ? खेतीके कडे काममें अब हिन्दू ही अधिकतर रह गए हैं, जिससे कदाचित वे अधिक मरते होंगे। शायद कदान्न खुराक होनेसे सन्तान उत्पत्ति उनमें कम होती हो, अथवा धन दाराके लोभसे या अपने आचार-विचारोंपर की उनकी श्रद्धा उठ जानेसे

वे अन्य धर्मोंका स्वीकार करते हों। क्रेओल आदियोंके साथ हिन्दुओंका, शिक्षा, सभ्यता और बोलीके कारण प्रति दिन अधिक मेल जोल बढ रहा है और लोहचुंबकके समान वे हमे घसीट ले जा रहे हैं । भारतीय प्रवासी शताब्दी मनानेकी चर्चा आज कल यहां हो रही है । उस अवसरपर यदि इन बातोंकी चर्चा और हिन्दुओंके ह्रासको रोकनेका कुछ उपाय न ढूंढ निकाला जाए, तो फिर द्विशताब्दी मनाने वाले हिन्दुस्थानी, मोरिशसमे मिलना ही मुशकिल हो जाएंगे !! पोल सोहन, इस्माइल गोवर्धन जैसे नामोंसे हमारे कथनकी पुष्टि होती है ।

मोरिशसमें बीसों संस्थाएं विद्यमान हैं । वेद-प्रचारिणी, विद्या-वर्धिनी, साधु-संघम, महा-मंडल, महा-सभा, हिम-सोसायटी, परोपकारिणी, प्रेम-वर्धक जैसे आकर्षक नाम धारण करके उनका जन्म होता है । संस्थाके लिए उठने बैठनेका स्थान बन जाने तक उनका उत्साह कायम रहता है । बादमें यह सवाल पैदा होता है कि, अब क्या करना ? संस्था निकालने म उनके उद्देश्य बडे ही अच्छे होते हैं; पर कार्य कुछ होता नहीं ।

सद्भावसे की हुई टीकाको भी हमारे लोग सहन नहीं कर सकते है । सुधार या परिवर्तनकी बाते वे सुनना नहीं चाहते हैं । इस हालतमे परम्पराकी ढोलकी बजाते रहना इतना ही इन संस्थाओंके लिए काम रह जाता है । आज चार पांच वर्षोंसे बहुतसे तामिल युवक प्रभु ईसाकी शरण ले रहे हैं । कोई भी हिन्दू संस्था, हिन्दू पंडित या हिन्दू नेता उस ओर ध्यान नहीं देते हैं । आश्चर्यकी बात तो यह है कि, लगभग स..

ही संस्थाओंका मुख्य उद्देश्य धर्म-जागृति होते हुए भी वे उदासीन रहती है। आर्य समाज अवश्य ही कुछ कर रहा है; पर मोरिशसके लिए इनका पुराना कार्यक्रम बदली हुई स्थिति में अब चित्ताकर्षक होनेके चिन्ह नहीं प्रतीत होते।

यहां भलेही मोटे विद्वान न हों, पर बुद्धिमानों की कमी नहीं है। वे स्वयं अपने अपने हित को समझ सकते हैं! क्यों किसी का मुंह ताकना? पूज्यपाद मालवीयजीका धर्मोपदेश जो कि विलायत के प्रयाणमें भारतसे पानी और मिट्टी अपने साथ ले जाते हैं; मोरिशसके लिये कितना कामयाब होगा एक समस्या ही है।

लोगोंमें पहले की अपेक्षा अधिक जागृति उत्पन्न हुई है। यह बात निःसंदेह है; परन्तु पुरानीही दीवार को चुना लगा कर उसकी छाजकी सफेदी की चकचकीसे लोगोंकी नजरको घड़ी भरके लिये धुंधला बना देनेके सिवाय अधिक लाभकी संभावना उसमें हम नहीं देखते हैं। दीवार का पाया घस गया हैं और उसका शरीर खोखला बना जा रहा है। इस दशामें वह कब ढहकर गिर पढेगी पता ही न होगा। व्याख्यानोंकी तो आजकल भरमार है। नव सिखान्त बने हुए हिन्दुस्थानी साहब, प्राचीन सभ्यता पर एक लंबा और जोशिला भाषण छोड कर रामायणके भक्तोंको खुश कर देते हैं। यह भारतीय साहब स्वयं अपनी मातृभाषा को नहीं जानते है, उनके पुत्र या भाई स्कूल या कालेजमे पढते है, उनकी बोली है क्रेओल और कहते हैं लोगोंको चाल चलनेको ऋषि मुनियोंकी ऐसेही एक महाशयके घरेमें प्रदर्शिनी के समान हमने पीतल के कुछ थाली लोटे देखे थे। पर उन पर जो धूल जमी

हुई थी उससे पता लगता था कि, शायदही कभी वे निकले होंगे !!

ऐसे लोग कितने ही शुद्ध हृदयके क्यों न हो, श्रोताओं पर प्रभाव नहीं डाल सकते। किन्तु प्रतिक्रिया-खंडन-तुरन्त होने लगती है। व्याख्याता जैसे ही कोई महाशय कह देते है 'बुगला वले विन पोप्युलेर' अर्थात, 'भाईजी लोकप्रिय बनना चाहते हैं।'

सारांश, पुरानी परम्परा और आचार धर्मके गीत पुनः गाते रहना यही वर्तमान जागृतिका लक्ष्य हो गया है। नये विचार, नये ढंग, नये आचार या नये मार्ग के लिये उसमें स्थान नहीं। जागृतिका आर्थिक दशाके साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। पैसा हाथमे हो, तो सब कुछ सूझ पडता है। मोरिशसकी स्थिति गिरने लगी है और जागृतिको भी वह धक्का पहुंचाएगी। वास्तवमें एसा कोई जबरदस्त धक्का लगने पर ही आंखे खुलती हैं और तब ही क्रान्तिके विचार आने लगते हैं।

क्रान्ति शब्दका प्रयोग हमने किया है; पर हम कहना चाहते हैं कि, हम क्रान्ति देखना चाहते हैं, करना नहीं चाहते हैं!! धर्मके दो अंग आचार और विचार के ऊपर लिखते-लिखते हम क्रान्ति तक पहुंच आये। अब क्रांतिकारियोंके हाथ इस विषयको सौंपकर इस पुस्तककी आत्मा 'हिन्दू मंदिर और संस्थाएं' की ओर हम घूमते हैं। क्रमके अनुसार प्रथम मंदिर काण्डसे आरम्भ करना चाहिये।

# मंदिर आख्यान

हमारा विचार था कि, मोरिशस में हिन्दुओंके जितने पूजा -स्थान हैं, उन सबोंका वर्णन इस पुस्तकमे आशाय ऐसे १० मंदिरों का वर्णन हमने लिखकर तैयार भी किया था। पर रूब साथ रखकर जब उसे हम पुनः पढ़ने लगे तब मालूम हुआ कि, वह चर्वित चर्वण है। तेराशीन के मंदिर का जो वर्णन हमनें दिया था, ठीक वैसा ही लामुरी के मंदिर का भी था। अधिकतर मंदिरों के लिये कोठियोंसे भूमि मिली हुई है। लकडी, पत्थर आदि मिले है तथा एक सरदारने अपने मित्रोके सहयोग से कुछ चंदा एकत्र किया और देवल खडा कर दिया। उनकी यह ऐसी एकही ढांचे की कहानी है। अब यह एक ही कहानी पचास बार सुनानेसे हमारे पाठक उब उठेंगे और कहेंगे कि, पुस्तक भर देने के वास्ते यह सब लिख मारा है। बात भी ठीक हैं। इस लिये हमने केवल चुन कर ५० मंदिरों का इतिहासही इस पुस्तकमें दिया है। यद्यपि उनमे कतिपय मंदिर अप्रसिद्ध ही है। ऐसे भी मंदिरों का वर्णन देने का उद्देश्य इतना ही है कि पाठक समझ जाय कि, जो पचासों देवल टापू भरमे इधर उधर जीर्ण और त्यक्त अवस्था में नजर आते हैं, उनकी सृष्टि कैसी हुई थी।

टापू भरमे १५० के करीब हिन्दू देवालय हैं। उनमेंसे हम ने ८० स्थानों का निरीक्षण किया है। जहां जहां चीनी का

कारखाना था, वहां २ एकाध देवल जरूर होता था। कारखाने टूटने लगे, उनका केन्द्रीकरण हुआ और आबादी उठ गई। देवल वैसे ही पडे रहे। अधिकतर मंदिर मद्राजियों के हैं। दो लाख हिन्दुओंमें मद्राजियों की संख्या पूरी चालीसहजार भी नहीं होगी; पर उन के मंदिर कलकतियाओंसे कई गुना अधिक हैं। कलकतिया के एक मंदिरके लिये मद्राजी के चार यह प्रमाण है। उनके इतने अधिक देवल होने पर भी उनमें ही, क्रिस्तान अधिक होते हैं।

मंदिर-प्रथा का प्रचार पहले दक्षिणमें ही अर्थात् मद्रासमें आद्य शंकराचार्य द्वारा हुआ है वहांसे वह उत्तर की ओर यानी युक्त प्रान्त और बिहारमें फैला। हमारे विचार में यही कारण है कि, मद्राजी देवलों की प्रचुरता देखनेमें आती है। शंकराचार्यने बुद्ध मतका खंडन किया और वैदिक-हिन्दू धर्म की पुनः स्थापना की। बुद्ध धर्मीय लोग, बुद्ध की पूजा करने लग गये थे। धीरे २ बुद्ध को लोग अवतार भी मानने लगे। बुद्ध धर्म पर शंकराचार्यने मंडनमिश्रका पराजय करके, विजय तो प्राप्त कर ली; पर मूर्ति के अभावमें, उस समय के लोगोंका मूर्ति-स्वभाव बन जाने के कारण; शंकराचार्य की विजयका प्रभाव उनपर उतना नहीं पड़ा। इसलिये उन्होंने बुद्ध मूर्तिके स्थानपर हिन्दू देवी देवताओंको स्थापन करने की अनुज्ञा दी और तबसे कहते हैं कि, हिन्दुस्थानमें हजारों मंदिर निर्माण हुए। विद्वानोंके इस कथनके साथ हम भी सहमत हैं। बुद्ध-धर्म का जन्म भारतमें ही हुआ था और १,२०० वर्ष तक उसने वहां राज्य किया है। वहांसे उस को निकलना कुछ आसान नहीं था। बुद्धकी प्रतिमाकी पूजा

The old Shiwala of Gokoola

होने लगी थी। उसी हथियार से ही शंकराचार्य, हिन्दू धर्मकी फिर स्थापनाकर सके। उसीको कांटेसे कांटा निकालना कहते हैं।

मुसलमान लोग, मूर्ति पूजा नहीं करते; पर मक्केमें 'कावा' नामक पवित्र माने हुए काले पत्थरके सामने सिर झुकाते हैं। मक्काके मूर्ति स्थानोंको महम्मदने तोड दिया हैं; पर कावा पत्थर को रख दिया। दुनियां भरके मुसलमान कावा की ओर मुंह करके नमाज पढते हैं अर्थात, अंतःचक्षुसे उसका दर्शन करते हैं। उस समयके अरबों के प्राचीन विश्वास को मान देकर अपने नये धर्मकी ओर खींचने का ही महम्मद पेग़म्बरका हेतु होना चाहिये। विद्वानोंका यही मत है। इस्लामकी स्थापना और प्रचारमें तलवारने बडा काम दिया है। शंकराचार्य विद्या बुद्धिसे काम लेते थे जिससे बुद्ध मूर्ति को वह तोड नहीं सके सिर्फ दूसरी मूर्ति को विठा सके। मतलब यह है कि दोनों का कार्य एकसा था और दोनों फ़ल सिद्ध हुए. तलवार का जोर होने पर भी कावा को पूजनीय स्थान मानना-ही पडा. अत्यन्त-प्राचीन विश्वास का सर्वथा नाश करदेना कितना कठिन है उसका यह एक प्रमाण है और यह सिद्ध करनेके वास्ते हमको अरबस्तान की सैर करनी पडी है. शंकराचार्य के कार्य को इसी दृष्टिसे देखना चहिये।

उनकी जन्म-भूमि मद्रास प्रांत है। मद्रास देशमें हिन्दुस्थानके और प्रांतोंकी अपेक्षा, मंदिर इतने अधिक क्यों है इसका कारण हमारे पाठक अब अच्छी तरह समझ सकेंगे। अयोध्या और मथुरा हिन्दुस्थान की उत्तर दिशा में है। राम कृष्ण के जन्म वहांही हुए हैं। रामायण, भारत, भागवत आदि पुराण वहीं बने हैं। उनकी पूजा भी वहीं अधिक प्रमाण

मे होती है। मद्रास में शायद उनके मंदिर नहीं होनेसे मोरिशसमे भी मद्राजियोंमें रामकृष्ण के मंदिर नहीं सुने जाते हैं। मद्राजियोंके समस्त मंदिर, मारीआम्मेन, द्रौपदीआम्मेन तथा सुब्रह्मण्यके हैं। बिहारी और मद्राजी दोनो हिन्दू होते हुए भी यह ऐसा क्यों मालूम नहीं। आर्य और द्रवीड़ जातियोंमें हमेशासे झगडा रहा है। कदाचित इसी वास्ते उत्तरके रामकृष्णादिके लिये दक्षिणके द्रवीड याने मद्राजियोंमें मंदिर नहीं बने हैं। खास कारण मालूम नहीं। मद्राजियोंकी बस्ती अल्प होनेपर भी उनके देवल अधिक क्यों हैं यह बतानेके लिये उपरोक्त विवेचन करना पडा है।

मंदिरोंकी अधिकता यानी धर्म-श्रद्धाकी अधिकता। श्रद्धा-भक्तिकी अधिकता अर्थात धर्म-रक्षा और धर्म वृद्धिकी अधिकता। यदि ये बातें सत्य हैं तो हिन्दुओंकी धर्म रक्षा और धर्म वृद्धि देखनेमें आनी चाहिये। धर्म वृद्धिके लिये तो कहना पडेगा कि,हिन्दुओंकी संख्या घटती जा रही है, इसलिये धर्म वृद्धि तो हुई नहीं। इस बातको आंकड़ोंके प्रमाण देकर हमने सिद्ध किया है। अब बात रही धर्म-रक्षाकी। अभी तक दो लाख हिन्दू मोरिशसमें है। इसलिये कहना पडेगा कि इन मंदिरोंने जरूर ही कुछ धर्म रक्षाकी है और जिसके लिए मंदिरोंको निर्माण करने वालोंको धन्यवाद ही देना चाहिये।

हिन्दू धर्मके अनुयानियोंकी संख्या बढ़ाना इसका अर्थ है धर्मकी वृद्धि और उनको अपने धर्ममे ही रखना याने पर धर्म मे जाने नहीं देना इसका अर्थ है धर्म रक्षा। गुरु नानक के सिख पंथने लगभग ३५० वर्ष पूर्व अन्य धर्मवालोंको अपने धर्ममें लेनेका यत्न किया है। सिख लोग इस समय ४०

लाख (चार मिलियों) हैं। सिख धर्ममें कोई भी प्रवेश कर सकता है; परन्तु उसमें वेद, पुराण, अवतार, मूर्तिपूजा, जाति-पाति, संस्कार, क्रिया कर्म आदिका त्याग करना पड़ता है। हिन्दूत्वके त्यागमें प्राचीन सभ्यता, धर्म ग्रंथ, साहित्य, इतिहास आदि हिन्दू गौरवकी समस्त बातोंको तिलांजलि देनी पड़ती है। सिख और उनके धर्मगुरु भारतमें ही जन्मे हुए हैं और वे सबके सब हिन्दू ही थे। हिन्दू धर्मको छोड़ देने पर भी हिन्दुओंके साथ उनका सारा सम्बन्ध रहा है। हिन्दुओंकी भाषा ही वे बोलते हैं। उनके विवाह भी हिन्दुओंमे होते हैं। वे गौ भक्षण नहीं करते है। उन्होंने अपनी वीरतासे मुसलमानी सत्ताको उडाकर पंजाबमें उनके अत्याचार बंद किये और हिन्दुओंका मुख उज्वल किया इत्यादि बातोंके कारण वे वेद पुराणको न मानने वाले है तो भी सिखोंको हम हमारे भाई ही समझते है। हिन्दुओंसे जो पंथ निकले है, उनमें सिर्फ एक ही सिख पंथ है, जो आत्म गौरवके लिये सदा मर मिट जानेपर तैयार रहता है। हिन्दुओंके लिये यह गर्व की बात है कि, उनके भाइयोंने एक नया संगठन बनाकर भारतके इतिहासमें अपना नाम सदैवके लिये दर्ज कर रखा है। यह सब करनेके लिये उनको हिन्दू धर्मको ठुकराना पडा। केवल इस एक बातमें ही हमे जरा दुःख है। हिन्दू रहकर ऐसा संगठन, पराक्रम और कट्टरता प्राप्त करना असंभव जानकर ही शायद उन्हें हिन्दूपनका त्याग करना पडा हो। यदि ऐसी बात हो तो हिन्दुओंको आत्म संशोधन करना चाहिये। स्वयं हिन्दूत्वका त्यागकर हिन्दू-धर्मकी सिखोंने रक्षा की है इस बातको भी नहीं भूल जाना चाहिये। यह सब होने पर

भी वे हिन्दू रहे नहीं और इसलिये यही कहना पड़ेगा कि, सिख धर्ममेंसे हिन्दुओंकी वृद्धि हुई नहीं।

इसके बाद स्वामी दयानन्दने पिछली शताब्दीमें आर्य समाज की स्थापना करके धर्म वृद्धि की सर्वप्रथम घोषणा की। पर-धर्मियों को अपने धर्ममें समाविष्ट कर लेनेका मंत्र स्वामीने ही पहले पहल हिन्दू जनता और संसार को दिया वेदके झण्डेके तले आजानेकी पहली बांग दयानन्दनेही दी है। भारतके धार्मिक इतिहासमें शुद्धिके नामसे यह घटना अपूर्व बनी रहेगी। स्वयं हिन्दू रहकर दूसरों को तत्सम बनाना इस का नाम है धर्मकी वृद्धि। इस शुद्धि आन्दोलनको हिन्दुओं ने अब अपनाया है और भ्रष्ट तथा पर धर्मियों को भी शुद्धि करके हिन्दू धर्ममें सम्मिलित कर लेनेका उद्योग हो रहा है। हिन्दुओंके धार्मिक भाव विशाल और उदार होना तथा इस शुद्धिका सर्वत्र प्रचार होना अभी दूर की बातें हैं और इस लिये यदि यहांके मंदिरोंसे धर्मवृद्धि न हो सकी तो वे दोषास्पद नहीं ठहर सकते हैं। खुद भारतके मंदिरोंसे, जो बात नहीं हो सकी है, उसकी आशा यहां रखना व्यर्थही है। लेकिन कहीं यहीं सूत्रपात हुआ है यह आनन्द की बात है और आशा नहीं; किन्तु विश्वास किया जाता है कि, यह शुद्धि द्वारा धर्म वृद्धि का काम हमारे मंदिर जरूरही उठाने लगेंगे।

भलेही इन मंदिरोंसे धर्मवृद्धि न हुई हो; पर धर्म रक्षा तो उनसे निसंदेह हुई है। लोगोंका विश्वास और मनःशांतिके लिये अवश्य कोई स्थान होने चाहिये। ये मंदिर नहीं होते तो नहीं मालूम क्या होता? सुनते हैं कि यूरोपमें कोई हिन्दू मंदिर नहीं है। मतलब किसी अंशमें मंदिरोंने अपना काम

किया है। अब यह देखना चाहिये कि, ये मंदिर कैसे हैं, बदली हुई परिस्थितिमें उनमें क्या सुधार होना चाहिये. वे सुस्थिति में कैसे रहे और उनसे धर्मरक्षा तथा धर्मवृद्धि कैसी हो। अब देखना चहिये कि ये मंदिर कैसे ।

मोरिशसके ये मंदिर आबादीसे दूर बने हुए हैं। ईसाई और मुसलमान प्रजाके विशाल और भव्य मंदिरोको देखते हुए हमारे शिवालय उनके प्रमाणमें बहुत छोटे मालूम होते हैं। शहरका कैलासों (मीनाक्षी) तथा त्रियोले, रोजबेल आदि स्थानके मंदिर ऊचाई में अपना बडप्पन प्रकट करते हैं। यहां २००.००० हिन्दू होते हुए भी उनके मदिर ऐसे क्यों होते है, यह जानना कोई भारी बात नहीं हैं। पहिली बात तो यह है कि हिन्दू गरीब हैं। गोरों की खेती पर काम करनेमें ही उनकी पीढियां बीती हैं। दूसरी बात यह है कि हिन्दुओं की जाति पांतिके कारण शूद्रादि लोग जो कि मोरिशसमें बडी संख्यामें है, शिवालयोंमें उतने उत्साहसे भाग नही लेते हैं। शिवालय बनानेका और उसे चलाने का बोझा कुछ थोडे लोगोंपर ही पड़नेसे हमारे शिवालय अन्योंकी बराबरी करनेमें असमर्थ रहते हैं।

तामील प्रजामें तो यह जात पातका झगडा बडेही तीव्र रूपमें चला करता है। मोरिशसमें तामिलोंके अच्छे २ मंदिर हैं; पर उनमें शूद्रों को आने तक का अधिकार नहीं है, दर्शन पूजन तो दूर रहा। लाचारीसे इन दलित प्रजा को दूसरे मंदिर बनाने पडते है और जहां उच्च वर्णीय मद्रासी कभी नहीं जाते हैं। हमारे विचारमें यही कारण है कि भारतीय ईसाईयों में मद्रासी ही अधिक देखनेमें आते है। रोजहिल (स्टानले) में

उनके लिए एक नया गिरजा घर बना है। इसके सिवाय मद्रा-जियोंके देवी देवता भी दूसरे। किसी कलकतिया शिवालामें द्रौपदी या मारीआम्मेन की मूर्ति नहीं मिलेगी न कलकतिया उन की पूजाही करते हैं; पर मोरिशस के तमाम तामिल मं-दिर उपरोक्त देवियों के ही है और कहीं २ सुब्रम्हण्य के हैं। यहां दस पांच तेलगू लोगों के मंदिर हैं; पर जानने योग्य बात यह है कि, उनमें कोई भी मूर्ति नहीं पाई जाती है। शायद ये लोग मूर्तिपूजक न हो। उनके मंदिरोंमें देवी देव-ताओंके चित्र होते हैं और वे भी देखा देखी रखे जाते हैं या क्या कुछ मालूम नहीं।

बम्बई याने मराठोंके भी दो मंदिर हैं। उनमे विठोबा रखुमाई (कृष्ण-रुक्मिणी) की पूजा होती है। सारांश हिन्दु-ओंके यहां जितने प्रांतिक विभाग है उन सबोंके देवी देवता, विधि और भाषा अलग-अलग होनेसे तमाम हिन्दुओंके बडे संयुक्त मंदिर बननेमें बाधा ही पहुंचती है। गिरमिटी प्रथा (Agreed labour) आज १५ सालसे बन्द हो गई है। उससे पहले जहां कुछ सुभीता और दो पैसे अधिक मिलते थे वहां लोग चले जाते थे। अर्थात उनका कोई स्थायी स्थान न होनेसे मंदिर आदि से वे पर्वाह ही रहते होंगे। इस समय हिन्दू लोग जरा स्थायी होने लगे हैं; पर उनकी संतानमें वह श्रद्धा नहीं पाई जाती है जो कि, उनके बाप दादाओंमे थी। मंदिर प्रति जो अनास्था देखी जाती है उसका यह भी एक कारण हो सकता है।

तीसरा कारण यह है कि, सार्वत्रिक चन्दा करके, बहुत नहीं तो टापू भरमे चार पांच ही भव्य मंदिर खडे करने

का साहस, उदारता, श्रद्धा, ज्ञान, प्रमाणितका धर्माभिमान और सब से बढकर एक जातीयताका भाव आदि गुण लोगोंमे कम प्रमाण में पाये जाते हैं। गोसवंन, त्रिओले, रिवियेर दे फओल, केलासों, गोकुला आदि शिवालय एक एक व्यक्तिके पुरुषार्थका फल है। जात पात, धन, देवी देवता या सार्वजनिक भावकी अपेक्षा अधिक हानि कारक चौथा कारण यह है कि, हिन्दू प्रजाका अपने शिवालयोंके साथका सम्बन्ध।

हर एक हिन्दूका घर, चाहे वह झोपडी ही क्यों न हो, एक छोटासा देवल ही है। उसी मे वह झण्डी उडाता है, कथा सुनता है, श्राद्ध करता है, विवाह करता है, मुंडन करता है, रामायण पढ़ता है और कहीं एक कोनेमें कोई चित्र या पाषाण आदि रखकर उसको हाथ जोडता है। अब उसको शिवाला जानेकी आवश्यता क्या है? यदि समीपमें कहीं शिवाला हो, तो सालमें एक दिन जाकर वह जल भी चढ़ाए-गा। अर्थात, सारे साल भरमें केवल दो तीन दिन वह अपने शिवाला आता है। अगर कोई उसे कहे कि, मंदिर क्यों नहीं आते हो, तो उसका उत्तर तैयार पडा है। क्या हमारे घरमें भगवान नहीं है? और कोई तत्ववेता वेदान्ती हो तो वह आपको कह देगा कि, ईश्वर हमारे हृदयमे वास करता है, शिवाला जानेकी क्या जरूरत है? इसी कारण बहुत मंदिर (खासकर छोटे छोटे तामिल देवल) प्रायः बन्द ही रहते है और जहां पुजारी होता है, वहां वह अकेला ही नित्य की पूजा आरती करके मंदिरको जीता रखता है। सायंकालकी आरतीमें भी जनताकी उपस्थिति नहीं रहती है। इसके सिवाय, मंदिरके संचालकोंके साथ न बनती हो, तो मंदिर खा-

लो ही पड़ा रहता है।

धनी मनुष्य, खास अपने लिए कभी कभी एक देवल सा स्थान बनाकर उसीमे अपनी धर्म क्षुधा शांतकर लेता है। उनको मंदिरोंमें क्या मतलब ? कतिपय देव स्थानोंके मालिकोंके साथ लोगोंकी अनबन हो गई, तो जानों मंदिर बहिष्कृत होजाते हैं। ये मालिक मंदिर परका अपना अधिकार छोड़ना नहीं चाहते हैं। कोई मंदिर ऐसे है, जहां पुजारी ही मालिक बन बैठता है और उसे उपजीविकाका एक साधन समझ लेता है।

यह सब होने पर भी, नये मंदिर बनते ही जाते हैं। कुआ खोदना, धर्मशाला बांधना, किसीका विवाह करना, अन्नदान करना आदि पुण्य कार्य समझते हैं। इसी प्रकार शिवाला बनाना भी, हिन्दू लोग एक पुण्य कार्य मानते है। यह नहीं देखा जाता है कि, जहां शिवाला बनाना है, वहां कितने लोग रहते हैं, वहां की परिस्थिति कैसी है, लोग किस श्रेणीमें हैं, उनकी आर्थिक दशा कैसी है, आदि बातो पर विचार नहीं होता है। एक पुण्य कार्य समझकर जहां भी जमीनका टुकड़ा मिल जाता है, वहीं उत्साही व्यक्तिके परिश्रमसे शिवाला खड़ा हो जाता है। लोगोंमें धर्म और ईश्वरके प्रति श्रद्धा-भक्ति बढ़ाना यह जो शिवालयोंका मुख्य हेतु है, उसको लोग भूल जाते है और मंदिर बनाना यह एक मोक्षप्रद काम मानकर निजके लाभके वास्ते मंदिरोंकी निर्मिति होती है। मंदिर तैयार होनेपर उत्साह खलास हो जाता है और जनतामें भक्ती-भाव जागृत करने का असली उद्देश्य निद्रित अवस्थामें ही रह जाता है। यही सबब है कि, मंदिर बनते जाते हैं; पर असली हेतु
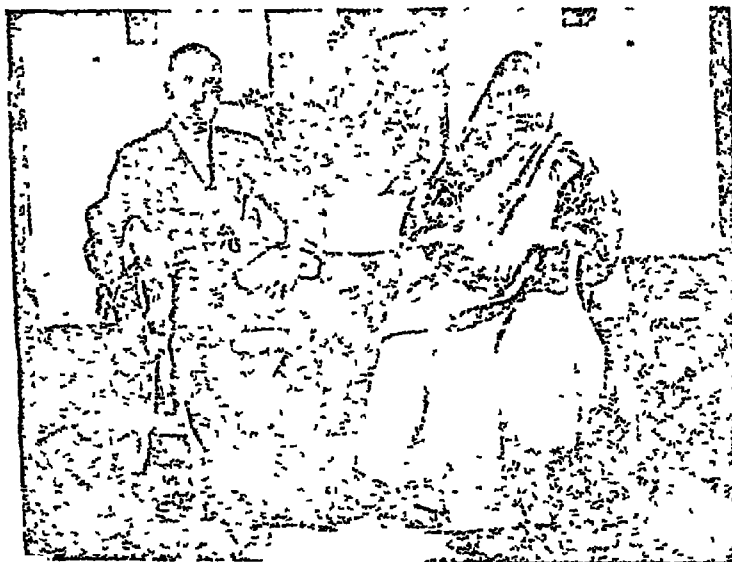
Mrs & Mr. Laxmanrao R Pawar of Beau Bassin
Whose generous activities are described elsewhere

साध्य नहीं होता है और न तो वे कुछ उन्नत अवस्था मे ही रहते है। ईश्वर को रहने के लिये एक स्थान बना देना इतनाही प्रयोजन हो, तो कहना पडेगा कि, मंदिर अपना कर्तव्य पालन करते है। पर मंदिर जनता के वास्ते है, उनको प्रतिदिन वहां आकर पूजा पाठ करना चाहिये, यह एक धर्म शिक्षा देने की पवित्र पाठशाला है, यदि ये हेतु हो तो वे क्यों नहीं सिद्ध होते है। इस बात का विद्वान, विचारी, धनाढ्य, उदार तथा श्रद्धालु हिन्दुओंको एक जगह बैठकर विचार करना चाहिये। आमंत्रण देने पर भी, हलवा पूरी या मिष्टान्न भोजन करना, यदि लोग स्वीकार नहीं करे, तो वैसा स्वादिष्ट और कीमती रसोई बनानेसे क्या लाभ?

## मंदिर कैसे हैं?

पहले मंदिरोंमे जल चढ़ता था और पूजा आदि होती थी। अब कुछ समयसे—दस बारह सालसे—रामलीला बन्द हो गई है और त्योहार आदि मंदिरोंपर मनाये जाने लगे हैं। कथा, भागवत आदि भी होता है और उन अवसरों पर व्याख्यान, उपदेशसे धर्म जगृति की जाती है। यह उपक्रम बहुत ठीक है। उनमे लोग कुछ सुनते हैं, जानते हैं और विचार भी उत्पन्न हो जाता हैं। सारे साल भरमें ऐसे अवसर बहुत हीं थोडे याने तीन चारसे अधिक नहीं होते हैं और उनसे लाभ की संभावना भी उसी प्रमाणमें। जहां कुछ नहीं था वहां इतना होने लगा है, यह भी सुचिन्ह ही है।

मंदिर की बनावट ऐसी ही होती है कि, जिसके मध्यमे मुख्य मूर्ति तथा आस पास या कोनोंमें अन्य देवी देवताओं

की मूर्तियां या चित्र रखने के लिये जगह हो। इन छोटे से व्यासमें बड़ी मुश्किलोंसे आठ दस मनुष्य खड़े हो सकते हैं। इसी को पूजा स्थान कहते हैं। एक २ मनुष्य अन्दर आकर जल चढाकर चला जाता है, अथवा पूजा करके बाहर निकलता है। प्रति दिन की पूजाके लिए, जिसमें शायद ही दस पांचसे अधिक आदमी रहते हैं, ये मंदिर ठीक हैं, परन्तु भीडके समयपर बाहर खडे रहने वालोंको खासकर स्त्रियां, बच्चे, और वृद्धोंको धूप या पानीसे कभी-कभी कष्ट ही उठाना पडता है। आजकल व्याख्यान, उपदेशकी जो नई प्रथा शुरू हो गई है, उसके वास्ते तो मंदिरोंकी रचनाका पुराना ढंग काममें नहीं आता है। ऐसे मौकोंपर उस समयके लिए मंडप आदि खडा करके काम निकाल लेते हैं, पर बरसात, हवामे तो लोगोंको तकलीफ ही होती है। कहीं कहीं पक्के मंडप बने है, वे ठीक हैं; पर उससे भी ठंडी आदिमे ठीक रक्षा नहीं होती है। बदले हुए समयके अनुकूल मंदिरोंकी रचना होनी चाहिये। पूजा स्थानके साथ सटा हुआ विशाल मंडप होना चाहिये; ताकि उसमें दो तीन सौ आदमी आसानीके साथ बैठ कर व्याख्यान, उपदेश सुन सकें और जिसमें धूप, ठंड, बरसात या वायुका कुछ भय न हो। इस सम्बन्धमे कास्कावेल, कांकावाल और रोसकूट-पो वालोंके मंदिर आदर्श रूप हैं। उपदेश, कथा, भागवत सब रात्रि समय होता है और पक्का मंडप ही उस समय काम दे सकता है। मंदिरको सौ फीट ऊंचा बनानेमें खर्च करने की अपेक्षा वैसा पक्का मंडप ही हमारे विचारमें अधिक लाभदायी है।

## मंदिर और घर

मंदिरकी रचनामें ही केवल परिवर्तन करनेसे लोग प्रति दिन आकर पूजा पाठ करने लग जाएंगे, यह आशा रखना व्यर्थ है। मंदिरकी आवश्यकता लोगों को प्रतीत होनी चहिये। जब तक उनके धर्म-कार्य बिना मंदिरके हो सकते हैं; तब तक मंदिरके प्रति उनमें उपेक्षाका ही भाव रहेगा। ईसाईयोंमें जब तक गिरजाघरमें पाद्रीके सम्मुख उपस्थित न हो जाय, तब तक विवाह ही हो नहीं सकता है। उनके सारे संस्कार उनके मंदिरोंमें होते है। ऐसी ही कुछ धार्मिक कार्यों की व्यवस्था हिन्दुओंमें भी होनी चाहिये, तब ही हमारे, मंदिर चल सकेंगे अन्यथा नहीं। अन्नप्राशन, नामसंस्करण जैसे छोटे संस्कारोंसे विवाह और अंत्येष्टि तथा झंडीसे भागवत तक के समस्त धर्मकार्य मंदिरमें ही करने की परिपाटी जारी करनी चाहिये। कोई भी धर्म-कार्य घरमें नहीं होना चाहिये। पूजा पाठ तथा प्रार्थना आदि सब कुछ मंदिरमें ही हो। इन कामोंके वास्ते पवित्र और शुद्ध स्थानकी आवश्यकता है। निजका घर मंदिरके समान कभी पवित्र नहीं हो सकता है।

लोग अपने घरोंमें अभक्ष्य भक्षण करते हैं, शराब उड़ाते है, अशुभ संकल्प करते हैं, गाली गलौच; करते हैं स्त्री बच्चोंको मारते पीटते है, मल मुत्र विसर्जन करते हैं और संतान पैदा करते हैं। तथा व्यभिचार भी करते है। कहीं जूठे बरतन पडे है, तो कहीं गन्दे वस्त्र टंगे हैं। कोई खुजलीसे भरा पडा है, तो कोई मलेरियासे तडप रहा है। मुर्गी, कुत्ता हो तो, वे घर में और आंगनमें भी अपनी करामात दिखाते हैं। बहुत दिनों की बात है, एक यजमानके घर हम विवाह के निमित्त गए

थे। हम कुछ भोजन कर रहे थे कि, पिछेसे हमने कुड कुड़ की आवाज सुनी। पूछने पर मालूम हुआ कि, मुर्गी अंडों पर बैठी हुई थी। अरे सोचनेकी बात है कि, ऐसे घरोंमें ईश्वर को बुला कर कथा सुनना, कहां तक उचित है? यह तो मियाजी के घर बाबाजी को भोजन का आमंत्रण देनेके समान है। मियांजी चाहे दाढ़ी मुंडावे अथवा दस सेओ (बाजटी) पानीसे निहावे। मतलब यह कि, उस दिन घरकी कैसी भी सफाई करो; पर आखिर तो घरका घर ही न! पवित्रभाव उत्पन्न होनेके वास्ते वैसी परिस्थिति होनी चाहिये। एक ओरसे वह कथा सुन रहा है, तो दूसरी ओरसे बच्चे का रोना सुनता है। ऊपर टंगे हुए तम्बाकू की ओर कभी उस की दृष्टि जाती है, तो कभी लाल ओढनी झटपसे उस की आंखको धुंधला देती है, कहीं जारीना जड़कती है तो कहीं सुलोचना मुस्कुराती है। अर्थात्, इस सिनेमा रूपी अनेक दृश्योंके घरमें यजमानके दिलमें श्रद्धा-भक्तिका भाव उत्पन्न ही कैसे हो सकता है? और बिना भावके कार्यसे लाभमें क्या होगा? सारांश घरमें धार्मिक विधि करनेमें मन स्थि रखना बहुत कठिन है और जिससे ईश्वर प्रति अनन्य भावकी सृष्टि होना और भी कठिन है। यह बात ठीक हो तो अपने धार्मिक कार्य मंदिरोंपर ही करना क्या उचित नहीं है? मंदिर एक शुद्ध और पवित्र स्थान होता है। वहां आनेपर मनुष्य केवल ईश्वरको देखता है। वहां दूसरी कोई वस्तु न होनेसे उसका हृदय और उसके विचार केवल एक ही दृश्यपर लगे रहते हैं। इस प्रकार अनन्य भावसे किये हुए धर्म-कार्यमें जो शांति, समाधान और आनन्द प्राप्त होता है, वह अवर्ण-

नीय है । इनका अनुभव तब ही हो सकता है, जब कि, हम हमारे धार्मिक कार्य शुद्ध और पवित्र मंदिरमे ईश्वरको आंखके सामने किया करें ।

आजकल कहीं कहीं विवाह आदि मंदिरोंमें होने लगे है। इसका सर्वत्र प्रचार होना चाहिये । समाजका भी इसमें लाभ ही है । समय-समयपर मंडप बांधना और तोडना आदि मे जो खर्च होता है, वह बच जाएगा । पंडित तथा प्रतिष्ठित जनोंके सहयोगसे यह प्रथा रूढ हो सकती है । पंडितोंका उसमे फायदा है । जब मंदिरोंपर ही सब धार्मिक कार्य होने लगेंगे तब एक-एक मंदिरके वास्ते चार या पांच ब्राह्मणोंकी आवश्यकता होगी । आज उनका जीवन यजमानोंकी दया पर आधार रखता है; पर यह नई रूढी अमलमें आ जाय तो वे मंदिरमे बैठे-बैठे स्वाभिमान पूर्वक ब्रह्मतेजको प्रकट करते हुए अपना कार्य कर सकेंगे । आचार्य, पुरोहित, उपाध्याय, याज्ञिक, पंडित, दीक्षित, शास्त्री, आदि उपाधियोंसे वे विभूषित होंगे और उनको प्राप्त करनेके वास्ते वे धर्म शास्त्रका अभ्यास करेंगे । घासकट्टा कह कर उनका आज जो उपहास किया जाता है, वह बन्द होगा। अपने में और अन्योंमे भी "मों सेव्येर" के गौरवसे लोग उनका मान करेंगे। दो पैसेके वास्ते यजमानके घर जाकर उसको तीन घंटे तक खुज-लाते रहनेकी मनोवृत्तिको तो ठुकराना ही चाहिये । यह सब होने लग जायगा तब शिवालयोंमे दैनिक और नैमित्तिक पूजा पाठ तथा पूजा प्रार्थना और उपदेश आदि कब और कैसा हो वगैरह बातोंका विचार अपने आप ही चला आएगा।

बहुत सी सभा सोसायटियां केवल शिवालाके प्रबंधके लिए ही निर्माण हुई है। इन संस्थाओंके सदस्य अपने धर्म-कार्य शिवालोंमे ही किया करें, तो भी शिवालोंकी उन्नति होगी और समाज भी फिर अवश्य ही उनका अनुकरण करेगा।

जब लोग यह जान जाएंगे कि, बिना मंदिरके उनका धर्म-कार्य नहीं हो सकता है, तब मंदिरकी ओर ध्यान देने पर और उसके लिए खर्च करनेपर वे बाध्य होंगे। मंदिर विशाल और भव्य बनेंगे। उनकी हमेशा मरम्मत होगी और वे अच्छी प्रकारसे चलेंगे। नई पीढी शिवालोंसे उतना सरोकार नही रखती है और भविष्यकी पीढिया नहीं मालूम आगे बढ़कर और क्या करेंगी। इस धर्मापत्तिको रोकनेका एक मात्र उपाय यही है कि, हमारे समस्त धार्मिक काम फकत मंदिरोंमे ही हो।

## भविष्य

इस समय हमारे मंदिर जिस हालतमे चल रहे हैं और भी कुछ समय तक हिलते डुलते चलते जाएंगे, पर प्रकृतिके नियमानुसार एक दिन वे थक ही जाएगे तब उनको कौन उठावेगा? यह थोडा दूरका प्रश्न है, पर अवश्य ही बनने वाली घटना है और इसी वास्ते भविष्यकालीन संकटको पहचानकर आज ही से उसके निवारणके उपायको सोचना चाहिये। पोर्ट लुइस शहरमे कातोलिक लोगोंका कातेद्राल धस गया था। उन्होंने प्रति साल पचास हजार रुपयाके हिसाबसे तीन साल मे डेढ लाख रुपया इकठ्ठा करके कातेद्रालको फिर नये सिरसे उठाया। हमारे शिवालापर ऐसी आपत्ति आ जाती है तो एक हजार रुपयाके खर्चके लिए तीन साल परिश्रम करने

पड़ते है । कांकावाल क्युरपीपका शिवाला, जिसमें लगभग २,००० रुपया लगा है, चार साल बाद पूरा हुआ !

हम देखते हैं कि, जहा भागवतमें ५०० या १,००० रुपया होता था, वह सौ पचास और उससे भी नीचे जाने लगा है । हमने देखा है कि, लोग आरतीमें नहीं; किन्तु तुलसी दलमें भी एक सेन्ट डालने लगे हैं !! ब्राह्मणोंकी शिकायत है कि, उनकी वृत्ति मारी जा रही है। इन सब बातोंसे यह स्पष्ट है कि, लोगोंकी धर्म-श्रद्धा बहुत ढीली हो गई है। और यदि यही स्थिति रही तो आगे चलकर क्या होगा, इस बातका विचार करनेका समय आ धमका है । नई पीढी—खासकर सरकारी पाठशालाओंमें पढने वाली—अपनी मातृ-भाषासे हट रही है । कथा, उपदेशमें वे क्या समझेंगे और मंदिरमें आकर क्या करेंगे ? अब रहे पुरनिया । उनकी उदारता और श्रद्धापर हमारे मंदिर निर्भर हैं; पर वे हैं थोडे दिनके मिहमान । और फिर ?

उपरोक्त सब बातोंकी अपेक्षा बहुत भारी और अनिष्ट बात यह है कि, मान तथा इज्जतका चक्र इस समय उल-टा घूम रहा है । आज तक बाबाजी, बाबूजी ही हमारी जाति व्यवस्थाके अनुसार हमारे स्वयंभू नेता थे। फटे बाबाजी और टूटे बाबूजीका हम सर्वत्र मान करते थे और उनको पहिला स्थान मिलता था । इस समय विवाह आदि अवसरों पर भोजनके समयमें ही उनको याद किया जाता है । "उठो बाबाजी बाबूजी लोग" इस बांगमें ही उनकी प्राचीन प्रतिष्ठाका लोगोंको स्मरण हो आता है। इसके सिवाय

अन्यत्र उनकी चर्चा नहीं सुननेमे आती है। आज कल जहां देखो वहा बारिष्टर, डाक्टर, नौटेरी, अध्यापक, वकील और कोमी (क्लर्क) का दौर दौरा नजर आता है। सभा सोसायटीमे, सरकार दरबारमे, साहब सूबामें, पोलीस पुस्सा, अदालत सब जगह, इन्हीं लोगोंकी खोज होती है। पहिला स्थान इन्हीको मिलता है। केवल उनकी विद्यासे ही उनकी प्रतिष्ठा होनी लगती है। बाबाजी, बाबूजी भी उनके पीछे दौडते फिरते हैं। यह वर्ग, साहब लोगोंके साथ बात चित करता है, जिससे लोग उनका और भी भय करते हैं! मालदार लोग अपनी बेटीका विवाह अपने जैसे मालदारके पुत्रसे करना पसन्द नहीं करते, किन्तु आले फासे वाला कोई 'अप टु डेट' जंटलमेनको अपना दामाद बनानेमें निजको धन्य समझते हैं। शिवाला और धर्म-कर्मकी ओर ध्यान देनेको उन्हें फ़ुरसत ही नहीं है। इच्छा कितनी है, वह उनसे ही पूछना चाहिये। अपना धर्म और अपनी भाषाका ज्ञान भी उन्हे धर्म कर्मोंकी ओर खतना नहीं खींचता है। उनमें धर्म कर्मके प्रति शायद द्वेष नहीं रहता होगा, मात्र उपेक्षा रहती है। जो कुछ कभी धर्म-क्षेत्रमें (खासकर रूढी, परम्परादि आचार) उनसे होता है, उसका श्रेय उनकी स्त्रियों को ही देना चाहिये।

मतलब यह है कि, इसी वर्गका आज सर्वत्र मान आदर होता है। वही समाजके नेता समझे जाने लगे हैं। उन्हींसे नवीन प्रजा प्रभावित होती है और स्वभाविक रीतिसे उनका अनुकरण और अनुसरण करने लगती है। इन सब बातोंको
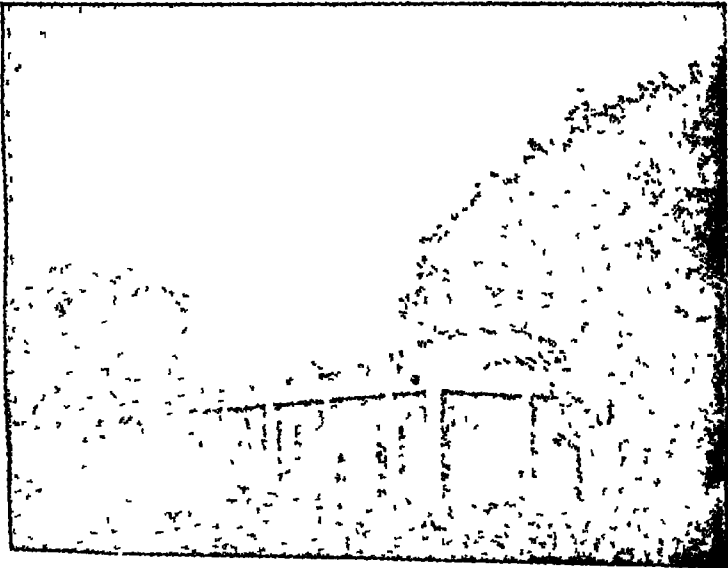
The frontage of the edifice under construction of the
Arya Paropakarini Sabha

देख कर ही हम ने ऊपर लिखा है कि, मान सम्मानका चक्र अब उलटा घूम रहा है। बाबाजी बाबूजीकी दिशा छोड़ कर वह अब आवोई, आवोका (वकील, बारिष्टर) की ओर फिरने लगा है।

इस विवेचनसे हमारे पाठक समझ जायेंगे कि भविष्यकाल मे हमारी आनेवाली सन्तानके लिये क्या रखा पड़ा है। हम पैसा भी कुछ कम नहीं खर्च करते हैं। पुजारी, मंदिरका नित्यका व्यय, त्यौहार, पानी, बत्ती, कांवर, कावड़ी, प्राण-प्रतिष्ठा, अग्नि चलन (जिके मारसे) जुलूस मरम्मत, मंडप सजावट, आदिमे मोरिशसके तमाम मंदिरोंपर हमारे हिसाबसे ३०,००० से अधिक रुपया प्रतिसाल हिन्दू प्रजा खर्च करती है। इस समय मोरिशस में २००,००० हिन्दू हैं अर्थात प्रतिसाल एक हिंदू मंदिरोंके लिये १५ सू (संट) देता है। यह हमारा हिसाव केवल मंदिरों पर होने वाले व्ययका ही है। मंदिर बनानेमें जो खर्च हुआ है, वह इसमे नहीं है। इसके सिवाय कथा, भागवत, रामायण, प्रचार, जपजाप तथा विवाह आदि संस्कारोंपर होनेवाला खर्च उसमें जोड़ाजाय तो नहीं मालूम वह रकम कितनी फूल जायगी। दसगुना अधिक याने तीन लाख हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। वार्षिक ३० हजार रुपया अर्थात, एक आदमी के पीछे पंद्रह सेंट कुछ भी नहीं है; पर गरीब हिन्दू प्रजा के वास्ते जमा रकम ३०,००० रुपया कम भी नहीं है। इतना पैसा हम केवल अपने श्रद्धा संतोष के लिये व्यय करते हैं; पर हमारे बच्चोंके धार्मिक भविष्य का उसमे ख्याल नहीं रहता है।

पिता, हड्डी तोडकर अपनी सन्तानके कल्याणके वास्ते कष्ट करता है; पर पुत्र कुपूत निकल जाने पर उसका हृदय कैसा विदीर्ण हो जाता है, इसका अनुभव हमारे पाठकोंमेसे कतिपयोंको, हम समझते हैं कि जरूर ही होगा। ऐसा न हो और पुरनियाओं ने, जो कुछ किया है और कर रहे हैं, उसपर पानी फिर जाय। इस लिये हम पुनः दुहराते और तिहराते हैं कि, भविष्यकालके धार्मिक और सामाजिक संकट को टालनेके लिये आज ही से तैयारिया करनी चाहिये और शिवालयोंको ही धर्मका केन्द्र बना कर उन्हींमें संस्कारादि समस्त धर्मकार्य करनेकी परिपाटी तुरंत जारी कर देनी चाहिये। हम कहते है कि, मन्दिर संस्थाकी वृद्धि और धर्मरक्षाका मोरिशस जैसे उपनिवेशमे यह एकमात्र उपाय है। अपने मन को शांति के लिये किसीकी मर्जी हो तो भले ही वह अपने इष्ट देवताको अपने घरमे थोड़ीसी जगह दे दे, परन्तु एक सप्ताह मे अधिक नहीं तो एक दिन उसको मंदिरमे आ कर पूजा करने पर बाध्य ही करना चाहिये। ऐसी सामुदायिक प्रार्थना मे मनुष्यको अपनी और अपने समाज की शक्तिका परिचय होता है। हजार दो हजार मनुष्योंको इकट्ठा देखकर वह समझने लगता है कि, वे सब एकभाव और एक विचारसे प्रेरित होकर यहां आये हुए है। अपने धर्मके मानने वाले प्रचण्ड समुदायको देखकर अपने धर्मके प्रति उसकी श्रद्धा अधिक दृढ होती है। एक व्यक्ति पढता है या सुनता है कि, मोरिशस मे इतने हिन्दू हैं; पर उनको वह कभी ५ हजारकी संख्यामे भी नहीं देखता है। ईसाइयोंके जुलूसमे हम कभी कभी १० हजार मनुष्यों की भीड देखते हैं और कहते है कि बापरेबाप कितने

लोग हैं ये!! उनकी संख्याका हमारे पर प्रभाव पडता है और निजकी लघुताके विचारसे मन खिन्न होता है। भारी पहलवान को देखकर यों ही दिलमें डर समाता है। वस्तु जितनी बडी, असर भी उतना बडा। यदि सामुदायिक पूजा प्रार्थना की पद्धति हम आरम्भ करें और कभी२ वैसे जुलूस निकाले तो २५ हजारकी संख्यामे हम किसी खास अवसर उपस्थित हो सकते है। पल्टन के समान चलने वाले उस प्रशांत भारतीय सागर की ओर ताकनेकी तब कौन हिम्मत करेगा? आर्यसमाज का नगरकीर्तन और हिन्दुओं के कांवरजुलूसमे समूहशक्ति का कुछ दर्शन हो आता है। हिन्दू लोग घर२ पूजापाठ करते हैं, जिससे समूहशक्तिकी कल्पना भी उनमे नहीं पैदा हो सकती है। सामुदायिक प्रार्थना करनेवाले अर्थात, संघ-शक्ति वाले ईसाई और मुसलमानोंके मुकाबिलेमें हिन्दू लोग निर्बल ठहरते हैं, उसका एक कारण घर-घरमें एक दूसरेसे पृथक पूजा प्रार्थना करना भी है। ईसाई और मुसलमान प्रति दिन अपनी प्रार्थनामें एक झुण्डका दर्शन करते हैं। अपने बलका उन्हें विश्वास रहता है। और अपनी रक्षा या दूसरों पर आक्रमण वे लोग निर्भयतासे कर सकते हैं।

अपना धर्म, जातपात, देवी देवता, खान-पान, पूजा-पाठ आचार परम्परा इत्यादिके कारण हिन्दू निजको हमेशा अकेला और निःसहाय पाता है और इसीसे एक विचारवाले समूहके सामने उसे पीठ घूमानी पडती है। भारतमें मुसलमानोंके उपद्रवों में अधिक संख्या होने पर भी हिन्दू लोग अपना बचाव क्यों नहीं कर सकते हैं, उसके इस कारणको हमारे वाचक अब जान सकेंगे। एकबार, दोबार, दसबार इस तरह हटने

रहनेसे फिर वैसा स्वभाव ही बन जाता है और दब्बुपन, खूनकी तासीर हो जाती है। तथा धर्मकर्मों को हानि पहुंचाती है। हिन्दुओं मे दब्बुपन आनेके कारणोंकी हमने आगे चल कर, जो मिमांसा की है, उसमे हमारी मंदिर-संस्था भी एक कारण कैसे हो सकती है यह अब स्पष्ट रीतिसे विदित हो जायगा। इस लिये हिन्दुओंको बलसंपन्न, धर्म संपन्न और सुसंगठित बना कर संसार के धार्मिक और सामाजिक जीवनमे उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाकर उन्हें तेजस्वी वैदिककालका दर्शन कराना हो तो मंदिरोंको ही सामुदायिक पूजा-पाठ, प्रार्थना और संस्कार आदियों से धर्मकेन्द्र बनानेकी कितनी आवश्यक्ता है, यह दुबारा कहनेकी जरूरत नहीं। घरमे कोई भी धार्मिक विधि नहीं होनी चाहिये। सब धर्मकर्म मंदिर मे ही होने चाहिये, तब ही हममें एक नया जीवन पैदा होगा।

"रोगीको आत्म संय्यम करके डाक्टरकी आज्ञाका पालन करना पड़ता है। बिना मिर्च मसालेकी तरकारी खानी पडती है और कभी तो खाली पानीपर ही रहना पडता है। कुछ ऐसी ही बात समझकर जातिके कल्याणके वास्ते यह भी कर देखना चाहिये। सरकार, कानून द्वारा जबरदस्ती करती है। बाल विवाह रोकनेके वास्ते भारतकी सरकारने एक कानून बनाया जो "शारदा एक्ट" के नामसे मशहूर है। इस कानून द्वारा सरकार जबरदस्ती करती है कि, कन्या १४ सालकी होने तक उसका विवाह नहीं हो सकेगा। १४ सालसे कम आयु वाली पुत्रीका विवाह करानेवाले माता पिता और पुरोहित कानून द्वारा दंडित होते हैं। हम समझते हैं कि, जातिकी

भलाई हो तो ऐसी सामाजिक जबरदस्ती करना अनुचित नहीं होगा। प्राचीन कालमें हमारी पंचायतें ये सब काम करती थी। भारतमें उनका पुनरोद्धार हो रहा है। मोरिशस क्यों पीछे रहे? यह भी एक प्रकारकी धार्मिक क्रांति ही है। अब हम मोरिशसकी हिन्दू सभा-सोसायटियोंका हाल पाठकों को पेश करते हैं।

इस पुस्तकमें, जिन मंदिरोंका वर्णन आया है, उनके नाम और ठांव नीचे दिये जाते हैं:-

## पोर्ट लुइस

मीनाक्षीआम्मेन, विष्णु-क्षेत्र, कालीआम्मेन, ठाकुरवाडी. लक्ष्मी नारायण, विश्वनाथ--वाले दे प्रेत्र, संत पंथी शिवनारायण स्वामीका धाम।

## प्लेन विलेम

शंभुनाथ-का फ्रुकरो, द्रौपदीआम्मेन-रोज हिल, कृष्णक्षेत्र-कांकावाल, सुब्रह्मण्य-वाकवा, कालीआम्मेन-कांकावाल, हरीहर-वासे रोड, विठोबा-वाक्वा, द्रौपदीआम्मेन--स्टानले-रोज हिल, विष्णु मंदिर-बोवासे, कबीर वाडी-वाक्वा, महेश्वरनाथ-वाक्वा, कबीर देवल-पायोत, मारीआम्मेन-मोंनाई कोर दे यार्द।

## ग्रां पोर

शिवालय-रोजबेल, सिंहाचलम--बो वालो, सीतलाआम्मेन--माईपुर, विश्वनाथ--प्लेन मायां, विश्वेसर--रिविएर दे क्रेओल, ब्रह्मस्थान--रोजबेल, द्रौपदीआम्मेन--मारदालबेर, मारीआम्मेन--रोजबेल।

## सावान

शिवालय—सुरीनाम, मरीआम्मे--संतोवे, शिव सुब्रह्मण्यर—सीमे औये।

## मोका

विश्वनाथ-वेरदे, शिवालय मोंताई ओरी, शिव सुब्रह्मण्य--मोंताई ओरी, कबीर आश्रम-सेपियेर, शिवालय मोंताई ब्लांश, विष्णु मन्दिर-सेपियेर।

## फ्लाक

शिवालय-लालमाटी, ठाकुरवाडी-बोशां, शिवालय रीशमार, शिवालय-कांयोरा।

## रिविएर जी रांपार
## (नदिया गरांपाल)

शिवालय—गोकुला, रामेश्वरनाथ—नदिया गारापाल।

## पांप्लेमुस

महेश्वरनाथ–त्रियोले, द्रौपदीआम्मेन–तेररूज, नीलकण्ठ–मोंताई लोंग, महेश्वरनाथ–तेररूज, शिवालय–मोंगू, देवल–पिची राफ़ (३)

## ब्लाक रिवर

हरीहर—कास्कावेल।

# सभा सोसायटियां

समूहमें रहना, याने गोल बनाकर जीवन व्यतीत करना, यह प्राणीमात्रका स्वभाव-धर्म है। बकरी, गाय, घोडा, बन्दर, चिडिया, तोता आदि पशु पक्षी हमेशा समूहमें चरते और उडते फिरते हैं। चिंऊंटीकी पलटनको तो हम रोज देखते हैं। मछलियोंको पानीमे आप देखो तो वही दृश्य नजर आएगा। कृमि किटाणू तक यही स्थिति पाई जाती है। उनको (Herd instinct) अर्थात, समूह-प्रकृति-बुद्धि कहते है। इस स्वाभाविक बुद्धिसे प्राणी, अपना बचावकर सकता है और दूसरोंपर आक्रमण भी कर सकता है। सदैव झुण्डमें रहनेके कारण उनको सहायताका विश्वास रहता है और वे अपनी शक्तिको अच्छी प्रकार जान लेते हैं। मनुष्य प्राणीको भी वही नियम लागू है।

डारविनके मतानुसार बानरके चचेरे भाई मनुष्यका विकाश होकर हमारा देह, खडी और उठी हुई स्थितिको पहुंच जाने के समयसे—मालूम नहीं कितने सौ हजार वर्ष पूर्व—आज दिन तक मानव समाज ठीक जानवरोंके समान अपना सामु-दायिक जीवन व्यतीत करता आ रहा है। आरम्भमें अन्नके पदार्थ बोना कोई नहीं जानता था। उस समय जंगली जान-वर मछली, कंद मूल और फल इत्यादि उनका अन्न था।

वे गुफाओंमें रहते थे, चमड़ा या पत्तोंसे शरीरकी रक्षा करते थे। लकड़ी और पत्थर उनके हथियार थे। ऐसे लोग अभी तक दुनियामे पाये जाते हैं, हमारे भारतमे भी हैं। अकाल, रोग और युद्धके कारण उन्हे अपनी बस्ती छोड़कर दूसरा स्थान ढूंढना पड़ता था। ऐसे ही किसी कारण वश आर्योंको हिन्दुस्थानमें आना पड़ा है। अपने बालबच्चों के साथ, पशुओंके झुण्डके पीछे पीछे यह समूह निकला करता था और रास्तेमें मारते मरते किसी हरीभरी भूमिपर वे पहुंच जाते थे और वहीं बस जाते थे। पेट भरना, सन्तान पैदा करना और जानकी रक्षा करना, इन्हीं बातोंमें उनका जीवन व्यतीत होता था। हमेशाके युद्ध और औरतोंका घाटा आदिके कारण नय समुदाय या झुण्ड बना कर रहनेके लाभोंका ज्ञान उनको होने लगा था। हमारी जाति व्यवस्थाके कारणोंकी उत्पत्तिपर उपरोक्त बातोंसे कुछ प्रकाश पड़ सकता है। अब यह समूह, रंग रूप, देश, भाषा सभ्यताके अनुसार तथा बुद्धि और ज्ञानके विकाशसे एवं अन्य समूहोंके घर्षणसे छोटे या बडे जुदावोंमे बटा जाता है। चीना भारतीय, अंगरेज, निग्रो, जर्मनी, अरब, तुर्क, मंगोल आदि संसारके समस्त समूह इसी प्रकार बने हुए हैं। यह सब प्रकृतिके नियमानुसार हुआ है और उसका मुख्य हेतु निजकी रक्षा ही रहा है।

बादमें जादू और प्रकृति पूजा तथा उसके पश्चात धर्म आया और उसने मानव समाजमें एक भारी विकृति उत्पन्न की, जिससे मनुष्य जाति के नये टुकडे बने। पेट और रक्षाका प्रश्न पीछे पड़ा और विश्वास तथा भावों के लिये लोग मरने

मारने लगे। उनका एक प्रभावशाली भयंकर संगठन हुआ, जिससें रूप, रंग, भाषा, वंश सबका लोप हो गया। ईसाई और मुसलमान धर्मोंके प्रचारको देखनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। धर्मका यह तूफान ढीला पडजाने पर अथवा दीर्घकाल तक उसी भूमि पर रहनेके कारण देशप्रेम या देशभक्तिका उदय हुआ। इस समय धर्मोंदण्डलाकी हड्डी नरम हो गई है और देशभक्ति के भूत ने लोगोंमें संचार किया है। जहां तहांसे 'हमारा देश हमारा देश' के नारे लग रहे हैं। ध्यान रहे कि, इस देशभक्ति में भी मुख्य उद्देश्य स्वार्थका ही है और आजका मानव समाज संसार भरमें, देशभक्ति के गीत गा रहा है।

जिस समय हम भारतसे यहां आये उस समय हमारेमें देशभक्तिका उदय नहीं हुआ था। हम हमारे धर्मकर्मों में ही लिप्त रहते थे। राज्य मुसलमानोंका, हिन्दुओंका, अंग्रेजोंका या फ्रेञ्चोंका कोई का भी हो, उससे हम बेपर्वाह रहते थे। अमुक इतना महसूल राजाको देना है, उतना दे डालो और अपने नित्यके व्यवहार करते रहो, यह हमारी मनोवृत्ति, अंग्रेजोंने आकर सारे भारतमें अपना साम्राज्य स्थापन करने तक याने सन १८५७ तक रही है। अब करीब ५० सालसे हम भी ससारके अन्य देशोंके साथ "हमारा देश" की पुकार करने लगे हैं। परन्तु मोरिशसमें दो सौ वर्ष पूर्वसे हमारे देशका नाम बज रहा है। हमने, खासकर हमारे देशवासी तामिल भाइयों ने, फ्रेञ्चोंके पहले गवर्नर माहे-दे-लाबुरदोने के समय मे यहां आ कर शिल्प और हुनरका ज्ञान यहांके मोजाम्बिक आदि निग्रो गुलामोंको दे कर इस टापूकी बसाईमें (Colonization)

जो भाग लिया है, वह इतिहासमें दर्ज है। पिछले साल अगष्ट मासमें उस गवरनर के स्थापित राजधानी पोर्टलुईस शहर का जो द्विशताब्दी महोत्सव १७३५--१९३५ लगभग २४ दिन तक हुआ था और जिसमें समीपके माडागास्कार और रेनियों ये दो फ्रेञ्च उपनिवेशोंके प्रतिनिधियों ने भाग लिया था, उसकी हमारी स्मृति अबतक ताजी है। उस अवसर पर रोशनी, नाटक, प्रार्थना, घुडदौड, जुलुस, खेल, कसरत, भोजन, संगीत, सिनेमा, भाषण आदि जो कुछ हुआ था वह तो था ही; पर उत्सवका केंद्र अन्तर-औपनिवेशिक प्रदर्शिनी थी। उसके रेनियों विभागमे उस समयके मद्राजी कारीगरके हाथकी लाबुरदोनेके लिये बनाई, पुस्तक रखनेकी एक सुन्दर आलमारी रखी हुई थी। उसपर सटे हुए टिकटपर फ्रेञ्च भाषा में लिखा हुआ था कि क्रेओल लोगोंको सिखानेके वास्ते लाये हुए भारतियों ने उसको बनाया है। बादमे लाबुरदोने ने उस आलमारी को भारतीय कारीगरीका एक उत्तम नमूना समझ कर अपने मित्र सेनापति आस्माको भेट रूप मे दिया था। हिन्दुस्थानियोंके लिये यह एक गर्वका विषय है। इस आलमारी का चित्र, अन्दरकी पुस्तकों के साथ, पाठक इस पुस्तक मे देखेंगे। बाद मे मद्राजी लोग बहुत धनाढ्य हो गये थे और उनकी कोठियोंपर सेकडों गुलाम काम करते थे। उनके बनाये छोटे२ देवल कई स्थानों पर थे, जो अब टूट-फूट गये हैं। इस सम्बन्ध का कुछ हाल हमारे 'मोरिशसका इतिहास' मे पाठक पा सकेंगे।

सन् १८३४ में गुलामी प्रथा ब्रिटिश सरकार ने बन्द कर दी। खेती और गुलामी एक ही काम समझ कर मुक्त गुला-

मों ने खेती करना छोड दिया और तबसे भारतसे कुलियों का गिरमिट मे आना आरंभ हो गया। उनका जीवन कैसे कष्टमय था और धीरे धीरे उन्होंने कैसे सिर उठाया वगैरह विस्तृत विवेचन, इतिहासमें हमने किया ही है। धर्म-कर्म या जाति-पांतिकी ओर ध्यान देने की न परिस्थिति थी न उन्हें फुरसत ही थी। उनके भाग्य से खेती मे उनका कोई प्रतियोगी नहीं था, जिससे उनकी मेहनतका उन्हे फल मिलने मे विलंब नहीं लगा।

'यहां की मोरसेलमां' याने खण्ड पद्धति ने भारतियोंको ५० ६० पचास साठ वर्षों मे सुस्थितिको पहुंचा दिया। जमीन बहुत थी; पर मजदूर कम थे। अधिक उपज के लिये फ्रेंच मालिक पाच, दस, पचीस, विघा जमीन कुछ सालके अवधि के करार पर भारतियोंको बोनेके लिये दे देते थे। अपने बाल-बच्चों के साथ फुरसत के समय मे काम करके भारतीय लोग गन्ना पैदा करते थे और शाक-भाजी बो कर निर्वाहका एक उप-साधन भी बना लेते थे। करारके अनुसार कोठी के मालिक को प्रति साल गन्ना दिया जाता था तथा करारकी अवधि और शर्तों की पूर्ति हो जाने पर वे जमीन के स्वयं मालिक बन जाते थे। इसी को यहां 'मोरसेलमा' पद्धति हैं। विना पूंजी और विना जबाबदारीके इस धन्धे मे कष्टालु भारतियां ने खूब ही हाथ धो लिया। गोरे कोठी वाले और भारतीय मजदूर दोनोंको इससे लाभ हुआ।

फिजी, केनिया, दक्षिण अफ्रिका आदि स्थानों पर भारतियोंके जमीन या घर आदि के मालिक बननेमे जो रोडे फंसाये जाते है, उसको देखने हुए यह कहना पडेगा कि मोरिशस

की अंगरेजी सरकार और खासकर कोठियोंके गोरे फ्रेंचों ने वैसे प्रतिगामी नियम, भारतियोंके लिये बना कर उनकी उन्नति को रोकनेकी कोई चेष्टा नहीं की है। उनका अहोभाग्य कि वे दूसरे उपनिवेशों मे नहीं गये और मोरिशस में ही चले आये।

गिरमिट (Agreement) की अवधि पूरी हो जानेपर शर्त के अनुसार उनको इच्छा हो तो वापिस चले जानेके लिए उन्हें सरकारी जहाज मिलता था, जो अब तक मिलता है। परन्तु बहुतोंने मोरिशसको ही पसन्द किया और घरद्वार, खेती वाडी करके मोरिशस ही को अपना वतन बना लिया। अपने देशकी अपेक्षा इस टापूमें उन्होंने अधिक लाभ और सुख देखा यह बात इससे निःसंदेह सिद्ध होती है। इस समय भी मातृभूमिके प्रेमसे प्रेरित होकर, जो कोई वहां के निवासी होनेकी इच्छासे हिन्दुस्थान जाते हैं, वे भी छः मास बाद मुंह टेढा रखकर वापिस चले आते हैं!! हम कहते हैं कि, वहांके हिन्दुस्थानियोंको मोरिशसका आनन्द, संसार के अन्य किसी देशमें प्राप्त नहीं होगा।

खंड पद्धतिसे ज्यों ज्यों उनकी स्थिति सुधारती गई त्यों त्यों फिर जातिपाति और धर्म-कर्मकी खोज होने लगी। जगह जमीन हो जानेसे वे एक ही स्थानपर दीर्घ समयतक रहने लगे। मंदिरोंकी सृष्टि होने लगी, विधि पूर्वक विवाह होने लगे और कथा भागवत चलने लगा। पहिला भागवत और पहिला विवाह किस सालमें हुआ है, यह हम कह सकते तो हमको बडी ही आनन्द होता, पर हमारे मित्र श्री० तय्युर अय्युब अब्बायी'''से हमको पता मिला है कि

मद्रासियोंका पहिला अग्निचलन—जिफे मारसे-फ़जाक जिले के आड़ी गावमें, मुकमराय रामस्वामी (श्रा अय्या) के उद्योगसे १८५७ में हुआ था। तात्पर्य, हिन्दुस्थानियोंमें समूह-बुद्धि पुनः जागृत हुई। बहुतसे लोग अपना ही काम करते थे याने ज़मीनदार बन गए थे। और रातको बैठकामे आकर रामायण पढ़ते थे एवं गपसप करके दिन बहलाते थे।

इस समय, मोरिशसमें भारतियोंकी तीसरी पीढ़ी चल रही है। चौथी पीढी अल्प और नादान है। भारतियोंकी, जो भी कुछ उन्नति देखनेमे आती है, वह सब याने उनका धन संग्रह, जगह ज़मीन, कोठिया, मंदिर, धर्म-जागृति, समाज-संशोधन, सभा-सोसायटिया, पाठशालाएं, समाचार-पत्र, घरद्वार, मोटरें आदि और सबसे अधिक उनकी इज्जत, दूसरी पीढी के पुरुषार्थका फल है। पहिली पीढ़ीने पसीना बहाकर लकड़ी, चूना, वालू आदि सामग्री इकट्ठी की और दूसरी पीढ़ीने घर बनाकर उसका शृंगार किया और मालिक बनकर वे उस में ठाट बाटसे रहने लगे। सरकारी कौनसीलकी दो कुर्सियां भी उन्होंने रोक छोड़ी और राज कारणमे भी अपना हाथ घुसा दिया तथा भारत और इंग्लेण्डमे भारतियोंके प्रतिनिधि के रूपमे जाकर सलाह मसलतकी। सरकारी नौकरीमे इन्स्पेक्टर आफ पुलिसके बडे ओहदे तक पहुँचनेवाले श्री० घूरनसिंह एम० बी० ई० इसी दूसरी पीढीके मनुष्य है। भारतियोंकी इस शीघ्र प्रगतिमे उनके परिश्रम और बुद्धिकी जितनी प्रशंसा की जाय, उतनी ही यहाकी परिस्थिति याने सरकार और फ्रेंचोंकी भी करनी होगी। प्रमाणके लिए दूसरी कोलनीको देख लीजिए।

यह सब हुआ; पर यह दूसरी पीढ़ी, सामान्यतः वर्तमान शिक्षासे वंचित होनेसे अन्य शिक्षित समाजके साथ उनका सम्बन्ध नहीं था और उसमें उनको स्थान नहीं था। पैसा होने पर भी "एत्वा गोपाल" ही वे सुना करते थे। शायद उनको यह व्यवहार खटकता होगा। परन्तु धन हो जानेसे उनमें महत्वाकांक्षा उत्पन्न हुई। खाली पैसेसे इज्जत नहीं मिलती है, यह भी उनको मालूम हुआ। उनका पड़ोसी काला क्रेओल, पाठशालामें छठी श्रेणी पास करके सरकारी छोटी नौकरीको प्राप्त कर लेता था और कभी-कभी आकर महतों जीका पत्र लिख देता था या गल्लेका हिसाब कर देता था।

दूसरी बात यह थी कि, महतोंके पुत्रको खेतीमें काम करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। तब घरमें बैठकर क्या करना? महतोंजी अपने पुत्रको पाठशाला भेजने लगे और इस समय तो धनाढ्य हिन्दू मातापिताका यही ध्येय हो गया है कि, उनके पुत्र "दोक्तेर या आवोका" (डाक्टर या बारिस्टर) बने। क्रेओल भी अपने पुत्रको 'मोंशे' कहकर संबोधन करते हैं, तब पिताजीकी एक महत्वकांक्षाकी मानोंकी पूर्ति हो गई। कारण कि, दूसरे लोग भी उनकी इज्जत करने लगे। स्वयं पिताजीको भी तो कुछ कर बताना चाहिये न? कोई भागवत कराते थे, तो कोई छोटासा देवल खड़ा कर देते थे, तो कोई बेटीके विवाहमें सैकड़ोंको हलवा पूड़ीसे संतोष देते थे। अपनी महत्वाकांक्षाको तृप्त करनेका यह दूसरा प्रकार था। परन्तु थोड़े ही दिनमें लोग, हलवा पूड़ी और प्रसादी को भूल जाते थे और देवलके लिए झगड़ा खड़ा हो जाता

था। ये सब व्यक्तिकी बाते हैं। परन्तु समूह-बुद्धि, मनुष्य को समूहकी ओर खींचती है। जिसका रूपान्तर, संस्था, सभा निकालनेमें हुआ।

कहते हैं कि, कलकतियाओंको पहिली मठिया, पांपलेमुस के तिरबुसे गांवमें सन् १८५६ में बनी थी। उसीको धर्मसभा नाम देकर कार्य हुआ करता था। उसमें स्व० देवीसिंह, पं० गंगाप्रसाद, रामसरूप शर्मा, दीनदयाल सिंह प्रभृति थे। यह भी सुना है कि, इस सभाके लोग परी तालाव परे जाकर पूजा पाठ किया करते थे। मुसलमान व्यापारियोंसे उनको सलाह मिला करती थी। दस साल बाद वैसी एक सभा बोसेजूर-रोजिलमें बनी थी। स्व० अंकुर महाराज उसके कर्त्ता धर्त्ता थे। ये समाचार उपरोक्त श्री. अम्हवानीकी कृपासे हमें प्राप्त हुआ है। उनको हम धन्यवाद देते हैं। उस समय संस्था, रजिष्टर करने का कोई कानून न होनेसे पंचायतके समान सभाका काम चलता होगा। आजके समान प्रधान, मंत्री आदि शब्दोंका प्रयोग होता था वा नहीं हमको मालूम नहीं; किन्तु प्रेसिदां सेक्रेतेर की पदवियोंसे वे विभूषित रहते थे या कुछ दूसरे नाम थे यह एक जानने योग्य बात है। आमद रफ्तके साधन आज जैसे न होनेसे कार्य भी स्थानबद्ध ही रहता होगा। परन्तु उनकी महत्वाकांक्षाकी तृप्ति उसमे अंशतः हो जाती होगी।

पिछले पच्चीस वर्षोंमें याने सन् १९१० से १९३५ तक ५७ हिन्दू संस्थाएं मोरिशस में स्थापित हुई हैं। आजसे ठीक सोलह वर्ष पूर्व याने १९२०मे मोरिशसपर चांदीकी वर्षा-शक्करको न

भूतो न भविष्यति, दाम मिलनेके कारण—हो जानेके बाद जानों कि सभा सोसायटियोंको उबाल सा आ गया है। सन् १९१४ में जर्मन महायुद्धका आरंभ हुआ, तबसे चीनीके व्यापार ने मोरिशस को मालदार बनानेकी शुरुआत की और १५ साल तक यह टापू चादीके समुद्रमें तैरता रहा। ५ हजार रुपये घरका दाम १० हजार हुआ एवं ५०० रुपया एकड़भूमिका दाम २००० दो हजार हो गया। समृद्धिकी इसी चरमसीमामें हिन्दुस्थानियोंके लारियेट, (लोरेया) डाक्टर, बेरिस्टर, सरकारी नौकर, कोठी वाले, मोटर वाले, आदि चमकने लगे। एक बिघा के गन्ने ने अपने मालिकको सन १९२० में दो हजार रुपया दिया था। अफसोस है कि, लक्ष्मी चंचल होनेसे, पैसा उनके पास रहा नहीं, लेकिन पैसे वाले की आदतें रह गई। आदत रह जाने से कुछ लाभ भी हुआ है। इन आदतोंकी पूरी करनेके लिये काम अधिक करना पडेगा, मस्तिष्कको चलाना पडेगा और सामान्यतः जातिको फायदा ही पहुंचेगा। सभा सोसायटिओं के पूर्व इतिहास पर एक नजर डाल कर तब आगे बढेंगे।

ईसवी सन् ८७४ मे मोरिशसकी सरकार ने मित्राचारी संस्थाओं (Friendly Societies) के लिये एक कानून पास किया। उस समय आजका जसा कौन्सिल और उसमे जनता के प्रतिनिधि नहीं थे। परन्तु पाद्रियोंकी बडी इज्जत थी। सरकार उनसे सलाह पूछती थी। ईसाई लोग उत्साहपूर्वक करके अनाथ, गरीब आदियोंकी रक्षा करते थे। खेल, कला और साहित्य की वृद्धिके लिये मण्डलियां बनाई जाती थी और गवरनर

Members of the Managing Committee of the Geeta Pracharak Maha Mandal, Port Louis

की खास परवान्गी से ये अपना काम कर सकती थी। पर उन पर अंकुश रखने वाला कोई खास सरकारी कानून नहीं होनेसे कभी-कभी उनमें मनमानी कार्रवाई होती थी, फिर झगडे खडे हो जाते थे और मंडलीको हानि पहुँचती थी। उपरोक्त कानून, संस्थाको अपना हिसाब किताब आदि सब काम नियमानुकूल रखने पर बाध्य करता है। यह कानून पास होने पर जितनी संस्थाएँ बनी है, वे सब ईसाईयों की है। उन संस्थाओंको देख कर मालूम होता है कि, हिन्दुस्थानियों को भी वैसी संस्थाएं बांधनेका विचार आया और धीरे धीरे सभाएं बनने लगी।

यह कानून स्वीकृत हो जाने पर २४ वर्ष याने लगभग पाव शतक बीत जानेके उपरांत, अर्थात, एक पीढ़ीके बाद पोर्टलुईस शहरमें सन १८९८के सालमें मद्राजियोंकी पहिली हिन्दू संस्था "मोरिशस हिन्दू फ्रेण्डशिप सोसायटी" का नाम धारण करके अवतीर्ण हुई। इस सभाका अवतार-कार्य कभी का समाप्त हो चुका है। कानून पास हो जानेके बाद २४ वर्ष तक हिन्दुओं की कोई संस्था नहीं थी इस बातको विशेष रूपसे ध्यानमें रखना चाहिये। उस समयके हिन्दुओंकी आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक तथा धार्मिक स्थिति पर इस बातसे अच्छा प्रकाश पडता है, उनको शायद मालूम ही नहीं था कि, कोई ऐसा कानून बना है और अवकाश भी नहीं था कि कोई सोसायटी बना कर कुछ काम करें। इन बातोंका न ज्ञान था न इच्छा थी न साधन ही थे। हिन्दुस्थानियोंके लिये वह समय "लेतां मारगोम" (कराल काल) का था। हमारे इति-

हास मे हमने रोयाल कमीशनका जो वृतांत दिया है, उसे पाठक फिर एकबार पढ़ेंगे तो उनको मालूम होगा कि वे उस समय किस दुर्दशामें अपने दिन काट रहे थे। उनका शिकार होता था। कामकी कड़ाईके कारण कुली भाग भाग जाते थे और जंगलोंमे छुपे रहते थे। उनको पकडनेके लिये दिन निश्चित करके पुलिस दौरा लगाती थी। कमीशन ने इस धर पकडको (Vagrant hunt) याने भगेडूका शिकार कहा है। वे केवल "भगेडू सभा" स्थापित कर सकते थे। इतना कहनेसे ही भारतियोंकी उस समयकी स्थिति के चित्रका यथार्थ दर्शन पाठकों को हो सकेगा।

राजधानी के शहरमे रहने वाले लोगोंको कायदा कानूनका समाचार सबसे पहिले मिलता है। उन दिनों कलकतियाओं का निवास पोर्टलुईस शहर मे नहीं जैसा था। इस समय भी शहरमें स्थायी रूपसे रहने वाले प्रतिष्ठित कलकतिया बहुत ही थोडे मिलेंगे। शहर मे रहने वाले धनीमानी मद्राजियोंको ही एक सभा खडी करनेक लिये २५ साल लगे, तब दूर रहने वाले कलकतियाओंको सात आठ साल अधिक लगे हों; तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। कलकतियाओं की पहिली सभा सन १६०५में रोज़िलमें स्थापित हुई थी, जो इस समय लमाथिल्न है। उनको मोरिशसमें आनेके ७० साल बाद उनकी वह सभा बनी हुई थी।

सन् १८६८ तक हिन्दुओं की कोई अधिकृत सभा नहीं थी। तब से लेकर आज दिन तक याने पिछले ३८ वर्षों में हिन्दुओं की

कुल ६२ सभाएँ बनी हैं। पहिले २२ सालमें अर्थात्, सन् १९२० तक केवल २२ सभाएं स्थापित हुई थी। याने एक सालमें एक सभा रजिष्टर हुई थी। सन १९२०--२१ में मोरिशसके लोग चांदीकी डकारें दे रहे थे। १९२० से १९३५ तक अर्थात, पिछले १५ वर्षोंमें ४० संस्थाएँ रजिस्टर हुई है, याने प्रतिसाल दो तीनके हिसाबसे सभाएँ बनती गई है। धन के साथ समाजके उत्थानका कितना घनिष्ट सम्बन्ध है, यह इससे स्पष्ट होता है।

उन ६२ संस्थाओंमेंसे ३१ मद्राजियोंकी २८ कलकतियाओं की और ३ मराठाओंकी है। जो संस्थाएँ कुछ काम करती हैं, उनका इतिहास पुस्तकमें दिया है। उससे उन संस्थाओंके कार्य को पाठक स्वयं ही देख लेगें। जो शेष हैं, उनमेंसे कतिपय मर गई हैं, कतिपय समाधि लगाई बैठी हैं, तो कतिपय बीमार हैं। कुल ६२ संस्थाओंमेंसे १२ संस्थाओंको मृत या रोगी मानकर हम बाद कर देते हैं। बाकी ५० संस्थाओंको जीवित समझी जाय तो उसका अर्थ यह होता है कि, दो लाख (देसां मिल) हिन्दुओंके मध्यमें इस समय ५० संस्थाएँ काम करती हैं; अर्थात, प्रति चार हजार हिन्दुओंके लिये एक संस्था हुई।

जो संस्थाएँ मन्दिरोंकी व्यवस्थाके लिये ही निर्माण हुई है, उनका हाल उन मन्दिरोंके साथ ही हमने दिया है। जो संस्थाएँ सामाजिक कार्य करती हैं, उनका वर्णन स्वतंत्र रीति से दिया है। सभा और संस्था इन दो शब्दोंके सम्बन्धमे

हम थोड़ा सा खुलासा करना चाहते हैं। हमने एक ही अर्थ मे दोनों शब्दोंका प्रयोग किया है। अंग्रेजी Institution शब्द का अर्थ है संस्था और meeting शब्दका अर्थ है, सभा पर यहां संस्था को ही सभा कहते हैं, जो वास्तव मे ठीक नहीं है; परन्तु ऐसा प्रचार ही हो जानेसे सभाके साथ संसथा शब्दका भी प्रयोग जहा तहां हमने किया है। उद्देश्य इतना ही कि, वह शब्द रूढ हो कर अपने उचित स्थान पर आरूढ हो जाय।

इतना अल्पसा पूर्वेतिहास देकर हम यहांकी सभा सोसायटियों की सामान्य स्थितिका दर्शन करने पर पाठकोंको आग्रह करते हैं।

# संस्थाओंका स्वरूप

अधिकतर सभा सोसाइटियां, धार्मिक स्वरूपको हैं। कतिपय तो केवल अपने२ मंदिरकी व्यवस्था देखनेके लिये ही निर्माण हुई हैं। दो चार संस्थाएं, सामाजिक भी हैं। इतिहास, राजनीति, साहित्य, शिक्षा, व्यायाम, खेल आदि एक२ विषयकी कोई संस्था नहीं है। सिरफ फिजिकल एण्ड मेण्टल कलचर नामकी एक क्लब जैसी संस्था शहरमें है, जो टेनिस खेलके वास्ते है। ये संस्थाएं नोटेरी द्वारा नियमबद्ध लेखसे बनाई जाती हैं और गवरनरकी मंजूरी मिलने पर सोसाइटीको चार्टर (पत्र) मिल जाता है। सभाके दस्तावेज (प्रमाणित लेख) के नियमके अनुसार एक, तीन या पाच साल बाद सदस्योंका चुनाव होता है और निर्वाचित कार्यकारिणी कमिटी द्वारा संस्थाका संचालन होता है। प्रधान, मंत्री और कोषाध्यक्ष तथा उनके उप एवं नियमानुकूल साधारण सदस्योंकी यह कमिटी होती है। हिसाब देखनेके लिये दो पडतालक भी होना चाहिये।

इन संस्थाओंको Friendly Societies अर्थात, मित्राचारी संस्थाएं कहते हैं। सन् १८७४ में पास हुए कानूनके अनुसार उनकी रजिष्टरी होती है। नियमोंके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं हो सकती है। प्रवेश फी और मासिक चन्दा भी सदस्यके लिये निश्चित रहता है। उपनियम बनाना हो तो सरकारसे मंजूरी लेनी चाहिये। संस्थाके लिये जायदाद खरीदना या बेचना और लेन देन करना आदि समस्त बातोंका समावेश सभाके दस्तावेजमें रहता है।

## संस्थाके उद्देश्य

बहुतसी संस्थाओंका जन्म, धर्म जागृति या धर्मोन्नतिके लिये हुआ है। यह उनके नामोंपरसे ही प्रतीत होता है। मद्रासी संस्थाएं 'परोपकार' करती हैं। ब्रिटिश सरकार, सिवाय ईसाई धर्मके और किसी धर्मको मान्यता नहीं देती है, जिससे यद्यपि ये संस्थाएं धार्मिक कार्य करती है, तो भी उनके दस्तावेजमें धर्म शब्दका नाम तक नहीं आता है। याने धर्म पालन या धर्मप्रचारके लिये इन संस्थाओंको चार्टर नहीं दिया जाता है।

मंदिरमें मूर्ति बिठाओ, रोज जल चढ़ाओ और प्रतिदिन पूजा करो, उपदेश करो, जुलूस निकालो, उसमें सरकार किसीको मनाही नहीं करती है। परन्तु इन कामोंके वास्ते चार्टर नहीं दिया जाता है। सरकार हमारा धर्म और आचार परंपरा नहीं जानती है और उसीसे वह उसमें दखल भी नहीं करती है। 'मानो सरकार' यह कहती है कि, तुम अपने घरमें चाहे सो खाओ पीओ। न हमको बताओ न सुनाओ परन्तु तुम्हारी पाकशालाकी रसोई उचित प्रकारसे पक जाय और उसको कोई भ्रष्ट न कर सके; इसलिये सरकारकी ओरसे, जो तुमको रक्षण चाहिये, वह हम हमारे चार्टर द्वारा तुम्हें दे देते हैं अब पाठक समझेंगे कि, सरकारका इन संस्थाओंसे क्या सम्बन्ध है उनके द्वारा, एक राजकारणके सिवाय और सब कुछ आप कर सकते हैं ये मित्राचारीकी सोसाइटियों हैं; इसलिये उनमें मेलजोल और स्नेह सम्बन्ध बढ़ानेके जितने साधन है, उन सबोंको काममें ला सकते हैं वाचनालय खोलना, धर्मोपदेश करना, ज्ञान चर्चा करना, गायन वादन करना, खेल खेल-

ना, शील-नीति बढाना, परोपकारके कार्य करना आदि सब कुछ इन संस्थाओं द्वारा हो सकता है। अधिकांश सोसाइटियोंमे सदस्यका स्मशान व्यय देनेका नियम रहता है।

ऐसे उद्देश्योंसे संस्था खडी की जाती है और ये उद्देश्य कितने ऊँचे हैं, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है। इन उद्देश्योंके अनुसार काम होता जाय तो मोरिशसके हिन्दू लोग, नहीं मालूम, क्या हो जाएँगे? पहली मद्राजी संस्था पोर्टलुइसमें सन १८६८ में स्थापित हुई थी, अर्थात, हिन्दुओंके संस्थाओंके इतिहासका आरम्भ ३८ सालसे ही होता है।

## संस्थाओंका कार्य

ऐसे बडे उद्देश्योंसे जिनकी सृष्टि होती है, उनका कार्य भी ऐसा ही महान होना चाहिये। इस विचारसे यदि उनको कोई देखने लग जाय, तो उसकी निराशा ही होगी। जो संस्थाएँ केवल मंदिरोंकी व्यवस्था देखनेके लिये बनी हैं, वे समय समय पर सार्वलिक चन्दा करके मंदिरोंकी मरम्मत करते हैं, बढाते हैं, उत्सव करते हैं और कथा आदि पढ़ाते हैं। यद्यपि इस शुद्ध धार्मिक कार्यमें भी दलबन्दी कराकर झगडे खडे हो जाते हैं और पैसेका अपव्यय होता है, तो भी शिवालय को जीता जागता रखनेका उनका मुख्य हेतु अंशतः सिद्ध हो जाता है, यह बात असत्य नहीं है। परन्तु सामाजिक कार्य करनेके लिये जिनका जन्म हुआ है, उनका कार्य-क्षेत्र बहुत हीं संकुचित है। लगभग २५ सालसे यहां "संगमे-

न्त हिन्दू असोसियेशन" मौजूद है। उसके वही उद्देश्य है, जो अन्य सोसायटियोंके है; पर कार्य इतना ही हुआ है कि, एक अंग्रेजी फ्रेंच पढ़ाई की पाठशाला, सरकारी नियमानुसार चलती है और उसमें एकाध घंटा तामिल पढाई के वास्ते भी दिया जाता है। ध्यान रहे कि, ऐसी पाठशालाओंका सारा खर्च, सरकार देती है। केवल आरम्भ में कुछ खर्च करके सरकारकी खातरी करा देना चाहिये कि, वैसी पाठशाला चल सकती है। पाठशाला बन गई, सरकारसे खर्च मिलने लगा, अब क्या करना? मोरिशसमे हिन्दुओंको ऐसी तीन पाठशालायें हैं। उपरोक्त असोसियेशनके जितने उद्देश्य हैं, उनमें से विद्या प्रचार (प्राथमिक) में उसने कुछ कार्य किया है यह नि:सन्देह है।

एक "हिन्दू सोसायटी" है। जब उसका सालाना चुनाव हो कर समाचार पत्रों में प्रधान, मंत्री, आदिकोंके नाम प्रकाशित हो जाते हैं, तब उसके अस्तित्वका लोगोंको ज्ञान होता है। यहां की हिन्दू महा सभा आज दस बारह वर्षसे स्थापित हुई है। उसका भवन दर्शनीय है। माननीय आर. गजाधर उसके रक्षक और पोषक है। लोगोंकी आखमें उसका काम झटसे भर जाय वह उसका मकान ही है। दो लाख हिन्दुओं की "महासभा" का काम कैसे विस्तृत होना चाहिये? गीता-महा मंडल, क्षत्रिय महासभा, समुदाय वृद्धि, साधुसंघ, तामिल-परोपकारिणी आदि सभा, समाज सेवा करनेके हेतुसे ही उत्पन्न हुई है। हम यह नहीं कहना चाहते है कि, ये सं-

Bhawan of the Geeta Pracharak Maha Mandal
Port Louis

स्थाएँ कुछ भी काम नहीं करती हैं और उनकी कोई आव-श्यक्ता नहीं है। कुछ न कुछ उपयोगी काम तो वे करती ही रहती है; परन्तु इतने महान उद्देश्य, इतना मेहनत और इतने व्ययको देखते हुए, उसके प्रमाणमे फलसिद्धि कितनी होती है, उस ओर ध्यान आकर्षित करनेके लिये ही हमने यह इशारा के तौर पर लिखा है। मोरिशसमे क्या हो रहा है, यह हमने अन्यत्र लिखा ही है और सोसायटियोंका वर्णन देते हुए उन्होंने क्या किया है और क्या कर रही है, यह भी पाठक आगे चलकर पढ सकेंगे।

सवा सौ, डेढ सौ रुपया खर्च करनेपर नोटरी, सोसाइटीका दस्तावेज बना देता है। उसमें क्या लिखना चाहिये और क्या नहीं यह उसीका काम है। उद्देश्य भी वही मढाता है! ये deed दस्तावेज अंग्रेजी या फ्रेंच भाषामें बनाए जाते हैं। बहुत थोडे लोग हैं, जो उद्देश्यों को, नियमोंको जानते है। वह इतना ही जानते हैं कि, अमुक व्यक्ति प्रधान है और अमुक मन्त्री है। दूसरी बात वे जानते हैं वह यह कि "ओकर हुकुम चली।" इस हालतमें उद्देश्योंकी पूर्ति करनेका आग्रह कौन करेगा। और विशेष कार्य क्या हो सकेगा? हिंदु लोगोंकी आरम्भ-शूरता प्रसिद्ध है। उनके दिलमें आया कि, एक सभा बांधनेकी है। बस इधर उधरसे रुपया इकट्ठा करके मोटली बांधकर नोटरीके सामने धर देते हैं। चार पाच महीनोंमें सभा तैयार हो जाती है। प्रधान मन्त्री आदियोंके नामोंका डंका बज जाता है और फिर सुन सान! आरम्भ-शूरता और उत्साह वह गया और संस्था भी सो गई। यदि किसी संस्थाने

मांग सांगके निजका भवन बना लिया तो जानो कि अश्वमेध यज्ञ कर डाला। जहा संस्थाको काम करना है, वहा लोगोंकी वस्ती इतनी अल्प होती है और ऐसी श्रेणीके लोग वहा रहते हैं कि, उनमे कुछ काम होना कठिन ही होता है। पोर्टलुइस शहर, ईसाइ और मुसलमानोंसे भरा है। मद्राजी और चीना भी कम नहीं है और कलकतिया तो अचारके समान है और वे भी अधिकतर मजदूरी या छोटे छोटे काम करनेवाले है. कलकतियाओंकी संस्थाएँ इस दशामें यहां कितना काम कर सकेगी यह कोई भी समझ सकता है.

मध्यम वर्गसे ही संस्थाएं चलती हैं और वह वर्ग अभी मोरिशस के हिंदुओंमे पैदा नही हुआ है. मालदार और गरीब ये ही दो वर्ग इस समय उनमें विद्यमान है. मध्यम वर्गका प्रादुर्भाव कहीं अब होने लगा है. शहरमे मुसलमानोंके दो तीन वाचनालय हैं, उनके खेल आदिके क्लब हैं, उनके अच्छे भोजनालय है और कई संस्थाएँ है. कारण यही कि, वे अधिक संख्यामें और सब श्रेणियोंमें हैं. धनाढ्य वर्गको इज्जत, आबरू, ऐश आराम, नौकर-चाकर सब कुछ प्राप्त हुआ है. सभा सम्मेलनोंसे उनका क्या लाभ? गरीबों को फुरसतही नहीं न ज्ञान ही है कि जो सोसाइटियोंमे भाग लेवे. मध्यम वर्गके पास ज्ञान है, कुछ धन भी है और फुरसत भी है. नीचे ऊपर दोनोंको जोडने वाला यह वर्ग होनेसे वह संस्था चलाने में समर्थ रहता है। जब तक वैसा वर्ग उत्पन्न नही होगा, तबतक हमारी सोसाइटिया इसी गतिसे चला करेगी। दुनिया भरमे यही मध्यम वर्ग समाजका आधार बना रहता है। यहा वह वर्ग न होने से कार्य भी वैसा हो होता है। हिंदुस्थानके राजनैतिक मध्यम श्रेणी

के लोग हैं। शायदही उनमें कोई पुंजीपति मिलेगा। लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, पूज्य मालवीयजी, लाला लाजपतराय इत्यादि मध्यम वर्गके मनुष्य हैं। यह वर्ग अभी मोरिशसके हिंदुओंमें पैदा नहीं हुआ है। डाक्टर, वारिष्टर आदि इसी वर्गके हैं, पर उनका जन्म अभी थोडे दिनका है। उनके ख्यालात दूसरे हैं और वे सभा सोसाइटियोंमें भाग नहीं लेते हैं।

## संस्थाएं कैसी चलती हैं?

सदस्य चन्दा नहीं देते हैं, कोरम (गण्य संख्या) नहीं लगता है, विशेष कार्य के लिये पैसा नहीं है, नियमित अधिवेशन नहीं होते हैं, इत्यादि अनेक बातें हैं, जिससे सोसायटीकी स्थिति की कल्पना हो आती है। इसका अर्थ यह है कि, सदस्य याने सर्व साधारण जनताको संस्थाके कामोंमें कोई रुचि नहीं है। यह सब होनेपर भी संस्थाके नामोंके तखते (sign board). हम जहां तहां देखते हैं। केवल उसीसे उनके अस्तित्वका पता लगता है। जब जनता सभामें रुचि नहीं लेती है, तब वह कैसी खडी रह सकती है? हमने एक स्थान पर कहा है कि, मोरिशस एक विशाल कुटुम्ब सा है। कुटुम्बके बडे आदमी, छोटोंको समझा बुझाकर संस्थाको खडी कर देते है। छोटे आदमी वडेके मन्तव्यों या कामोंको समझते नहीं; पर लज्जावश और बडोंकी इज्जत रखनेके लिये उनकी वातको मान लेते हैं। छोटे आदमीकी नजर व्यक्ति विषयक स्वार्थपर रहती है। गीताका तत्व ज्ञान उसकी समझमे नहीं आता है और बड़ोंके कामोंमें वह अपना कोई लाभ नहीं देखता है और धीरे२ उनसे

हट जाता है। परिणाम यह निकलता है कि, संस्थाका बोझा फकत बड़ोंपर ही आ पडता है और वे ही उसे कंधोंपर ढो कर चलाया करते हैं। वडे आदमी चन्दा मांगने जाते हैं। शरमके मारे या इज्जतके खातिर लोग कुछ न कुछ दे ही देते हैं। श्री श्री. काजा, भगत, घूरनसिंह, गजाधर जैसे प्रतिष्ठित सज्जनों को अपने द्वारीपर देखकर कौन उनका स्वागत नहीं करेगा। ये महाशय, कोई संस्था खोलना चाहते हैं या कोई मंदिर, भवन बनाना चाहते हैं, इतनी बात सर्वसाधारण जनता अलब जानती है। परन्तु संस्थाका उद्देश्य क्या है, उससे जनताका कितना लाभ होगा आदि बातोंका न तो उन्हें उतना ज्ञान ही है न तो उसमें वे मगजपच्ची ही करना चाहते हैं। केवल वडे आदमीका मुँह देखकर वे फेहरिस्त में भर देते हैं। पैसा भेज दो कहनेसे कोई भेजता नहीं। इसके लिये मेहनत करनी चाहिये। इसका ताजा उदाहरण, "भारतीय प्रवास शताब्दी" के लिये जो सार्वत्रिक चन्दा किया गया था, उसमें श्री श्री भगत, काजा, गयासिंह जैसे लोगों ने अपना वजन जनता पर डालना शुरू किया, तब लोग दब गये और १०, २०, ५०, १००, २०० की रकमें धडधडाने लगीं और चन्दा एक-दम से फूल गया। तात्पर्य यह कि, लोग कार्यके महत्वको जानकर भी तिजोरी नहीं खोलते हैं; किन्तु बड़ोंको अप्रसन्न करने की उनमें हिम्मत नहीं होनेसे वे झुक जाते हैं। उनको यह भी भाव रहता है कि, वडे आदमी हमारे घरपर आये हैं, कुछ देकर ही उनका सत्कार करना चाहिये। कतिपय ऐसे भी हैं जो बड़ोंके साथ बडे बननेके लिये थैली रख देते हैं।

बड़े आदमी तो ये लोग हैं; परन्तु घड़ीर जाकर लोगोंका दरवाजा खड़खड़ाते हैं, तब अन्दरसे जवाब मिलता है "न पाला फिर सोरचो" याने नहीं है. बाहर चल गए! तब सब भार, संस्थाके जन्मदाताओंपर ही आ पड़ता है। विशेष कार्यके लिये, जो खर्च होता है, उसे वे अपने जेबमेंसे निकालते हैं; क्योंकि कोष में तो कुछ होता ही नहीं। कभी वार्षिक उत्सवोंपर अपीलोंमें कुछ बन जाता है। सभाके चाहे कितनेही सदस्य हों तीन चार व्यक्ति-योंके उद्योग और स्वार्थत्यागसे ही ये सभाएं उक्त रीतिसे चला करती हैं और उनके नाम समयर पर सुनाई देते हैं।

कभी सभाके झगड़ोंसे अथवा मतभेदसे कोई मनुष्य अलग हो जाते हैं, तब दूसरी सभा खड़ी कर देते हैं। कभी तो प्रधान, मंत्री की उपाधिके लोभमें एकाध सभा उठ जाती है और कभी किसीके विरोधके लिये तथा देखा देखी भी। इस समय तो जातिका भूत फिर सभामें प्रविष्ट होने लगा है।

हिन्दुस्थानमें जातिपाति तोडक मंडल स्थापन हुए हैं। जात पात को वहां महारोगसे पुकारते हैं। वैश्य म० गांधीका पुत्र, एक ब्राह्मण कन्यासे विवाह करता है और ब्राह्मण नेहरू कन्या, वैश्य पुत्रसे विवाह करती है। परन्तु मोरिशसमे मृत्यु प्राय जाति पातिको पुनः उठानेके यत्न हो रहे हैं। ब्राम्हण सभा, क्षत्रिय सभा, ठाकुर सभा, कोयरी सभा, दुसाध सभा आदि नई संस्थाएँ बनती जा रही हैं। हिंदुओंमे जाति पाति तो है ही; पर अब सभाओंमे भी वह घुसने लगी है! वर्ण व्यवस्थायुक्त हिंदुओंका धर्म, हिंदुस्थानमे है और

वहांसे उसको बाहर करनेके प्रयत्न हो रहे है। शायद वह मोरिशस मे आ जाय !! साराश, स्नेह संपादनके हेतुसे उत्पन्न भई ये संस्थाएँ क्या कार्य कर सकती होंगी, यह बतानेकी आवश्यकता ही नहीं है। भारतमे हिंदू महा सभा है। हिंदुओंको संख्या क्यों घटती है, उनपर आक्रमण क्यों होते हैं, उनका बचाव कैसे हो, उनकी क्या शिकायतें है, उनकी धार्मिक स्थिति कैसी है, हिंदू समाजको कैसे सुधारना चाहिये, उसमे लिखने पढ़नेवाले कितने लोग है, स्त्रियोंकी क्या दशा है, व्यापारमे उनकी कितनी प्रगति है, उन्हें स्वराज्य कैसे मिले आदि सभी बातोंपर विचार करके व्याख्यान, लेख, जुलूस आदि द्वारा वह उनमे जागृति पैदा करती है। मारिशस मे भी उसी नामकी एक सभा है। उसने जो कुछ किया है और कर रही है वह भी लोगोंके सन्मुख है। सभाके कामोंको मापनेका यह एक उदाहरण लोगोंको हमने पेश किया है। यही गति गीताकी और आनन्द वाटिकाकी। ये संस्थाएँ क्या कार्य कर रही हैं इस सम्बन्धमें हम लिख रहे हैं, इस लिये क्या कार्य होना चाहिये उसकी रूप रेखा खींचना अनुचित नहीं होगा।

पहिली बात यह है कि, हिन्दू समाजका जो ह्रास हो रहा है, उसको रोकना चाहिये। सारा संसार अपना संख्या-बल बढाने में लगा है; पर हिन्दू लोग इस बातमे बेपर्वाह हैं। फ्लाक या माईपुर (माहेबर्ग) जिलोंमें हिन्दुस्थानियोंकी संख्या अधिक होनेसे, एक चुनावमें दो हिंदुस्थानी आ गये थे। और किसी जिलेमें भारतीय उम्मेदवारोंको खडे होनेकी हिम्मत नहीं होती है। इसका कारण यही कि, वहां हिन्दुस्थानी प्रजा बहुत कम है।

पोर्टलुइम शहरका उदाहरण हमारी आंखके सामने है। म्युनिसिपालिटी और सरकारी चुनावके समय, मुसलमानोंकी दाढ़ीको हाथ लगाकर उनकी कितनी चापलूसी और लल्लोपत्तो करना पड़ता है, यह सब लोगोंको विदित हीं है। ५० वर्ष पूर्व, पोर्टलुईस शहरमें १० हजार से अधिक मुसलमान नहीं थे, उनकी संख्या आज २०,००० से अधिक हो गई है। और उसके बलपर वे अपने कामोंमे सदा सफल रहते है। एक भी हिन्दू डाक्टर पोर्टलुईसमें काम नहीं कर सकता है। कारण यही। हिन्दुस्थानके हिन्दुओंकी आंखे अब खुलने लगी है; पर मोरिशसमें तो वे अभी सोये पडे हैं। इस सम्बन्ध में लिखते हुए सरकारी रिपोर्टके आधारपर हमने बता दिया है कि, हिन्दुओं का क्षेत्र कैसे संकुचित होता जा रह है। प्रति दस वर्षमें यदि बीस हजार हिन्दू घटते जाय यानें प्रति साल दो हजार कम होते जाय, तो १०० साल बाद अर्थात २०३५ में मोरिशस में अभी जो २००,००० हिन्दू हैं, वे चौपट हो जायेंगे और हमारी द्विशताब्दी तब कौन मनाएगा? इस लिये हमारी सोसायटियोंको सर्व प्रथम हिन्दुओंके ह्रास को रोकनेके यत्न करना चाहिये।

दूसरी बात है, स्वभाषाका ज्ञान। इस सम्बन्धमें भी हमने लिखा है। गीता और रामायणको क्या हम अंग्रेजीमें पढ़ेंगे? भाषा मे भाव हैं, भाषा नहीं तो भाव भी नहीं। जब हम "महात्मा गांधी" 'लोकमान्य तिलक' या पूज्यपाद मालवीयजी कहते हैं तब हमारे सारे ऊंचे भाव यथा प्रेम, आदर, भक्ति जागृत हो जाते है, परन्तु

मिष्टर गाधी ये शब्द पढ़ने या सुनने पर वह भाव उत्पन्न नहीं होते हैं। भाषा भिन्न होनेसे भाव भी बदल जाते हैं। रामायण को फ्रेंच भाषामें पढो तो इतना ही मालूम होगा कि उसमे राम सीताकी एक कहानी है। रामको एक अवतार नहीं मानेंगे, किन्तु सीताके लिये पागल बनने वाले एक प्रणयी (आशक) मनुष्यसे हम उसकी अधिक कीमत नहीं करेंगे। इसका अर्थ यह है कि, भाषा गई तो भाव भी गये और भाव गये तो श्रद्धा भी गई और श्रद्धा गई तो धर्म भी गया और धर्म गया तो सर्वस्व गया।

हमारे नवयुवक, युरोपियन सिनेमा पसन्द करते हैं और उनके पिता हिन्दी सिनेमाको दौडते है। कारण यही कि, वे अपनी भाषा नहीं जानते है, जिसस भावोंको नहीं समझ सकते हैं। किसी जातिको खा जाना है तो पहिले उसकी भाषाको खाओ, यह आजकी नीति है। प्राचीन समय मे जब किसी जातिको उसका दुशमन नाश कर देता था, तब उन सबोंकी वह कतल कर डालता था। जैसे यहूदी आदियोंके साथ हुआ है। आज भी अपनी संख्या बढानेके वास्ते जातिका नाश किया जाता है, पर वह तलवार या बन्दूकसे नहीं। इस सभ्यताके युगमें नाश के हथियार भी सभ्य बन गये है। जातिकी भाषाका अभ्यास या प्रचार बन्द कर देना, यह वह हथियार है। यह बात मोरिशसमें ही हो रही है। यहा अब एक ऐसा वर्ग पैदा हो रहा है कि, वह अपनी मातृभाषा नहीं जानता है। इतना ही नही किन्तु उससे घृणा करता है। भाषा नहीं जाननेसे धर्म-कर्म
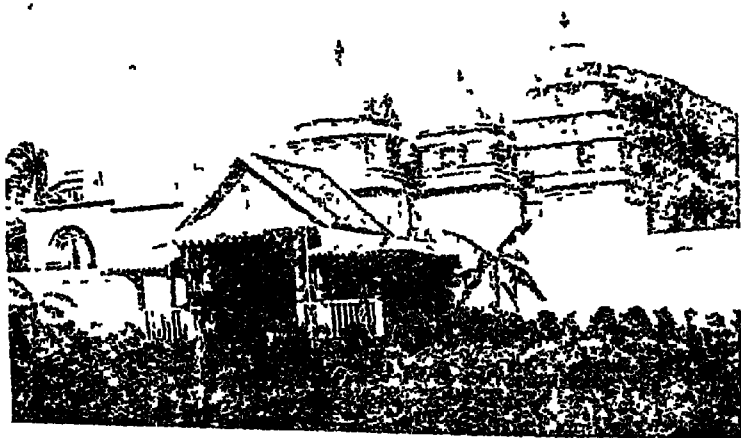
The temple of Sockalingum Meenatchee Ammen Photo by the kindness of Messrs Nallasamy Marday Padayachy Co Ltd , Port Louis

नहीं जानता है। और धर्म--कर्म नहीं जानने से भारतीयता का नाश कर बैठता है। अब उनको हिन्दू कैसे कहना? भाषा नष्ट होनेसे जाति भी कैसी नष्ट हो जाती है, उनका यह प्रत्यक्ष प्रमाण है। इंग्लिश, फ्रेन्च सीखनेसे हमारे भाव और विचार बदल जाते हैं, यह तो एक सिद्ध बात है। उसी प्रकार मातृ भाषाका ज्ञान रहनेसे हमारे विचार और भाव कायम रहते हैं, यह बात भी उतनी ही सिद्ध है। इसका प्रमाण रामायणके भक्त आपको दे सकेंगे। रामायणी लोग अपनी सभ्यता रखते हैं और उनकी सन्तान, भाषा भावके कारण विचार और भाव न होनेसे युरोपियन सभ्यता और भाषाको पसन्द करते हैं। सारांश, भाषामें मारनेकी या तारनेकी कितनी शक्ति है और उसमें अपनी सभ्यता तथा धर्म-कर्म कैसे समाया हुआ है, यह अब कोई भी समझ सकेगा। इस लिये अब हम पुनः कहते हैं कि, भाषाको जीवित रखना, हमारी सोसायटियोंका परम कर्त्तव्य होना चाहिये।

तीसरी बात है, हमारे धर्म-कर्म की। उसके सम्बन्धमें भी हम ने लिखा है। आजके प्रकाशके समयमें प्राचीन कर्मकाण्ड को जारी रखनेके प्रयत्न निष्फल ही होंगे। घी जैसी खाद्य-वस्तु क्यों जलानी चाहिये? सव्य अपसव्यका अर्थ क्या? आंख, छाती, नाक, कानको स्पर्श करनेका मतलब क्या? गर्भाधान संस्कार करने योग्य है? पुनर्जन्म मानना और श्राद्ध करना इसमे भी कोई अर्थ है? ऐसी अनेकों कर्म-काण्डकी बातें हैं, जिनको बुद्धिमान लोग निरर्थक समझते हैं। इन बातोंको तिलांजलि देनेमें किसीको दुःख होता हो, तो

वे भले ही रह जाय; परन्तु उनपर जोर देना बन्द करना चाहिये। इन्हीं बातोंके कारण हमारे तरुण स्वधर्मसे पराङ्मुख हो जाते हैं। ईश्वरकी स्तुति प्रार्थना और आत्मशुद्धि ये दो, जो धर्मके प्रधान अंग है, उनपर ही सारा बल लगाकर धर्मका स्वरूप अधिक शुद्ध करना चाहिये। हमने कहा है कि, क्या धर्म क्या कर्म कभी एक रूपमें नहीं रहता है। उनमें हमेशा परिवर्तन होता आया है। इस समय भी वैसा क्यों नहीं हो सकता है? आजका धर्म-कर्म ऐसा होना चाहिये कि, जिसके आचरणको लोग झंझट नहीं समझें। इस जमानेके लोग, प्राचीन लोगोंके समान धर्मकर्मका अधिक बोझ नहीं ढोना चाहते है। किन्तु उनको उतना समय ही नहीं मिलता है। सारा धार्मिक काम सहज, सरल और संक्षिप्त होना चाहिये। नदी पर जा कर स्नान-संध्या करना, यह भी हमारा एक धर्म-कर्म है। हम पूछते हैं कि, मोरिशसमें कौन हिन्दू या बाबाजी है, जो इस आज्ञाका पालन करता है? इस लिये देश और परिस्थितिको ध्यानमें रखकर कर्मकाण्डमें संशोधन करके नई पीढीको उस ओर खींचना, सोसायटियोंका आदि कर्तव्य होना चाहिये।

चौथी बात है, सभ्यता याने संस्कृति की। इस विषयमें भी बहुत कुछ लिखा गया है। हिंदुओंकी सभ्यताका अर्थ है, उनका आचार धर्म वेद कालसे लेकर आज दिन तक सैकड़ों विदेशी जातियां हिंदुस्थानमें आईं और वे वहीं बस गईं जैसे हम आज-कल अँग्रेज और फ्रेंचोंसे सीख रहे हैं और ले रहे हैं, उसी प्रकार प्राचीन समयमें भी हम लेते देते थे हिंदुस्थानके प्राचीन इतिहासमें उसके

अनेक प्रमाण मिल सकते हैं कहते हैं कि, मृत पतिके साथ जल कर सती होनेकी प्रथा बाहरसे (सिथियन लोगोंसे) आई है. पर्दा प्रथा मुसलमान लोगोंसे आई है . ग्रीक और बाबिलोनियन लोगों का कुछ ज्योतिष और गणित भारतमें आया और कुछ हमसे बाहर गया . हमारी बुद्ध-सभ्यता, आशिया और चीन जावा तक पहुंच गई तथा अमेरिकाके मेक्सिको राज्य तक विकृत रूपमें वह फैल गई । इंग्लिश फ्रेंचोंकी सभ्यता इसी प्रकार लेन देनसे बनी हैं। खान पान, पोशाक आदिमें भी ऐसा ही हुआ है । राम-कृष्ण पाजामा नहीं पहनते थे । तम्बाकू, चाय, काफी, बटाटा (आलू) पोमदामुर (टमाटाव) आदि कई पदार्थ बाहरसे आये हैं। ये तो हिंदुस्थानकी बातें हुईं । अब मोरिशसमें ही देख लीजिये । आज कल हमारे चांदीके आभूषण यथा हसली, चूडी तथा कांचकी बंगड़ी आदि, गोरी और क्रओल स्त्रियां कभी२ पहन लेती है यह बहुतोंने देखा ही होगा। गातो मुताई खाते हैं और मुलुकतानी भी पीते हैं । जब भिन्न जातियां साथ रहने लग जाती हैं, तब एक दूसरेसे लेना देना हो ही जाता है, और वह प्रकृतिका नियम ही है ।

तात्पर्य यह स्पष्ट है कि, जहां भिन्न भाषा, भिन्न धर्म और भिन्न सभ्यताके लोग आकर राज्य करते हैं और वहीं आबाद हो जाते हैं, तो वे जरूर ही अपनी प्रजापर अपनी बातें लाद देते हैं और कुछ उनसे भी ले लेते हैं। और बातें तो दूर रहीं हिन्दू और हिन्दुस्थान ये दो शब्द ऐसे हैं कि, जो वेद में, उपनिषदोंमें या पुराणोंमें कहीं भी नहीं मिलते हैं। परन्तु आज दुनिया भरमें उनका इतना

प्रचार हो गया है कि, उन्हीं नामोंसे हम और हमारा देश, सर्वत्र पहचाना जाता है। आर्यावर्त्त यह नाम पीछे पड़ गया, आर्य शब्दका लोप हो गया और अब भारत और भारतीय का प्रयोग होने लगा है। जब इस संसारमें कुछ भी वस्तु स्थिर नहीं है, तब सभ्यता ही कैसे कायम रह सकती है? ग्रीक, रोमन, इजिप्ट, सुमेरियन, आसीरियन, आदि सुप्रसिद्ध जातियां और उनकी सभ्यता नष्ट हो गई। उनके उत्थापन करने वालों को लोग, मूर्ख ही कहेंगे। वह मरी, सड़ गई, खलास होगई। उनका श्राद्ध ही कर डालना चाहिये। सारांश, प्राचीन काल से समय२ पर भारतकी सभ्यता बदलती आई है, तो इस समयमे वह और बदल जाय तो इसमें क्या हानि है? हम तो कहते हैं कि, वर्तमान समयकी सभ्यतासे हमें भय नहीं है। हम इतना ही कहते हैं कि, उसमे कुछ धर्म विरोधी नहीं होना चाहिये। आधुनिक हिन्दू वर, उमर भरमें केवल एक दिन विवाहके अवसरपर भी धोती पहनता या मोर बांधना, स्वीकार नहीं करता है। हम समझते हैं कि, उसमें धर्मबाह्य कोई बात नहीं है।

दूसरी बात हिन्दू सभ्यताके सम्बन्धमें यह है कि, एक जातीय हिन्दू सभ्यता, भारतमें न कभी थी न आज ही है। अखिल भारत की कभी एक सभ्यता नहीं रही है। हिन्दुस्थान मे कुछ नहीं तो पचास देश हैं। पंजाबकी सभ्यता एक, बिहार की दूसरी, बंबई की तीसरी, बंगालकी चौथी और मद्रास की पाचवीं। हम कैसे कह सकते हैं कि, यह हमारी प्राचीन हिन्दू सभ्यता है? इतना अलबत्त हम कह सकते हैं कि, यह

कलकतिया सभ्यता है और वह मद्रासी सभ्यता है; परन्तु नहीं कह सकते हैं कि, वह भारतकी सभ्यता है।

इसलिये प्राचीन हिंदू सभ्यतापर जोर देकर उसके लिये हठ पकड़ बैठनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इस समय सब ही युरोपियन सभ्यताके प्रवाहमें बह रहे हैं, कोई जरा आगे बढ़ा है, कोई पीछे है, तो कोई रेंगता है, इतनाही फरक है।

सोसाइटियां इस प्रवाहको रोक नहीं सकती है और हम कहते हैं कि, उनको रोकना भी नहीं चाहिये। उनका काम इतना ही होना चाहिये कि, समाजपर उनकी नजर रहे और सभ्यताके नाम पर उच्छृंखलता उसमें न घुस जाय और धर्मको हानि पहुंच जाय।

पांचवी और महत्वकी बात यह है कि, स्त्री शिक्षा। हमने इस पुस्तकमें बारर परिस्थिति शब्दका प्रयोग किया है, उसको पाठक भूलें नहीं। मोरिशसकी परिस्थिति, भारतीयोंके वास्ते एक भयंकर भूलभुलैया है। वह एक जाल रूप है, जिसमें वे फसते हैं और पकडे जाते हैं। मोरिशस में स्त्री पुरुषोंके, जो सम्बंध है उसका अनुभव तो क्या दर्शन भी उनको अपने देश हिंदुस्थानमें कभी नहीं हुआ था। अच्छे घरानेके स्त्री पुरुषों को नाचते गाते देखना, खेल तमाशोंमें साथ जाते देखना, काम चेष्टा करते देखना, खान–पानमें देखना मानों कि, उनके लिये एक नई दुनियां ही थी। इसीको हम मोरिशसकी परिस्थिति कहते हैं, जो भारतमें नहीं पाई जाती है। अब हिन्दुस्थानी लोग इस परिस्थितिके साथ अच्छी तरह 'आबिचे' (परिचित) हो गये

हैं और स्वयं ही उसका अनुकरण कर रहे हैं!! नाटक या सिनेमा देखनेपर, प्रेक्षक कभीर नटोंका हाव-भाव आदि अभिनय अथवा उनके गानेकी नकल करते रहते हैं। मोरिशसके स्त्री--पुरुषोंका नाटक देखतेर अब स्वयं हिन्दुस्थानी लोग भी वैसा नाटक करना चाहते हैं।

कालेजमे शेक्सपियरकी नायक नायिकाओंकी सुन्दरताका वर्णन और उनकी रसपूर्ण प्रेम कथाएं पढकर हमारे विद्यार्थियों का सिर फिरने लग जाय तो आश्चर्य ही क्या? वे कहां अपनी नायिकाको ढूंढे और किससे प्रेम लगावे? हमारी पुत्रियां घरसे बाहर निकलती नहीं और शिक्षासे कोसों दूर रहती हैं। इस दशामें हमारा प्रेमका भूखा युवक, जहा मिले, वहां आत्म समर्पण कर देता है, "बिभुक्षित: किं न करोति पापं" अर्थात भूखा आदमी क्या पाप नहीं करता है? वह गोरी नहीं देखता है, काली नहीं देखता है, जात नहीं देखता है और धर्म भी नहीं देखता है। जो भी मिले, उसे अपना प्रेम दे डालता है और हम उसे खो बैठते हैं।

अतएव हमारी सोसायटियोंको इस भारी प्रश्नकी ओर सर्व प्रथम ध्यान पहुँचाना चाहिये। कन्याओंको पढ़ाना चाहिये और ऐसे अवसर निर्माण करना चाहिये कि, जिनमें कुमार कुमारी भाग लेकर एक दूसरेसे परिचित हो जाय। शादीमें, मन्दिरों मे, और व्याख्यान आदियोंमें स्त्री पुरुषोंको अलगर नहीं बैठना चाहिये; किन्तु मिश्रित होकर। यहांकी परिस्थितिका सामना करना है और अपनी जातिको मौतसे बचाना है, तो यह सब

करना ही होगा। हम जानते हैं कि, बोलना या लिखना आसान है; पर करना बहुत कठिन है पर हिन्दुस्थानियोंमें तो बोलना या लिखना भी कठिन है। चलो, हम तो लिख ही देते हैं और कबीर बोल भी देते हैं। कममें कम, लोगोंको हमारे विचार तो विदित हो जायँगे और करनेसे पहिले बोलने वाला भी तो कोई होना चाहिये न?

परिस्थितिका क्या अर्थ है, उसे पाठक अब अच्छी तरह समझ जायँगे। संक्षेपसे कहना हो और उसे रूपक द्वारा स्पष्ट करना हो तो हम इतना ही कहेंगे कि, मोरिशसमें हिन्दूके घरमें कृष्ण बैठा है और द्वारमें ख्रिस्त खड़ा है!!

## संस्थाओंके नाम।

महाकवि शेक्सपियर ने कहा है कि, नाममें क्या है? (What is in name) गुलाबके फूलको किसी भी नामसे पुकारो, वह अपना माधुर्य और सुगन्ध देगा ही। हम लोग नामको बड़ा महत्व देते हैं। मोरिशसमें दो लाख हिन्दू हैं, इनकी सभाको 'महासभा' का नाम दो तो उसमें उतनी अतिशयोक्ति शायद नहीं होगी, परन्तु तीन चार हजार ब्राह्मण या क्षत्रिय जाति वाले भी अपनी सभाके पीछे 'महा' लगा देते हैं। कबीर पन्थियोंकी संख्या, मोरिशसमें १५०० तक भी मुश्किलीसे पहुंचेगी; पर उनकी भी 'कबीर महासभा' है। इसी प्रकार कोई परोपकारिणी, ज्ञान वर्धिनी, साधुसंघ आदि नाम लेकर ये संस्थायें जन्म लेती हैं। जन्म से पूर्व ही उनका नामकरण सं-

कार हो जाता है। पिछले वर्ष स्टानले-रोजहिलमें तामिलोंकी एक सोसायटी घोषित हुई है। उसका नाम पढनेको और उसका अर्थ लगाने को हमको ६० सेकण्डसे अधिक समय लगा है!!——“ दि यंगसूयम परगसम तामिल परोपकार संघम।”
( The self enlightened young Tamil Benevolent society ) mutual helps society यह उसका नाम है। आपसमें एक दूसरे की सहायता करनेकी हेतु से इसकी स्थापना हुई है।

‘तामिल परस्पर सहायक मंडली’ जैसे लघु नामसे भी वह वही काम कर सकती है, जो कि इतने बडे और लम्बे चौडे नामसे वह करना चाहती है। जवान, सूर्य. प्रकाश, परोपकारादि विशेषणोंसे युक्त चतुर्भुज कृष्णके समान शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि आयुधोंके साथ उसका जन्म हुआ है। हम लोग आडम्बरको कितना चाहते हैं, उसका यह एक नमूनेके रूपमें प्रमाण है।

प्रति मास सदस्यसे चार आठ आना चन्देके रूपमे वर्षों तक वसूल करते रहना और सदस्यकी अथवा उसके कुटुम्बके किसी समीपी मनुष्यकी मृत्यु हो जाने पर, स्मशान व्ययके लिये २५-३० रुपये उसको देना इसका अर्थ यदि परोपकार है, तो “जाशिरांस” (Insurance) कम्पनियोंको, जो हजारों रुपये जीते जी या मरने पर देती है, क्या कहना चाहिये? २५-३० बच्चों को कक, पप, टट, दद की पढाईको ज्ञान वर्धन या विद्या प्रचार के नामसे संबोधन करो तो कालेज युनिवर्सिटीको हम क्या कहेंगे? नाम

Pandit Ranchchodlall Shastree of Tere Rouge, well-Known astrologer and ritualist.

बडा हो तो काम भी बडा करो; पर यहां तो सब विपरीत देखनेमें आता है। हिंदुओंकी मनोदशा पर ये नाम स्वच्छ प्रकाश डालते हैं। धर्म-कर्म या विद्याभ्यास न होने पर भी वह पंडित बाज सकता है। एक डरपोक मुर्दार भी वीरेन्द्र सिंह हो सकता है। हर एक हिंदू स्त्री, देवी और धर्मपत्नी बन सकती है और दरिद्री मूर्ख साधु महात्मा बन सकता है। इस हालतमें उद्योग, पुरुषार्थ, शील, नीतिसे काम करके नाम कमाने की आवश्यक्ता ही क्या है? बापकी कमाई पर कोई कहींसे कुछ सीख कर चला आता है तो उसको सूर्य, देशभक्त, धर्मात्मा जैसी पदवियों से उसकी पूजा करते हैं। अब उसके लिये बाकी क्या करना है? हिन्दू समाजकी इस प्रकारकी मनोवृत्ति के कारण उनकी संस्थाएँ भी 'सूरत मीठी, कीरत खट्टी' की कहावत के अनुसार बडा नाम ले कर छोटा काम करती हैं। मोरिशसमें इस बातका सुख है कि, बिना काम किये केवल १००-१५० रुपयाके खर्चमें, जो चाहे वह उपाधि वाला नाम, सभाके लिये मिल सकता है। काम क्यों करे? लेकिन उससे उनको जो हानि पहुँचती है, उसको वह देख नहीं सकते हैं। नाम बडा होनेसे काम भी बडा करनेकी उनको इच्छा तो अवश्य होती होगी। परन्तु उनमें सामर्थ्य और साधनों की कमी होनेसे बडे नामके योग्य बडा काम उनसे नहीं हो सकता है। छोटा काम करनेमें तो उनको शरम आती है; क्योंकि बडा नाम लेकर छोटा काम कैसे करना? बडा काम करने की शक्ति नहीं और छोटा काम करनेमें लज्जा लगती है। तब क्या करना? अकर्मण्यता, बस चुपचाप बैठ रहो।

आजकलके हमारें लेखक और व्याख्याताओंका मानों एक धंधा सा हो गया है कि, समय, असमय, खरी खोटी, बातोंको फुकार कर लोगोमें हमेशा जोश भरते रहना।—"सारे भूमण्डल पर एक समय हमारा राज्य था। समस्त संसारके गुरु हमारे पूर्वज ही थे। ज्ञान-विज्ञानका भण्डार हमारे पास ही था। सुवर्णभूमि हमारी ही थी। हमारी संस्कृत दुनियांकी भाषा थी। पातालमें भी हम लोग पहुँच गये थे। धन-धान्यसे संसार की रक्षा हम ही करते थे। ऋषि-मुनि और साधुसंतोंकी हमारी ही भूमि है।" ऐतिहासिक दृष्टिसे देखा जाय तो उनमेसे एक भी बात सत्यकी कसौटीपर ठहर नहीं सकेगी। इन्हीं बातों को सदा रटते रहना इसीको ये जोश देशाभिमान, देश गौरव और देशभक्ति कहते हैं। हमेशा ये बातें सुनकर एक अफीमची के समान हम सदा मस्त रहते हैं, हमारी बुद्धि मंद हो जाती है, हम दूसरोंको तुच्छ मानते हैं और फल स्वरूप संसारकी ठोकरें खाते हैं। निर्मल हृदय न होनेके कारण अन्योंके गुणोंको हम पहचान नहीं सकते हैं और उनकी कदर नहीं करते हैं। अपनी ही लाल मान कर सूर्यकी भी हम अवहेलना करते हैं। अन्योंको तुच्छ मानना तब उनसे सीखना कैसे? यदि कुछ सीख भी लेते हैं, तो केवल पेटके वास्ते। फल यह निकलता है कि, न इधरके रहे न उधरके। ये बड़े बापके छोटे बेटे, छोटेसे छोटे होनेपर भी उपरोक्त अफीम के नशेमें होने के कारण अपने छोटेपन को स्वीकार नहीं करते हैं और खाली बड़प्पनकी ढालके पीछे खडे होकर जीवन संग्राममें उतरते हैं। ये कैसी विजय पायेंगे?

मोरिशसमें और सोसायटियोंमें भी समझदार लोग हैं, जो वस्तु स्थितिको पूरी तौर से जानते हैं; पर झुण्डके सामने उन-की कुछ चलती नहीं। मनुष्य समाज एक नंदीके समान मंद और सुस्त जानवर है। उसको बार२ चाबुककी फटकार से और कभी२ उसकी मारसे भी तेज रखनेकी आवश्यक्ता है। चपल घोडेसे भी वह अधिक काम करता है; पर सदैव उसको चाबुक बताते रहना चाहिये। बुद्ध, नानक, दयानन्द जैसों ने उसे फटकारा है, पर भारत जैसे विशाल देशके लिये वे भी अपूर्ण ही प्रतीत होते है। समाजके फटकारने में भय है, हा-नि है, अपमान है, मार है और जीवनका भी खतरा है। परन्तु उसीमें समाजका कल्याण है। सोसायटियों के प्रवर्त्तक, समाजको फटकार कर जगाना अपना काम नहीं समझते है। शायद वह कहते होंगे कि, हमारे ये मित्र संस्थाएँ हैं। प्रेम गम्मतके लिये हम इकट्ठे होते हैं। सच्ची पर अप्रिय बातें सुना कर हम क्यों हमारे सदस्योंको नाराज करें? इससे हमारा चन्दा भी बंद हो जायगा और सभा भी टूट जायगी। बात भी ठीक है।

रोजहिलमे दो तीन तामिल मंदिर और दो तीन सभाएँ भी हैं। वहीं तामिल युवक धड़ाधड ईसाई बनते जाते है और खास उनके लिये ही अब एक गिरजा (ले•लीज) बन गया है। हिंदू संस्थाएँ इन बातोंसे बेपर्वाह है। वे अपने अधिवेशन करते हैं, भजन गाते है, नये सदस्य भरती करते है, त्यागपत्र स्वीकार करते है, किसी देवी देवताका उत्सव करते है, सालाना

रिपोर्ट मंजूर करते हैं, कभी पंचायत भी करते हैं और अवधि समाप्त होनेपर कर्मचारियोंका चुनाव या नियुक्ति कर देते हैं। सालभर यही काम होता रहता है। इसके सिवाय बाहर क्या हो रहा है, उसे वे नहीं देखते हैं। वह यही समझते हैं कि जो आते हैं उन्हें आने दो, जो रहेंगे उन्हींको लेकर हम भजन करेंगे!! जबतक सौ दो सौ मनुष्य इकट्ठे हो जाते हैं, तबतक वह यही समझते रहेंगे कि, हिन्दू समाज अभी मरा नहीं है। हिन्दू लोग रोग की दवा नहीं करते हैं, किन्तु मरण समयपर ही डाक्टरको बुला कर दौड़ादौड़ी करते हैं। परन्तु उस समय हो जाता है "श्रो तार' (मामला खलास) हम लोग परंपरा के दास हैं। भजन करना और जल चढाना भी परंपरा ही है। भजनका उद्देश्य है, मधुर ध्वनिमें भक्ति रसयुक्त संगीतके साथ ईश स्तवन करना। अब तो झांझ कूटना, बाघ जैसा मुंह फाड़ कर चिल्लाना और ढोलकी पीटना इसीको भजन कहते है। इसमें शान्ति, भक्ति और मधुर ध्वनि कहां और ईश स्तुति भी कहां? भजनोंको आज कल जलसोंका रूप आ गया है। दूर से भजन मंडलियां आती हैं, अपनी गायन वादन पटुताको बताना चाहती हैं और फिर आपस में लड़ भी पड़ती हैं। भजनके गायन और नाटक सिनेमाके गायन, दोनोंका ढंग एक ही। भक्तिरस उत्पन्न हो कैसे? लोग भजन करते आये हैं, वही प्रथा सोम्माइटिया भी चलाया करती है।

मासमें एक दिन लोग जल चढाते हैं। आरम्भमें श्रद्धासे प्रेरित होकर, लोग खुशीसे परीतालावकी यात्रा करते थे, परन्तु अब

लोगोंको जल लानेके लिये मनाना पडता है, उनको फुसलाया जाता है और ऊपरसे दक्षिणा भी देना पडता है या भय भी बताया जाता है। यह श्रद्धा क्यों कम हुई उसके कारणोंकी खोज कोई संस्था नहीं करती है। जल चढ़ानेके उद्देश्यको वे कभी लोगोंको समझानेका यत्न नहीं करेंगी। जल चढ़ानेसे लोगोंके मनको, विश्वासके कारण एक प्रकारकी शांति जरूर ही मिलती है; पर उनकी आत्मशुद्धि नहीं होती है। दूसरे लोग उनकी चित्त शुद्धि दूसरे ढंगसे करते हैं, जिससे उनकी श्रद्धा घट जाती है और कावर ढोने वालोंकी संख्या पतली होती जाती है। जल चढानेमें पुण्य है और परीतालावकी यात्रा करनेमें महा पुण्य है, इस उपदेशका घोष करते रहना इतना ही ये संस्थाएँ अपना कर्तव्य समझती हैं। प्राचीन-प्रिय अथवा परम्परा-प्रिय (orthodox) हिंदुओंको ऐसा उपदेश करने वालोंकी वाह वाह होती है। एक दिन धोती लपेटकर वैसे महाशय, अपनी टूटी फूटी भोजपूरी हिंदीमें पहिले आर्यसमाजकी शिकार करते हैं और फिर एकाध वैसा ही व्याख्यान झाडकर अपने हिंदू-धर्मके अवतार होनेका लोगोंको दर्शन देकर लोप हो जाते हैं! अपने बड़प्पन और स्वार्थको धक्का न लगे और अनायासकी कुछ नाम न मिल जाय इस उद्देश्य से ही ये मेंडकीय धर्म मार्तण्ड कुछ धाधली मचा देते हैं। ऐसे लोगोंसे समाजकी उन्नतिके यत्नकी आशा रखना, आकाश गंगामें निहानेके सदृश है।

हम फिर कहते हैं कि, समाजको सदैव फटकारते रहना चाहिये। उसको झुकने नहीं देना चाहिये। सिपाहीके समान छाती निकाल कर खडे रहनेकी शिक्षा उसे देनी चाहिये। १०० सालकी अवनि

में यहां कोई फटकार बहादुर (सुधारक या सशोधक) पैदा नहीं हुआ है; पर हम आशा करते हैं कि, अब कोई जल्दी ही निकल आयगा।

१५-२० वर्ष पूर्वकी स्थापित संस्थाएँ पुराने ढरेंकी होनेसे उनसे यदि कुछ विशेष कार्य न हो सका तो वह क्षन्तव्य है; किंतु उनके उत्साह, श्रद्धा और परिश्रमकी प्रशंसा ही करनी चाहिये। लेकिन इस समय वह बात नहीं है। शिक्षितोंकी संख्या इस समय कम नहीं है और वे अब सभा सोसाइटियोंमें प्रवेश करने लगे हैं। इन लोगोंसे आशा हो सकती है कि संस्थाओंका काम काज अब नई पद्धतिसे आरम्भ होगा। ये लोग आस पास क्या हो रहा है उसे देख सकते हैं, समझ सकते हैं और सुधार संशोधन करनेकी भी हिम्मत उनमें है। वे स्वयं अपनी उदार तथा नई शिक्षाके कारण परिवर्तित हैं और दूसरोंको भी वैसा ही बनाना चाहते हैं। वे स्वतंत्र हो तो और भी अच्छा, उनसे काम भी अधिक हो सकता है। उनको इतिहासका ज्ञान है और वर्तमान समयको भी वे जानते हैं। उनमें चिकित्सा बुद्धि है और अंध श्रद्धा तथा रूढीकी दास्यता उनमें नहीं है। उनमें विशेष बात यह है कि उनको आत्म-गौरवका ज्ञान हुआ है। गुड्डेको गुड्डा कहनेको वे तैय्यार रहते हैं. ऐसेही लोगोंने भारतमें समाज-संशोधन और सुधार किया है। इस बातको ध्यानमें रखना चाहिये. जो हुआ सो हुआ अब भी हम चेत जाएँगे तो भी खैर. संस्थाओंके नामोंके संबन्धमें याने उनके विशेषणोंके सम्बन्धमें हम लिख रहे थे. मियां मुट्ठी भर और दाढ़ी हाथ भर नहीं होना चाहिये यही हमारे कथनका अभिप्राय है. कहाना राजाधिराज और

मारना मक्खी, जैसी हमारी संस्थाएँ हास्यास्पद नहीं होनी चाहिये। ऐसे अडंबरसे हानि कैसी होती है उसको हमने बता ही दिया है।

## सोसाइटियोंसे लाभ

यह नहीं समझना चाहिये कि इन सभा संस्थाओंने हिंदू समाजका कुछ भी हित नहीं किया है और केवल उसको हानि ही हानि पहुंचाई है। ऐसी बात नहीं है। उनसे समाजको लाभ भी हुआ है। सभा होनेसे लोगोंको एक प्रकारकी शिक्षा मिलती है। सभामें किस प्रकार आना बैठना, नियमोंका पालन करना, अपशब्द न बोलना, एक दूसरोंकी इज्जत करना, बहुमतके पाबन्द रहना आदि अनेक बातोंका ज्ञान, सभा द्वारा ही लोगोंको प्राप्त होता है। बहस चर्चामें भाग लेनेसे बुद्धिका विकाश होता है। प्रश्न उत्तर करना वह जानने लगता है। महत्वाकांक्षाका उदय होता है और अधिकारीके पदकी, सदस्य लालसा रखता है और उसको प्राप्त करनेके लिये अपने काम और व्यवहारसे सभाकी उन्नति करनेकी वह चेष्टा करता है।

जिसको Democracy याने प्रजातंत्र कहते हैं, उसका श्रीगणेश इन्हीं संस्थाओंमें होता है। सब काम लोगोंकी इच्छानुसार बहुमत के आधारपर करना इसीका नाम है प्रजातंत्र। सभाओंमें इसी प्रणालीसे कार्य होता है। प्रजातंत्री कारोबारकी प्राथमिक शिक्षा सभामें कैसी मिलती है, यह उपरोक्त बातों से ठीक समझमे आ सकता है। अर्थात, यह कुछ छोटा लाभ नहीं है। स्वराज्यका अर्थ यही है।

संस्था होनेसे कुछ भी कार्य करना हो, सुलभ हो जाता है। एक मनुष्य कितनाही अच्छा क्यों न हो, जनता उसपर विश्वास करनेमें जरा हिचकती ही है; पर संस्थाके मनुष्यपर विश्वास करनेमें उसको उतना भय नहीं रहता है। वे जानते हैं कि, सभामें कुछ नहीं तो १५-२० आदमी जरूर ही होंगे और वह कोई चोरोंकी टोली नहीं है।

आवश्यकता होनेपर वे झटसे एकत्रित हो सकते हैं, काम बांट लेते हैं और इच्छित कार्यको पूरा कर देते हैं। क्योंकि सारा मसाला तैयार ही रहता है। कोई उत्सव, किसीका स्वागत, कोई व्याख्यान—उपदेश, पंचायत, विरोध निषेध सम्मति-सहायता, सब प्रकारके कामोंके लिये ये सभायें जानों कि यंत्र रूप हैं। बस चाभी घुमा दो, वे चलने लग जाती हैं।

बहुत सी सभाएँ थककर सो जाती हैं; पर जगाने वाला कोई मिल जाय तो फिर उठकर अपना काम करने लग जाती हैं। एक अर्थमें उनका दीर्घायुषी कहो तो उसमें कुछ झूठ नहीं है और यदि कोई उनको "शतं जीवेत" कहकर आशीर्वाद दें तो वह सत्य हो सकता है।

ये संस्थाएं हिन्दू समाजके आभूषण है और हिंदू समाजके लिये अत्यंत आवश्यक तथा उसका मूल कर्तव्य, जो संगठन है, उसके लिये तो ये संस्थाएँ सदैव रहनी चाहिये। ये संस्थाएँ छोटे२ संगठन ही है और उन्हींमे भावी बडे संगठन

Mr. Dookhee Gungah, the well-known philanthropist of New Grove.

का बीज बोया हुआ है। उसको आज नहीं कल, अंकुर निकलेगा, उसका झाड़ बनेगा, वह फूलेगा फलेगा और हम तो नहीं हमारे अनुगामी उसके फल को चखेंगे। सिर्फ उनने हमेशा संशोधन करते रहना चाहिये।

## सभाओंके लिये एक ही कार्य।

बाल विवाह, विधवा विवाह, जाति पाति तोड़न, कन्या विक्रय, वृद्ध तरुणी विवाह, मंदिर प्रवेश, सहभोजन, हरीजन समस्या, (अन्त्यज) की शिक्षा, शुद्धि, कुरीति खण्डन आदि अनेक धार्मिक और सामाजिक कुप्रथाओंके साथ भारत लड़ रहा है। यहांपर उनमेंसे कोई बातके साथ मॉरिशस वासियोंको झगड़ने की जरूरत नहीं है। केवल स्त्री शिक्षापर उन्हें अधिक ध्यान देना चाहिये। यहां प्राथमिक शिक्षा भी मुफ्त दी जाती है और उसका फायदा हिन्दुस्थानी लोग अच्छी तरह ले रहे हैं। यहां वर्णभेद नहीं है, सबके समान राजकीय अधिकार हैं और सबके वास्ते एक ही कानून है। धर्म-कर्म, शादी-ब्याह, रहन सहन, खानपानके लिये वे पूर्णतासे स्वतंत्र हैं। यहां हिन्दू मुसलमानोंके झगड़े नहीं हैं, सारी प्रजा शान्ति और मेलजोल में रहती है। यह स्वातंत्र्य, भारतियोंकी दृष्टिमें इतना अधिक है कि एक साड़ी धारी स्त्री, चीनाका हाथ पकड़ कर चले या एक सुथनी वाले क्रेओलकी बगलमें चले अथवा भारतीय पुरुष, अ-हिन्दू स्त्रीके पीछे दौड़े तो उसमें लोगोंको कुछ हर्जा नहीं लगता है। शायद यह सब देख कर कोई महाशय यह कहेंगे कि, मोरिशसमें रामर   रहा है। परन्तु हिंदू लेखक हिन्दू

राज्य ही पसन्द करेगा। यहां कितनी सामाजिक स्वतंत्रता है, इसका इससे पता लग सकता है।

आधुनिक विद्वानोंका कथन है कि, जाति पाती, धर्म कर्म ये सब मनुष्यकृत है। प्राकृतिक या ईश्वरीय नियम उससे परे हैं। स्त्री पुरुष, जाति पाती या धर्म नहीं देखते हैं, वे तो एक दूसरेके रूप रंगसे उत्तेजित हो जाते हैं। इसीको प्राकृतिक आकर्षण कहते हैं और इसी लिये यहां जास्ती आज़ादी होनेसे इस आकर्षण (खिचाई) के अनेक चमत्कार देखनेमें आते है। विद्वानोंका यह कथन कदाचित ठीक भी हो पर इस तात्विक विवेचनके लिये यह पुस्तक नहीं लिखी गई है। हम तो यही कहेंगे कि, जब तक धर्म और जातिमें रस्सी खिचाई (Tug of war) का खेल चलता रहेगा तब तक अपने पक्ष Team को बलवान बना रखनेकी कोशिश करना हर एक हिंदूका कर्तव्य ही है।

मोरिशसमें जितने प्रकारके रंग, नाक, आंख, होंठ, केश आदि देखनेमें आते हैं उमसे हमारी जातिके भविष्यके लिये जरा भय ही उत्पन्न होता है। संसारके तीनों प्रधान मानव वंश यथा आर्य, नीग्रो और मांगोलियन [चीना] यहां रहते है, किंतु एक दूसरेके पड़ोसी है। उनके आपसके लैंगिक संसर्गसे एक त्रिगुणात्मक प्रजा यहां उत्पन्न हो रही है। हमारे विचारसे इस पृथिवीके किसी देशमें यह दृश्य देखनेमें नहीं आयगा। मोरिशस जनन शास्त्र की एक प्रयोग-भूमि है।

वंश-शुद्धि रखनेके लिये मनु महाराजने कई कानून बनाये हैं।

यूरोप, अमेरिकामे भी वंश शुद्धिके लिये बहुत ध्यान दिया जाता है। जर्मनी देशमें जर्मन आर्य स्त्रीका विवाह या लैंगिक सम्बन्ध अनार्य पुरुषके साथ होना एक गुनाह माना गया है। हम तो केवल धर्म-रक्षाकी बातें करते है। वंश-शुद्धिके विचार भी अब हममें पैदा नहीं होते हैं। न तो हमारा राज्य ही है न वह शक्ति ही है कि, जिससे वंश-शुद्धि को हम टिका सकें। हमारे धर्मकी रक्षा हो जाने पर वंश-शुद्धि भी आपसे ही रह सकती है और हिंदुओंका दृढ संगठन यही एक इसका उपाय है।

खेती तो हिन्दुस्थानियोंका ही पेशा है; परन्तु व्यापार, नौकरी, कानून, वैद्यक, शिक्षा आदि मे भी उनका प्रवेश है। यद्यपि हुनर, कला कौशल्यमे वे बहुत हीं पीछे हैं; क्रेओलों के धंधे यथा सुथार, लुहार, पाथरी, हजाम, दर्जी, यांत्रिक, बवर्ची, सेवक आदियों पर भी उनका आक्रमण हो रहा है। तात्पर्य, हिन्दुओंकी यह जो भौतिक प्रगति हो रही है. उसमें इन सोसायटियों ने कुछ भी सहायता नहीं की है। आगे चलकर भी उक्त प्रकारकी उन्नति को वे पोषक बनने की आशा नहीं है। दूसरा महत्वका विषय राजनीति (राजकारण यानें Politics) है। यहां मामूली सभा भरानी हो तो सरकार की परवानगी प्रथम लेनी चाहिये। यहां न तो कोई स्वराज्य मांगता है न होमरूल ही। वैसा कोई आन्दोलन यहां नहीं है। अन्य उपनिवेशोंमें हिंदुस्थानियों की जो शिकायतें सुननेमें आती हैं, वैसी कोई बात मोरिशसमें नहीं है और उसका श्रेय इस टापूके मूल मालिक, जो फ्रेंच लोग हैं, उन-

को देना चाहिये।

इस हालतमें यह देखना है कि, हमारी सोसायटियोंको करनेके लिये काम ही कौनसा रह जाता है? उनके लिये इतना ही काम रह जाता है कि, वे अपने धर्मकी रक्षा करें। अपनी शक्तिको दूसरी किसी ओर खर्च करने की उन्हें आवश्यकता नहीं है। अपनी सारी शक्ति लगाकर वे अपने प्राचीन, प्रिय धर्मकी रक्षा कर सकते हैं। वृद्धि की बात तो अभी दूर की है। जो है, उसको संभाले तो भी बहुत है। २००,००० हिंदुओंकी ६२ सभाये क्या नहीं कर सकती हैं?

हमने इस प्रकरणके आरम्भमें कहा था कि स्वरक्षाके लिये समूहमें रहनेकी बुद्धि, मनुष्यमें स्वभावसे ही होती है। सभ्य युगमें वह बुद्धि सभा संस्था द्वारा प्रकट होती है। परम्परा और लोक-निंदा की परवाह न करके यदि हमारी सभाएँ कार्य करती रहेंगी, तो हमें विश्वास है कि, हिंदू जातिका सिर ऊंचा रखनेमें वे समर्थ होंगी।

पाठकोंकी जानकारीके लिये रजिष्टर्ड हुई ६२ संस्थाओंके नाम और उनकी स्थापनाका वर्ष हम यहां देते है।

# संस्थाका नाम और स्थापनाका वर्ष।

| | |
|---|---|
| मोरिशस हिंदू फ्रेण्डशीप सोसाइटी | १८६८। |
| इण्डो मोरिशियन उपकार सभा | १६०५। |
| शिव मसर्थोल सोसायटी | १६०८। |
| आनन्द वाटिका सोसायटी | १६०६। |
| मोरिशस हिन्दू बेनीवोलेण्ट सोसायटी | १६११। |
| महेश्वरनाथ इनस्टीटयूट | १६११। |
| मोरिशस हिंदू तामुलाल बेनीवोलेण्ट सोसायटी | १६११। |
| मोरिशस हिंदू हिम सोसायटी | १६१२। |
| न्यू महाराष्ट्र रिलिजस एण्ड पूर हेल्पिंग सोसायटी | १६१२। |
| हिंदू धर्म संघम् सोसायटी | १६१३। |
| यंग मेन्स हिंदू असोसिएशन | १६१३। |
| कोंम्रेयार्स्ते दे हिंदू दे मोरिस | १६१३। |
| आर्य परोपकारिणी सभा | १६१३। |
| हिंदू तामुलाल सिवा सुप्रमानियें बेनीवोलेण्ट सोसायटी | १६१४। |
| मोरिशस तामिल एड एण्ड वेएड सोसायटी | १६१४। |
| मोरिशस हिंदू सीतला आम्मेन बेनीवोलेण्ट सोसायटी | १६१६। |
| कोंम्रेयार्शों दे हिंदू दे मांपोर | १६१७। |
| तामिल परोपकार संघं बेनीवोलण्ट सोसायटी | १६१७। |

| | |
|---|---|
| मोरिशस हिन्दू तामुलाल किस्टनन वेनीवोल-वट सोसायटी | १६१७। |
| मोरिशस तामिल देवेन्द्र कुल तारगज म्युचु-एल हेल्प सोसायटी | १६१६। |
| सम्मेलन परोपकारिणी सभा सोसायटी | १६२०। |
| रविउदय विद्या समाज सोसायटी or new born intellectual society | १६२०। |
| सनातन धर्म पाठशाला सोसायटी | १६२१। |
| मोरिशस हिंदू निलर्गल सुप्रमानियें-टेम्पल विनिवोलयट सोसायटी | १६२१। |
| सनातन धर्म प्रचारिणी सभा | १६२१। |
| हंस कबीर मठ देवल सोसायटी | १६२१। |
| ॐ मिरयाल परम गुरु देसिगर साधु संघम सोसायटी | १६२२। |
| सोसायटीवन्य धर्म संघम् | १६२२। |
| मेण्टल एण्ड फिजिकल कलचर आसोसियेशन | १६२२। |
| मोरिशस शंभुनाथ शिवालय सोसायटी | १६२३। |
| श्री काठियावाड सोसायटी | १६२३। |
| ॐ क्लेश हारिणी समाज सोसायटी | १६२४। |
| मोरिशस तामिल नेशनल देवेंद्र संघम् म्युचुएल एड सोसायटी | १६२५। |

| | |
|---|---|
| इण्डो मोरिश्यन वैदिक उपकार सभा | १६२५ । |
| हिन्दू महा सभा | १६२५ । |
| हिन्दू क्रीमेशन सोसायटी | १६२६ । |
| सद्धर्म प्रचारक सभा | १६२६ । |
| हिन्दू-दे-ला वालेदेप्रेत | १६२६ । |
| नर्मदेश्वर नाथ सोसायटी | १६२६ । |
| आर्यप्रतिनिधि सभा | १६२८ । |
| आन्ध्र जनानन्द सहाय संघम | १६२८ । |
| वालेसुब्रमन्य धर्म संघम | १६२८. |
| मराठी प्रेम वर्धक मण्डली | १६२६. |
| ग्युचुल्ल एड तामिल सोसायटी आफ मोगेश | १६२६. |
| गीता प्रचारक महा मण्डल | १६२६. |
| मोरिशस इण्डियन हेल्प सोसायटी | १६३०. |
| शिवोपाशक सभा | १६३१. |
| तामिल शन्द्रा कौनानन्द सभाम | १६३१. |
| मार्या हुवाभम संघम | १६३२. |
| हिन्दू परोपकार धर्म सभा | १६३२. |
| मोरिशस यंग पिगागलम तामिल देव हिन्डीगार परोपकार संघम | १६३२. |
| शिवशंकरनाथ सोसायटी | १६३२. |
| नवजीवन सम्मेलन सभा | १६३३ । |
| मराठी धर्मी सभा सोसायटी | १६३३ । |

सावान हिंदू बेनीवोलेएट सोसायटी १६३४।
क्षत्रिय महा सभा १६३४।
आर्य रविवेद प्रचारिणी सभा १६३४.
हिंदू समुदाय वृद्धि संघम १६३४.
श्री हरी गोविंदन राजू पेरुमाल म्युचुअल
एड सोसायटी १६३५
श्री सनातनधर्म ब्राह्मण महा सभा सोसायटी १६३५
दी यंग मुरुगन पेरारागम तामिल परोपकार
संघं म्युचुअल हेल्प सोसायटी १६३५.
कबीर धर्म महा सभा सोसायटी १६३५.
हिन्दी प्रचारिणी सभा १६३६.
कुल ६३ संस्थाएँ हैं.

यहा यह सभा सोसायटी-कांड समाप्त होता है. इस लेखमें हमने, जहा जहा ६२ संस्थाएँ लिखी हैं, वहा पाठक कृपा करके ६३ पढ़े।
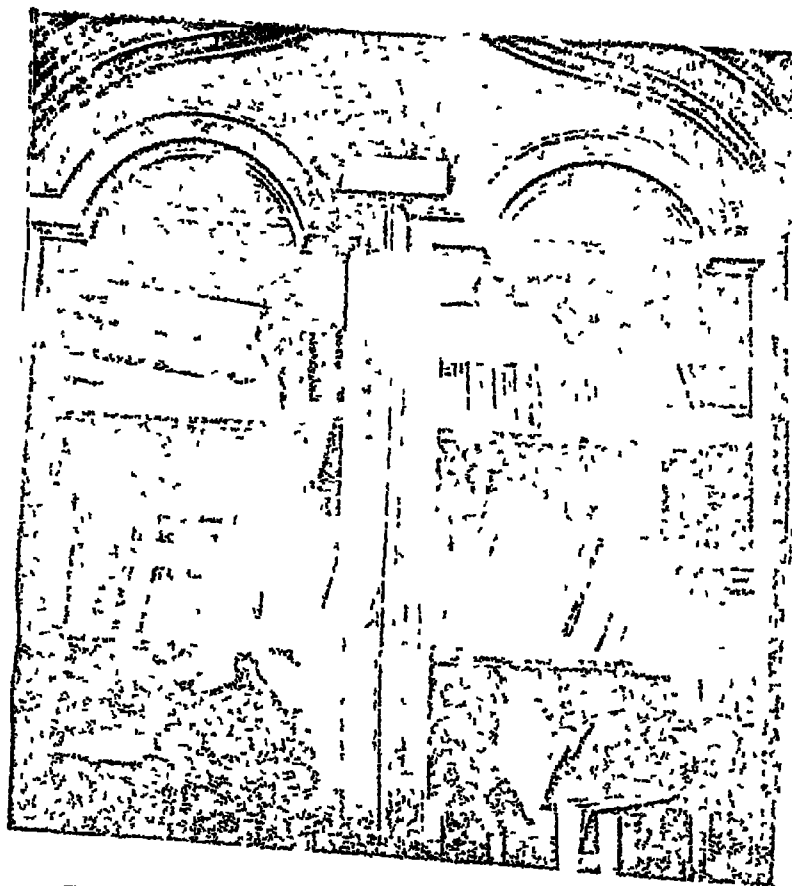
Workmanship of the Tamıl crafstman brought to teach creoles 200 years ago Vıde the exhıbıt in the Port Louıs bı-centenary exhıbıtion of last year ın the Beunıon Pavıllion.

# हिंदू समाजपर एक दृष्टि

आचार-विचार, मंदिर और संस्थाओंके सम्बन्धमे लिखनेके उपरान्त, हिंदू समाजको एक नजरसे देखना क्रम प्राप्त ही है। अधिकाश हिंदू, सभा-सोसाइटियोंसे सम्बन्ध नहीं रखते होंगे; पर मंदिर जाने वाले अधिकांश तो जरूर ही हैं, और विचारमें उतने नहीं, पर आचारमें तो सबके सब फँसे हुए हैं। अतएव इन तीनों बावतोंके साथ सम्बन्ध रखने वालोंके जीवनपर दृष्टिपात करना अत्युचित तो क्या अत्यावश्यक है।

हमारे पडोसी टापू रेनियोंमें १०-१२ हजारके करीब मद्राजी लोग हैं। इनके बाप दादा, हिंदू थे; पर आज उनकी संतान सब की सब ईसाई बन गई है। मोरिशसमें अन्य धर्मावलम्बी प्रजाकी संख्या प्रति साल बढती जा रही है, केवल हिंदुओंकी ही नहीं बढ़ती है, और उसका कारण यह कि, वे अन्य धर्मोमें चले जाते हैं। इस सम्बन्धमें हमने पहिले कहा ही है। त्रिनिदाद, ब्रिटिश गाएना, जमाएका, आफ्रीका आदि उपनिवेशोंमें भी हिंदू प्रजा धीरे२ ईसाई धर्ममे चली जा रही है। यहा भी क्रेओल आदि प्रजा का रूप रंग देखनेसे, तुरन्त विदित हो जाता है कि, भारतीय लोगोंने शरीर सम्बन्ध द्वारा उनकी वृद्धिमे कितनी सहायता पहुंचाई है। यह सिल सिला सौ डेढ सौ वर्षोंसे बराबर चला आ रहा है। और सौ वर्ष और फिर ?

उपनिवेशोंमे इस समय लग भग ३,०००,००० हिंदू रहते हैं। इसी वास्ते हिंदुस्थानको विशाल भारत (greater India) कहके अब पुकारने लगे है। भारतके धर्म प्रेमी, देश भक्त और विद्वानोंको

यह चिंता है कि, उन तीन मिलियों (३० लाख) भारतीयोंको हिंदू बना रखनेके लिये क्या किया जाय? वहां उनकी स्थिति 'न हिंदुर्न यवनः' जैसी हो रही है। रेनियोंके मद्राजी ईसाई गिरजा घर (लेगलीज) में जाकर शादी कर लेते हैं और वहांसे लौटकर घर आने पर घड़ीभरके वास्ते टीका लगा लेते हैं और शायद किसी बूढे को सीधा दे डालते है! इतनी सी हिन्दू विधि करा कर वे अपनी जातीयता को बेचारे जरा जागृत कर देते है। और पचास सालके बाद यह भी निकल जायगा और अपना मूल भी भूल जायेंगे। मोरिशसमें भी हम ऐसी बातें देखते हैं। बचपनमें एक व्यक्ति बातीजे (ईसाई दीक्षा) हो गया है। बड़ी या बड़ा होजाने पर लाभ हानिको तौल कर वह हिन्दू या ईसाई जीवन व्यतीत करता है। हमारे सिविल विवाहोंमें खास कर तामिलोंमें यह दृश्य नजर आता है। इसका अर्थ यही है कि, हिन्दू धर्ममें उनकी श्रद्धा घट गई है। यह नहीं समझना चाहिये कि अन्य धर्मोंमें इनको बडा विश्वास होता है। उनको तो मौज करना है। जात-पात और खान-पान आदिमें उनको आजादी मिलती है। पारलौकिक मुक्तिकी अपेक्षा इस लोक की मुक्ति में ही वे अधिक लाभ समझते है। मरनेके बाद स्वर्ग मिलेगा या नर्क, कौन जानता है? आज मजा उड़ा लो!!

भारत से मोरिशसकी स्थिति सर्वथा भिन्न है, इस बातको हमारे लोगों ने अबतक भलीभांति नहीं जाना है। संसार के तीनों मुख्य मानव-वंश-आर्य, निग्रो और मोगल (चीना) के मनुष्य यहां मौजूद हैं। हमारा एक पडोसी गोरा है, एक काला

निग्रो वंशीय  ओल है, एक चीना, एक मुसलमान और एक मद्राजी  । भाषा, सभ्यता, धर्म और रूप-रंगमें वे एक दूसरेसे भिन्न हैं। संसारके किसी भी देशमें ऐसा दृश्य देखनेमें नहीं आता है। ये आपसमे शादी व्यवहार करते हैं, साथ खाते पीते है, मिलते जुलते है और आनंदसे जीवन व्यतीत करते हैं। इसी लिये मोरिशसको 'विशाल कुटुम्ब' (grand family) की उपाधि से संबोधन करते हैं। इनका रोज एक दूसरेके साथ घर्षण होता है और हिन्दुस्थानियों पर उसका धार्मिक दृष्टि से अनिष्ट परिणाम होता है।

गोरे और क्रिओल स्त्री-पुरुष हाथमें हाथ डाले घूमने निकलते है, गाते और नाचते है, साथ बैठ कर भोजन करते हैं, रंग बिरंगके बढियां कपडे पहते है, सुन्दर दिखनेकी चेष्टा करते हैं, अपने बच्चोंको पाठशाला भेजते है, मंदिर जाते हैं। ये सब देखकर हिंदुओंका दिल ललचाने लगता है। किसीका भाई ईसाई बन जाता है तो किसीको बेटी मुसलमानके घर चली जाती है। परन्तु उनका अपने कुटुम्बके साथ सम्बंध टूटता नहीं, वे बराबर आते जाते रहने है और हिन्दुओंको घसीटते रहते हैं। हिंदू स्वभावसे ही विधर्मियोंसे दूर रहता है, पर यहा नित्य के घर्षण से उसके भाव नरम हो गये है, और मनुष्य स्वभाव अनुकरण प्रिय होनेसे दूसरोंके चाल ढंग स्वीकार करने मे उनको हलुकपन नहीं मालूम होता है। हिंदू लोग भोजन और कपड़ोंको धर्मका प्रधान अंग मानते है। गोमांस खानेकी या धोती छोड़ देनेकी जबरदस्ती उनपर न की जाय तो थोडे

प्रयत्नसे वे कोई भी धर्मके अनुयायी बन सकते हैं। इस संबंध मे मद्राजी साडियों ने हमको कई बार धोखा दिया है. अब तो यह भाव भी जा रहा है. हम कहते हैं कि क्रओल स्त्रियां रूप-रंगमे हमारी स्त्रियोंकी अपेक्षा भद्दी होने पर भी हिंदू युवकोंपर अपनी लटक मटकसे जादू डाल देती हैं। हिंदू स्त्री घर से बाहर निकलती नहीं और जब निकलती है, तब जरा मुंह छिपा करके अथवा किसी लोकनी के साथ। स्त्रीके साथ बोलना, चालना, हँसना, देखना, छूना ये सब हिंदुओं मे निर्लज्जता और काम चेष्टाएँ समझी जाती है। पुरुष, प्रकृति-स्वभाव से ही स्त्रीकी संगत चाहता है और क्रओल स्त्रीमें हिंदू पुरुषके प्रकृति-स्वभावको शान्ति मिलती है। इसीसे हजारों हिंदू, ईसाई हो गये हैं। यह देखते हुए भी लोग अपनी पुत्रीको न तो शिक्षा देते हैं न उनको कुछ स्वातंत्र्य ही देते हैं। रोगके चिन्ह प्रगट होते ही अन्य प्रजा, दवा-दारू करने लगती हैं; परंतु हिंदू लोग अन्तिम समय आने तक डाक्टरको नहीं बुलाते हैं।

जब डाक्टर आ जाता है, तब 'श्री तार' याने समय निकल गया है। मुसलमान लोग, हिंदुओंको और ईसाइयोंको इस्लाममें मिला लेते हैं, पर हिंदू अपने ही घरका त्यागकर देता है, जिससे उनकी दूनी हानि होती है। यहा की परिस्थितिका यह किंचित दिग्दर्शन हमारे पाठकोंको हमने इस वास्ते कराया है कि, वे कृपा करके अपनी जातिके ह्रासके कारणोंकी ओर जरा आंख उठा कर के तो देवें। हिंदुस्थानी प्रजा कृषि काममेंपड़ीहै और हुनर, कला,

शिल्प, नौकरी, व्यापार, वैद्यक, कानून सब कुछ अन्य प्रजाके हाथोंमें है और यही इज्जतके पेशे समझे जाते हैं। और जब वे इन व्यवसायोंमें प्रवेश करते है, तब अपना आधा हिंदूपन खो बैठते हैं। उनके बच्चे औरोंके साथ पढ़ते हैं। पाठशालाओंमें वे इंग्लिश फ्रेंच सीखते हैं और युरोपियन संस्कृतिसे प्रभावित होते हैं। हिंदू जाति प्रसूत होने वाली जाति नहीं है, वह संकुचित रहती है। लज्जा और भय उनके प्रधान दुर्गुण हैं।

अर्थात, न दूसरोंसे वे मिलते जुलते हैं न किसीको कुछ सीखा ही सकते हैं; किंतु दूसरों से ही थोड़ा२ लेते जाते हैं, उनका अनुकरण करते हैं और अन्तमें जाकर उनमें मिल जाते हैं। " पानी तेरा रंग कैसा जिसमें मिलाव तैसा " यह हिंदुस्थानियों की दशा है। अन्य शब्दोंमें उसका अर्थ यह है कि, कोई भी विधर्मी या विदेशी उनको दबाकर उनपर सवारी कर सकता है।

हिंदू जाति इतनी दब्बू क्योंकर बन गई यह भी एक जानने योग्य प्रकरण है। हिंदुओंको भोली भाली जाति कहकर कोई उसे विभूषित करना चाहे तो उसमें हमे एतराज नहीं है। परन्तु भोला होनेपर भी उनका दब्बूपनका थम ही रहता है। वैदिक कालसे देव दस्युके झगडे भारतमे होते आये हैं और उनमें ये दस्यु परास्त होते रहे हैं। सुन्दर, गोरी शूरवीर, ऊंची और बल सम्पन्न आर्य जातिने धीरे२ भारतकी मूल कृष्णवर्णी जातियोंपर अधिकार जमाया। जित और जेता याने हारने और जीतने वाले इन दो वर्गोंमें वेद कालका समाज विभाजित हुआ। गोरोंका कालोंके साथ, जो

व्यवहार आज हम देखते हैं, कुछ वैसा ही आर्य-अनार्योंका सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन कालमें भारतमें शुरू हुआ। आगे चलकर जातियां उपजातियां उत्पन्न हुईं। आज तो वे ३,००० से अधिक हैं।

ब्राह्मण, क्षत्रियको, क्षत्रिय, वैश्यको और वैश्य शूद्रको तथा चारों मिलकर अन्त्यजोंको निजसे हलका मानने लगे और एक दूसरे से दबे जाने लगे। महात्मा गांधी कहते हैं कि, ये अति शूद्र याने हरीजन, उनकी दशा पशुओंसे भी बदतर है। अपने ही घरमें और अपने ही भाईके सामने वे नीच बन गये। बुद्ध धर्मने अहिंसाका प्रचार करके हिंदू प्रजाको निःसत्व बनाया और मुसलमानोंने बची सची वीरताको एक दमसे कुचल डाला और अँग्रेजोंने तो हथियार ही छीन लिये! इस प्रकार राजकीय, सामाजिक और धार्मिक सब प्रकारसे हम सर्वथा गिर गये। कालान्तरमें ईश्वर या धर्मको ही इस उच्च नीचताका कारण समझकर निजको हलका माननेमें ही हिंदू समाज संतोष मानने लगा और भारतकी कर्मण्यताकी छाती पर सदैवके लिये पहाड़ रख दिया गया। इस मानसिक दासता ने उनके शरीरको भी अब्बर बनाया। दबाने वालेको भी दबना पड़ता है; अर्थात, सारा हिन्दू समाज, हजारों वर्षों के पारस्परिक दबानसे एकदम दब्बू बन गया और संसारका शिकार बना। बीसों विदेशी जातियां हिन्दुस्थानपर आक्रमण कर सकी है। उसका वही कारण है, शिक्षा, हवा पानी और भोजन ये भी कुछ अंशमें कारण हैं; पर प्रधान कारण हमारी जाति व्यवस्था ही है। निजको हलकी मानने वाली यह हिन्दू प्रजा, विशेष कर शूद्रादि, मोरिशसमें आनेपर आर्यवत् गोरोंसे और भी दबाई

गई। ऐसे लोगोंपर कोई भी अपना सिक्का जमा सकता है। हजारोंको ईसाई धर्म ने घेरा और हजारोंको इस्लाम ने पकडा।

जहां उनका स्पर्श तो क्या छाया भी अपवित्र है, वहां उनको बचायगा कौन? ब्राह्मणों ने यह समझ रखा था कि पूजा-पाठ करवाना और दक्षिणा लेना इतना ही उनका कर्त्तव्य है। इस सम्बन्धमे किसी एक जातिको दोष देना व्यर्थ है। धर्मका मूल हेतु जो समाज कल्याण है उससे वे इतने दूर निकल गये थे कि, उनकी उन बातोंकी स्मृति भी नष्ट हो गई है। मंदिर में मूर्त्तिके पास बिजलीकी बत्ती होनेपर भी मिट्टीका चिराग रखा जाता है। कारण यही कि, लोग मूल हेतु को भूल गये और मिट्टीका चिराग, धर्मकी एक बाबत हो गई। पिछली तीन-चार पीढ़ियोंके आचार-विचार और रूढी परम्परा ही उनका धर्म हो गया है। उससे पूर्व क्या था, उसे वह नही जानते हैं। सारे हिंदू समाजकी यह दशा है। परन्तु जवाबदारीका जास्ती हिस्सा ब्राह्मणोंपर है, यह भी नहीं भूलना चाहिये; क्योंकि हिंदू समाजके वे ही आद्य नेता हैं।

हिंदुओंके धर्मान्तरमें इससे भी और खराब दृश्य यह है कि, आजका पशुतुल्य रामदास कल जोजेफ या अबदुल्ला हो जानेपर उसका सारा दब्बूपन या भोलापन निकल जाता है और वह, मनुष्य तो क्या वीर बनकर हमको ही खोंसने लगता है। यही प्रसाद, 'मोंशे' या मियाजी बनकर हमे ही उल्लू बनाने लगता है और हम लोग फिर उसकी इज्जत

करने लगते हैं !! एक समयके हिंदू बापके सुयोग्य पुत्र ओनरेबल डाक्टर लोरां, मोरिशसके एक अग्रगण्य पोलिटिशियन हैं। ऐसे और भी उदाहरण मिल सकते हैं। धर्म परिवर्तन करनेसे उनके भाव विचार और स्वभाव ही बदल जाता है और स्वयं मनुष्य होनेका उनको विश्वास होता है। धर्म बदल देनेमें ऐहिक दृष्टिसे उनका लाभ ही हुआ है; पर दुःख यह है कि, धर्म दृष्टिसे हमारी हानि हुई है और अधिक दुःख इस बातका है कि, वैसे लोग औरोंको भी प्रभावित करते हैं और हमारे घरमेंसे एकर, को खींच ले जाते हैं।

राजकीय और सामाजिक दृष्टिसे हिंदू समाज प्राचीन-कालसे आज दिन तक किस प्रकार दबता आया है, यह हमारे पाठक अब समझ गये होंगे। उनके धार्मिक विश्वासोंकी भी यही दशा हुई। सैकड़ों धर्मपुस्तक, पचासों पंथ और अनेक देवी देवताओं ने हिंदुओंको जकड मारा। जो भी कोई कुछ लिखे या कहे, कुछ साल बाद वह वेद वाक्य हो गया। बुद्धि तर्क, युक्ति, विचार, विवेक सब कुछ दब गया और अन्ध श्रद्धा इतनी बढ़ गई कि, किसी प्राचीन वस्तु या शब्द पर अविश्वास करना, मानों कि, नास्तिकताका कलंक सिरपर मढ़ा लेना हुआ। आजकल बहुत से हिन्दू विद्वानों ने हिंदुओंके इस दब्बूपन और अन्ध श्रद्धाको अपनी इज्जत ढापनेके लिये 'उदारता' यह नाम दिया है।

हिंदू समाजकी यह उदार धार्मिक मनोवृत्ति उसको कैसी
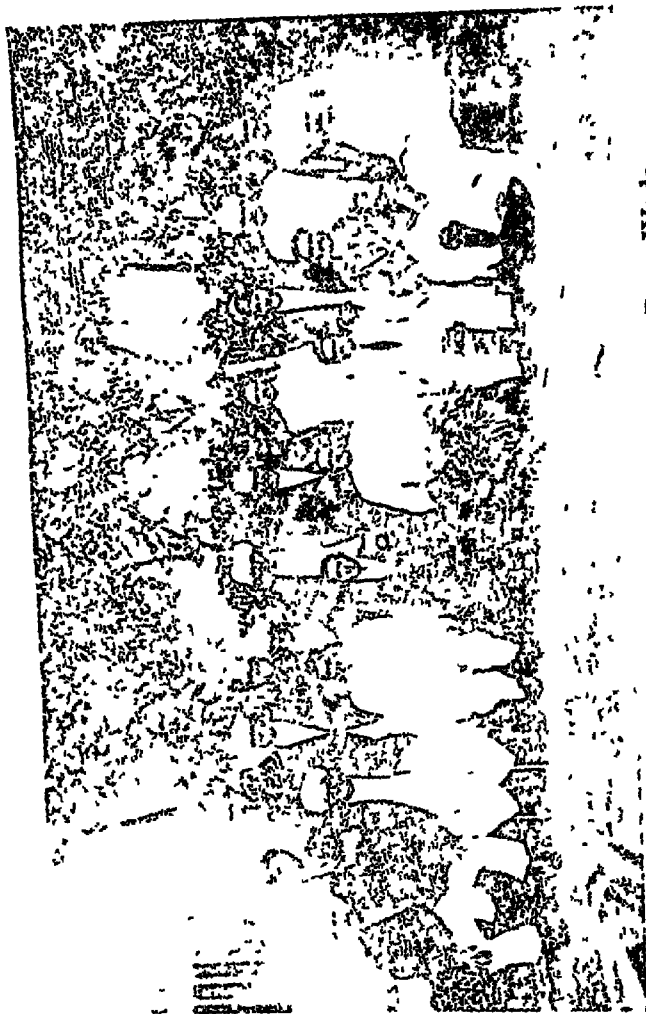
Office-bearers and Members of the Arya Rawı Weda Pracharını Sabha, Mauritius.

घ तक होती है, यह भी देखने योग्य है। उनके वेदांत तत्व ज्ञान ने उनको सिखाया है कि, ईश्वर सर्वत्र है। पत्थरमे, पानी में, मिट्टीमें, पशुमे, लोहेमे, मछलीमे, हवामें, मनुष्यमें वह सर्वत्र वास करता है। हिन्दू लोग गाय, बैल, हाथी, चूहा, गरुड, मोर, साप, आदि जानवरोंकी पूजा करते हैं। अनेक देवी देवता-ओंकी मूर्तियोंको, साधु-संतोंको और पुस्तकोंको पूजते है तथा भूत प्रेत को मानते हैं। यहां भी उन्होंने एक जलाशय को पारो-तलावका नाम दिया है। वहां जाकर पूजा स्नान करते हैं और उसका जल शिवजीपर चढाते हैं। मूर्ति न मिले तो एक साफ सुथरा पत्थर रखकर उसपर सिंदूर लगाकर सिर झुका देते हैं। साराश जिन लोगोंकी श्रद्धा किसी भी वस्तुपर बैठ जाती है, उनके लिये ईसाई के गिरजामें चीनाके पागोडेमें और मुसलमानोंके मसजिदमे ईश्वरका होना और वहां जाकर उसको पूजना क्रम प्राप्त ही है। ईसाकी अर्ध नग्न मूर्तिके सामने लोग घुटने टेककर और आंख बंद करके बैठ जाते हैं। पेरलावानका भी दर्शन करते हैं और ताजियामें मलीदा चढाते हैं। जब स्वयं अपनी खुशीसे हम लोग अन्य धर्मकी देवी-देवताओं को पूजते हैं, तब जानो कि, थोडेसे उपदेश, लालच या बहकावटसे पोप या महमद बन जानेका रास्ता ही हम सुगम कर देते हैं। हमारे भाईयोंको विधर्मी लोग अपना बना लेते हैं, तब हम जरा गुरगुराते हैं और उनको बुरीभली भी कह डालते है। परन्तु हमारे भाई ही स्वयं जब उनके लिये पुल बांध देते है, तब उनको गाली देना या हमारे भाईकी 'उदार' मूलताके गीत गाना कुछ समझमें नहीं आता। हम समझते

हैं कि, हमारा ही घर बिगडा हुआ है, दूसरोंपर दांत चबानेसे क्या लाभ? सारांश सब, तरह बने हुए दब्बूपन का कोई उपाय भी है?

उच्च जातिके लोगोंमें विचार उत्पन्न हो जाए और वे समझने लग जाय कि, हमारा ऊंचापन किस बातपर स्थित है, तो झगडा ही मिट जायगा। विद्या, धर्म, नीति और आचार के कारण ब्राह्मण बडा है। बाहुबलसे देश-जाति और धर्म-कर्मकी रक्षा करनेका भार क्षत्रियोंपर होनेसे वे बडे है। व्यापार द्वारा समाजका अर्थ पोषण करनेके लिये वैश्योंको बडप्पन मिला है। ये जातियां यदि अपना कर्तव्य नहीं करती हैं, तो वे बड़ी कैसी? सिंहकी शक्ति उसका पंजा, उसके स्नायु और उसके दांतोंमें हैं। ये गुण उसमें न हो तो वह सिंह नहीं हो सकता। न दौडने वाले घोडेको लोग, गधा ही कहेंगे। इसी प्रकार एक ब्राह्मण, पीयों (चपरासी) बने अथवा एक क्षत्रिय, ढोर चरावे तो वे बडे कैसे? इस तरह हमारी ऊंची जातियां, विचार करने लग जाय तो दूसरों को दबानेमें उनको शर्म ही लगेगी। ईश्वर ने ही उनको बडा बनाया है, इस सिद्धांतको मानने वाला ही बहुपक्ष है, इस बात को हम स्वीकार करते हैं; परंतु हम कहते हैं कि, इस धार्मिक मानताके आधार पर जो अपनी ऊंचताका समर्थन करता है, उसको सामाजिक दृष्टिसे हानि ही पहुंचती है। क्योंकि उसको जो बड़ाई प्राप्त हुई है, वह अपने निजके पुरुषार्थ अथवा विद्या बुद्धिसे मिली हुई नहीं है, किन्तु वह दूसरेसे

दान मिली हुई है। दान लेना भिखमंगेका काम है, पुरुषार्थी का नहीं। इसमें उनके आत्माभिमान और गौरवको क्षति पहुंचती है। उनकी आत्मा मलीन और मुर्दार रहती है। मोरिशसमें कहते हैं कि, उनको 'लामुर प्रोप' नहीं है। जिस जातिमेंसे यह आत्म-गौरव लुप्त हो गया है, उसकी कहीं भी क़ीमत नहीं है। सभ्य संसारमे गौरव शून्य जातिको पतित और निर्माल्यवत समझा जाता है। इंगलेण्डके लार्ड लोग (लाट साहब) ऐश्वर्य-वान पुरुष होते हैं; पर उनकी धन सम्पत्ति किसी कारणवश नष्ट हो जाय तो, वे अपनी पदवीको त्याग कर देते हैं; क्योंकि लाट पदवीकी प्रतिष्ठाके अनुकूल वे अपने जीवनको नहीं ले जा सकते है। हमारे ब्राम्हण क्षत्रिय कभी ऐसा त्याग करना स्वीकार करेंगे?

हमारी ऊँची जातियोंके लोगोंमे आत्मगौरवका भाव उत्पन्न होगा तो वे स्वयं ही मिथ्या बड़प्पनको स्वीकार नहीं करेगे। ऐसे भाव शिक्षितोंमें अब पैदा हो रहे हैं, यह खुशीकी बात है। इस भावकी शीघ्रतासे वृद्धि करनेके लिये अन्य जातियों को भी यत्न करना चाहिये। हम सब एक ही ईश्वरके संतान है और नर करनी करे तो नारायण हो जाता है इन दो महान, अनादि और संसार-सम्मत सिद्धातोंको सदैव आखके सामने रखकर निजमें आत्मगौरवका भाव उत्पन्न करने की उन्हे चेष्टा करनी चाहिये। झूठे नीच भावका त्याग कर देना चाहिये। जब हम एक ही ईश्वरकी संतान है, तब घा-

मिक दृष्टिमें एक ऊंचा और एक नीचा हो ही नहीं सकता है। हम स्वय ही निजको नीच मानने लगेंगे तो दूसरे भी हमको नीच ही समझेंगे। दुनिया भरमे चमार है और चमारों का धंधा एक उत्तम पेशा समझा जाता है। जिस पेशेसे समाजका हित होता है, वह अच्छा नहीं तो क्या भीख मांग कर खानेवालेका धंधा अच्छा है। परन्तु चमार शब्दको हमने गाली बना दिया है और क्रेग्रोल, मुसलमान भी हमे चमार कहकर हमारा तिरस्कार करते हैं।

उपरोक्त विवेचन खासकर पुरुषोंको लागू है। भारतका पुरुष वर्ग दब्बू क्यों बना, यह हमारे पाठक अब समझ ही गये होंगे। अब यह देखना है कि, पुरुषोंको दब्बू बनानेमें स्त्रियोंका भी कुछ हाथ है ? समाजका दूसरा अंग स्त्री है। स्त्रीको हम लोग अबला कहकर पुकारते हैं। इस अबलाकी सतति निर्बल और दब्बू न बने तो क्या वह बाघ बनेगी ? सतति निर्माणमे पुरुषका भी हाथ है और उसमे कुछ अंशमें पुरुषत्व होना चाहिये। परन्तु इस कुछ अंशको भी हमारी स्त्रियां— आपकी इच्छा हो तो देविया कहिये— कैसी कुचल देती है, यह भी अब थोड़ा देखना चाहिये। एक तो दस बारह वर्षकी कोमल आयुमे उसका विवाह कर दिया जाता है। अभी यह कली खुलने नहीं पाई है कि, वह माता बन जाती है। हर एक फल फूलका एक ऋतु होता है। बलात स्वाद आदि डालकर बनाई चीज बेस्वाद की होती है और उसमें सत्व नहीं होनेसे उसके भक्षणसे लाभ नहीं होता है।

यही हालत इन बाल स्त्रियों की है। उनकी संतान, वि
समयकी होनेसे वह निःसत्व, रोगी और कुरूप होती है। य
उसके शरीरकी बात है। अब उसका मन भी जरा देखिये
बचपनसे उसको यही सिखाया जाता है, पतिव्रता बनने व
वह सदैव यत्न करती रहे। पति, कैसा ही नीच, रोगी या
पापी क्यों न हो, रातो-दिन तनमनसे उसकी सेवा करना औ
मृत्यु पर्यंत उसकी दासी बनी रहना, यही उसकी सार
शिक्षाका रहस्य है। घरमें उसके माता-पिता घूसमघूसा कर
रहते हैं। "नतियाके बेटा और झाडूकी मार" का पाठ समय
समयपर घरमें हुआ करता है और बेटीको पढ़ाते हैं पाठ पति-
व्रताका! बोलने और करनेमें यह भेद हिन्दू जीवनमें प्राचीन-
कालसे चला आता है। मतलब पतिके घर आने पर यह ना-
दान छोकरी सारे कुटुम्ब की गुलाम हो जाती है। सुसराल
की वह एक लौंडी है और सास राक्षसी हो तो फिर पूछना
ही क्या? उसमें तो छोकरीको मौत है। बचपनसे ही उसके
सारे भाव दबा दिये जाते हैं। उसका जीवन एक यंत्रसा हो
जाता है। पतिके प्यारमें वह सुखी तो जरूर ही रहती होगी;
पर उसकी लातमें भी उसको आनन्द ही मानना चाहिये; क्योंकि
उसको पतिव्रता रहनेकी शिक्षा मिली है!!

कन्या पाठशालाओंके उत्सवोंमें जाकर जरा सुनिये तो आप
को यही मालूम होगा कि, आठ सालकी छोकरी पतिव्रता धर्म,
के ऊपर कैसा लंबा व्याख्यान झाडती है!! अबोध बालि-
काओं की, पातिव्रत्य धर्मकी यह 'बोलो गंगाराम' जैसी रटंती

सुनकर किसीको यह सन्देह हो जाए कि, वेदकालसे आज-दिन तक प्रति दिन घरमें और बाहर वैसी उत्तम शिक्षा मिलने पर भी क्या हिन्दू स्त्रियां पतिव्रत धर्मका पालन नहीं करती हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या? बीमारको दवा पिलाई जाती है; तन्दुरुस्त आदमी को नहीं। निर्बुद्ध लडकीको उसकी बाल्यावस्थामें ही पति-धर्मके पाठ पढानेसे क्या लाभ होता होगा, वह निश्चयसे कहना कठिन ही है; पर उसको पति सेवा यही उसका ध्येय है, यह हमेशा बता देते रहनसे पति क्या वस्तु है, यह जाननेकी जिज्ञासा उसमें अवश्य ही उत्पन्न हो जानी चाहिये। जिज्ञासा तृप्त करनेके लिये अब उसको कुछ यत्न भी करना चाहिये। प्रकृतिका वह नियम ही है, उसे ब्रह्मा भी रोक नहीं सकता है। आजकल १८--२० और २५ साल तक कईं२ कन्याएँ अविवाहित रहती हैं अर्थात, अधिक नहीं तो १२ साल तक (८ से २० साल तक) वह पति जिज्ञासामें कुढ़ती रहती है। यह एक मानसिक रोग है, जिससे वह अपनें शरीरको भी बिगाड देती है और जिज्ञासा परका काबू उठ जाय तो टेढा कदम भी कर देती है। पति ढूंढनेका उन्हें स्वातंत्र्य है ही नहीं, न उनके लिये स्त्री पुरुषों के मिश्र अवसर ही है। पतिव्रता धर्मकी शिक्षा, बाल अवस्था में पाठशालाओंमें देनेके लिये नहीं है। वैसी शिक्षा उन्हें घरमे, माता--पिताके सद्वर्तन से मिलनी चाहिये।

सारांश, मृतात्मा, नर्म और दासी भावसे दब्बू बनी हुई अपरिपक्व स्त्री की संतान कैसी निकलेगी, यह बिना कहे ही ह-

मारे पाठक समझ सकेंगे। हमारे माता--पिता हमको अपना रंग--रूप देते हैं, अपने गुण देते हैं और अवगुण भी देते हैं। अर्थात्, मौलिक उत्तरदायित्व उनपर ही रहता है। माता--पिता दब्बू हो तो उनकी औलाद भी वैसी ही होगी। उपरोक्त विवेचनसे यह सिद्ध होता है कि, हमारे पुरुषों को दब्बू बनानेमें स्त्रियोंका भी कितना हाथ है। पर यह भी ध्यान रहे कि, स्त्रियोंको पांवकी जूती समझकर उनको लवं-डी की दशामें रखनेका पाप पुरुषवर्ग ही करता आया है।

अब हमारे पाठक समझ जायेंगे कि, हमारे राजा, हमारी रूढियां, हमारा धर्म और शिक्षा तथा हमारे घरको सबों ने मिलकर हिन्दू जातिको किस तरह दबा रखा है। क्या कभी हम उठेंगे भी? अस्तु, मोरिशसकी परिस्थिति और हमारी जाति के दब्बूपनका यह संक्षिप्त वर्णन तथा उसके कारण बता कर हम अब भारतकी ओर घूमते हैं।

भारतकी स्थिति मोरिशससे सर्वथा भिन्न है। वहां एक ही वंश, एक ही धर्म, एक ही भाषा और एक ही सभ्यता विद्यमान है। गोरे, निग्रो या चीनाका उन्हें दर्शन भी नहीं होता है, जिससे वे उनको देखकर या उनके सहवासमें आकर प्रभावित हो सकें। बंबई, कलकत्ता आदि शहरोंमें, उछलने वाले दरियाकी मछली के समान कभीर उन जातियोंके लोग देखे जाते हैं और अन्य सर्वत्र उनकी बू भी नहीं आती है। यह तो विदेशी और विधर्मी जातियोंकी बात है। स्वयं हिन्दू भी एक दूसरासे अलगाव जुदावमें रहते हैं। ब्राम्हण की

गलीमें शूद्र नहीं रह सकता है और शूद्रोंके मुहल्लोंमें क्षत्रिय नहीं रहेगा। कोयरी और कुर्मी भी एक दूसरेसे पृथक रहते हैं। वे एक दूसरेके शादी ब्याहमें भी शरीक न होते हैं न मरनीमें ही। साथ खाने-पीने की बात भी नहीं करनी चाहिये। हर जाति वालोंकी पंचायत होती है और बिरादरी ही उनके लिये सारी दुनिया है। धर्म याने आचार या रूढी परम्परा विरुद्ध कार्य करना वहां मुशकिल ही हो जाता है। क्योंकि वैसा मनुष्य बिरादरीसे खारिज किया जाता है। इस प्रकार अपने समाजसे वहिष्कृत हो जानेपर अपराधी व्यक्तिके लिये न कहीं बैठनेका स्थान मिलता है न वह अपना उदर पोषण ही कर सकता है। काम करना पड़ता है, बड़ी जातियोंके मालिकोंके पास। जाएंगे कहां? मोरिशसमें गोरे, क्रेओल, चीना, मुसलमान, मद्रासी सबके पास काम मिल जाता है। एकसे नहीं बना तो दूसरेके पास, दूसरेसे नहीं बना तो तीसरे के पास, कहीं भी जाकर वह अपना निर्वाह कर सकता है। अतः यहां क्षत्रियोंका उसको डर नहीं है न हुक्का पानी बन्द होनेकी ही भीति है। कोई भी धार्मिक या सामाजिक जोरदार बंधनका पाबन्द रहनेकी आवश्यकता यहां न रहनेसे हिन्दू प्रजा, जहाँ खुशी वहां जानेमें और मनमाना काम करनेमें स्वतंत्र है। इस आर्थिक स्वातन्त्र्य ने हिंदुओंको धार्मिक दृष्टिसे बिगाड़ा है और सामाजिक दृष्टिसे सुधारा है।

मोरिशस और भारत की स्थितिमें क्या फरक है यह हमारे पाठक उपरोक्त वर्णनसे अब समझ ही जायँगे और यह

Kalı Ammen temple of Bel Vıllage Photo by the Kınd-
ness of Mr N. Veerapın retıred cıvıl servant

भी समझेंगे कि जिस जगतव्यापी युरोपियन सभ्यताने भारतको भी नहीं छोड़ा है (सिनेमा देखने से ही हमारे कथनकी सत्यताका अनुभव हो सकता है।) तब सामान्यतः अशिक्षित और गंवार कृषक प्रजाको, चारों ओर से घेरा डालकर बैठी हुई सभ्यताके साथ, विपरीत स्थितिमें टक्कर देते हुए अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिये मोरिशसको कितना भारी यत्न करना चाहिये ?

यह सब लिख जानेपर और फिर उसे एक बार पढ़नेपर एक नया ही प्रश्न किन्तु एक शंका मनमें उठ आती है। शंका यह है कि, हमने जो कुछ लिखा है भला, वैसा कभी होगा ? हिन्दू लोग गतानुगतिक रूढियोंको जूंकी तरह चिपके रहते हैं। वही उनका धर्म हो जाता है। दुनिया भरका किसानी समाज कभी अधिक प्रमाणमें अनपढ होनेसे अपने पुराने रीति रिवाजोंको पकडा रहता है। भारतसे १०० वर्ष पूर्व आये हुए किसानोंकी बात ही क्या करनी है ? उनकी खेती, उनके पशु, उनकी झोंपडी, उनके बाल बच्चे उनके बाबाजी और चोनाकी दूकान यही उनकी दुनिया है। मेहनत करना, पेट भरना और प्रजोत्पादन करना ये उनके मुख्य व्यवसाय हैं। इनके सिवाय बाहर क्या हो रहा है, इससे वे अपरिचित ही रहते हैं। राज्य, धर्म, समाज, शिक्षा, व्यापार, उद्यम, कला आदिमें उनकी गति न होनेसे उन विषयोंको वे समझ ही नहीं सकते हैं। हमारे पुस्तकको पढने वाले और समझनेवाले कितने मिलेंगे ? दो लाखमेंसे

दो हजार याने प्रति सैकड़ा एक ही पाठक हमें मिल जाय तो हम हमारा अहोभाग्य समझेंगे। मुर्गीने अण्डा कहां दिया, गायका दूध क्यों घटा, पांवमें कांटा घुस गया बत्तीमें पेट्रोल नहीं है, आज क्या पका है आदि बातें घरमें होती है और चीनाकी दूकानमें आनेपर (वही उनका अड्डा है) गन्ना सूख गया बेंगन यह दाममें बिका, पोमदामूर (टमाटो) सड गया, साहबने दाम घटा दिया, चीनाने लू (मिन्ट) बढ़ा दिया, उसने ऐसा कहा और हमने वैसा कहा तथा इधर उधरकी झगड़े बखेड़े ये ही उनके चर्चाके विषय होते हैं। उनका जीवन, पीढ़ी दर पीढ़ीमें इसी ढांचेका चला आता है और वे उसमें सुखी हैं। इन जीवनमें परिवर्त्तन करनेको कहना कि, मानों उनको गाली देना है, उनमें भ्रम पैदा करना है और उनके सुख शान्तिका भंग करना है। जितना पुराना इतना सोना यह उनकी अटल श्रद्धा है। यदि उनको कोई नई बातके वास्ते कहो तो वे झट बोल देते हैं "का हमार सब पुरनिया बुरबक रहल ? तू अब हमके सिखइबे ? हम सब हमार द्वारीपर करब। हमके घरद्वार नहीं बा, जो हम शिवालामें जाकर शादी करब ?" अब करो सिर फोडी उनके साथ। यह सब देखकर जी उदास हो जाता है और भविष्य कालके लिये निराशा उत्पन्न हो आती है। जब आदमी निराश हो जाता है तब ही वह क्रान्तिकी ओर झुकता है।

## क्रांति करो।

मोरिशसमें यह धार्मिक क्रान्ति हमारे विचारमें होनी ही चाहिये। क्रांतिके नामसे डरनेकी कोई आवश्यक्ता नहीं। क्रांतिको फ्रेंच भाषामें 'रेवोलिशो' कहते हैं। यूरपकी धार्मिक क्रांतियोंमें खून, अत्याचार, रक्तपात, लूट मार, आग, नाश सब कुछ हुआ है और उसीसे क्रांतिका नाम सुनकर रोमांच खडे हो जाते हैं। पर हिन्दू लोगोंने ऐसी क्रांतियां कभी नहीं की है। उनकी क्रांतियोंमें, इस लिये मरने मारनेका प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है। हिन्दू लोगोंका खून ठंडा है, जिससे उनसे अत्याचार नहीं होते हैं, युरोपियन, चीना, मुसलमानादि जातियोंका खून बहुत अधिक गरम होनेसे थोडीसी बातपर वे ज्वाला फेंकने लगते हैं। बहुतसे लोग उसका अर्थ यह लगाते हैं कि, युरोपियन आदि जातियां सजीव होनेसे वे अपने विश्वास और सिद्धांतके लिये कट मरती हैं और हिन्दू जाति निर्जीव होनेसे भारीसे भारी अपमान या अधर्म और अनीतिके सामने भी नीचे गरदन डालकर वह सब सह लेती है। कुछ भी हो, यह बात सत्य है कि, हिन्दुओंने क्रांति करके अन्य जातियोंके समान कभी अत्याचार नहीं किये हैं। इस लिये हम कहते हैं कि, हिंदू-क्रांतिसे भय करनेकी कोई जरूरत नहीं है।

हिंदू लोग बहुत प्राचीन कालसे क्रांति करते आये हैं। वैदिक धर्मके विरुद्ध पहिली क्रांति भगवान बुद्धने की। बुद्धदेवने वेदोंको ताकमें रख दिया और ईश्वरको पृथ्वीपर

उतरनेकी मनाही की। बादमें शंकराचार्य ने लगभग १६०० वर्ष के उपरांत बुद्ध धर्मको भारतसे बाहर निकाल दिया और वर्तमान हिंदू धर्मकी सन् ८०० में स्थापना की। यह दूसरी क्रांति थी। ७०० वर्ष के पश्चात् गुरु नानक ने शंकराचार्यके हिंदू धर्मके विरुद्ध बलवा उठाया। वेद, पुराण, मूर्त्तियां जातिपाति आदि उड़ा दिया और सिख धर्मकी सृष्टि की, जो आगे चलकर एक प्रतापी दल सिद्ध हुआ और उनका राज्य भी स्थापित हुआ। फिर करीब ३०० वर्ष बाद स्वामी दयानन्द ने प्रचलित हिंदू धर्मपर हथियार चला कर केवल वेद ग्रन्थ ही ईश्वरीय ज्ञान होने की घोषणा की। इन सब क्रान्तियोंमें एक मक्खी भी नहीं मरी थी।

ये क्रान्तियां क्यों हुईं यह अब देखना चाहिये; ताकि मोरिशसमें उसकी कितनी आवश्यकता है, यह समझनेमें सुगमता प्राप्त होगी। इतना तो सब लोग जानते हैं कि, वेद सर्व प्रथम पुस्तक है। उसके बाद उपनिषद हुए। उनमें जीव, आत्मा, परमात्मा, जन्म, मृत्यु, इहलोक परलोक, पाप पुण्य आदि विषयोंपर वार्तालाप है और वही हिन्दुओंका वेदान्त या तत्वज्ञान है। जब आत्मा और परमात्माकी खोज होने लगी तब वैदिक यज्ञ याग़ादि कर्मोंपरसे लोगोंकी श्रद्धा घटने लगी। यज्ञ करना और उसमें पशुओंका बलि देना, इतना करनेसे मोक्ष प्राप्ति हो जाती है, ऐसी उस समय धारणा थी। बुद्ध देवने दोनोंको फटकारा उन्होंने वैदिक यज्ञ विधिका भी खंडन किया और उपनिषदोंके अप्राप्य परमात्माकी शोध

करना ही बन्दकर डाला। बुद्ध ग्रंथोंमें ईश्वरका नाम तक नहीं है। बुद्ध ने अपना नया धर्म केवल सद्व्यवहार पर निर्भर रखा और शायद इसी वास्ते यूरपमें उसको इस समय अनुयायी मिलने लगे हैं। बुद्ध महात्मा आर्य वंशका नहीं था और उसका झगड़ा आर्योंके स्थापित धर्म के साथ था, यह भी ध्यानमें रखना चाहिये। उसका अर्थ यह है कि, आर्योंका दर्जा और हक कदाचित बुद्ध को नहीं प्राप्त हुए थे। लिखा है कि, सुअरका मांस बहुत खानेसे अपचनमें उसकी मृत्यु हुई थी। इसी बुद्ध देव को हिंदू लोग अवतार मानते हैं। उपरोक्त कथन अतीव संक्षिप्त है, तो भी बुद्ध भगवान ने वैदिक धर्मके सामने क्यों विप्लव मचाया था, उस बातपर उससे कुछ प्रकाश पड सकता है। लगभग १६०० वर्ष, बुद्ध धर्म, हिंदुस्थान में रहा और चीन, जापान, तिब्बट, बर्मा, सिलोन, स्याम आदि देशोंमें भी वह भारतीय प्रचारकों द्वारा फैल गया; पर मद्रास प्रान्तीय शंकराचार्य ने उसकी जन्म भूमि भारतसे ही सन ८०० में उसको जड़ मूल सहित उखाडकर फेंक दिया और जो कुछ उसके अवशेष विहारमें रह गये थे, उनको मुसलमानों ने नेस्तनाबूद कर दिया। बुद्ध धर्म ने लोगों को नीति सिखाई, पर प्रतिकार याने विरोध करना नहीं बतलाया, जिससे वह एक भिक्षु मंडलीका पेशा बन गया और अन्तमें भीख मांगने वालों के साथ, जो सुलूक होना चाहिये, वही बुद्ध धर्मके साथ हुआ। महात्मा गांधी के सत्याग्रहका उदाहरण अभी तक ताजा है। शंकराचार्य ने अपने 'माया' सिद्धांत द्वारा (जग-

माया है, झूठ है।) बुद्धके "निर्वाण" सिद्धांतको समाधि दी; पर हिंदुओंपर उसका प्रभाव कायम रह गया और असली वैदिक धर्मका पुनर्जीवन वे भी नहीं कर सके।

शंकराचार्यके नये हिन्दू धर्मकी स्थापनाके जो कि आजकल प्रचलित है, २०० वर्ष उपरात मुसलमानोंके आक्रमण भारतमें शुरू हुए। एक हजार वर्ष तक ये आक्रमण होते रहे और जिनमे आर्यावर्त्तकी होली हो गई। हिन्दुस्थानके इस सिरेसे उस सिरे तक हजारों मंदिर छिन्न भिन्न हो गये, सैकड़ों राजवंश धूलिमें मिल गये, लाखों युवतिया और राजकन्यायें भ्रष्ट की गई और बेची गई तथा अगणित हिन्दुओंकी कतल हुई। धन सम्पदा कितनी गई कौन हिसाब जानता है। एक हजार वर्ष तक यही क्रम जारी रहा। ईश्वरकी महती कृपा हुई और सभ्य अंग्रेज जाति को मानों कि परमात्मा ने ही भारत भेजा और विगत सौ साल से वे अत्याचार बंद हो गये और हिंदुस्थान को शांति प्रदान हुई। पहिले ५०० वर्षोंमे हिन्दुओंपर अत्याचारोंका गजब हो गया था, हाहाकारके सिवाय दूसरी ध्वनि नहीं सुनाई देती थी। और जब उसकी पराकाष्ठा हो गई, तब शांतिप्रिय सिखों ने भी इस्लाम के विरुद्ध खुल्लम खुल्ला बलवा खड़ा किया और मुसलमानी राज्यको पंजाबमे दफना दिया। सिखोंकी क्रांतिका यही कारण था कि, मुसलमानोंके अत्याचार परम सीमा को पहुंच गये थे और बुद्ध--शंकर मिश्रित हिंदू धर्म मे बचाने की शक्ति नहीं रही थी। सौ साल बाद बंबई प्रांत के मराठों ने कुछ वैसी ही, पर धार्मिक नहीं क्रांति की।

उत्तरमें सिख और दक्षिणमें मराठा इन दो जातियोंका उदय हो गया था कि, दूर पश्चिमसे अंग्रेज आ धमके और सौ सालके अन्दर वे सारे हिन्दुस्थानके—दो हजार मील लंबा और लगभग उतना ही चौडा देश—मालिक बन बैठे।

अंग्रेजोंकी राज्य पद्धति ऐसी थी कि, जनताने उसका सप्रेम स्वीकार किया। पाठशालाएं खुल गईं, पक्षपात रहित न्याय होने लगा, धर्म कर्मोंमे स्वातंत्र्य मिला, डाकू लुटेरोंसे भारत निष्कंटक हुआ, विदेशियोंके आक्रमण बन्द हुए, आपसकी लडाईयां जाती रही, लोगोंको शान्ति मिली, खेती व्यापार चलने लगा, दुकाल जाते रहे, कला कौशल्य बढने लगा, समाज संशोधन होने लगा और ज्ञान फैलने लगा। भारतपर जानो कि, एक नए सूर्य उदय हुआ था। अन्ध विश्वासके स्थानपर तर्क, बुद्धि, युक्ति और प्रमाणपर अधिष्ठित अंग्रेजी विद्याके तेजसे आरम्भमे सुशिक्षित भारतियोंकी आंखें धुंधलाई गईं। बंगालमें धडा धड ईसाई बन गए। स्वदेश और स्वधर्म प्रति लोगोंमे तिरस्कारके भाव उत्पन्न हुए। राजा राम मोहनराय अंग्रेजी समयसे पहले हिन्दु समाज सुधारक थे। हिन्दुओंके लिये यह एक धर्म सकट ही था। उसका परिहार, तलवार या बन्दूकसे नहीं हो सकता था। ज्ञान, निर्भयता, शील, सच्चाई, विश्वास, श्रद्धा और त्यागकी आवश्यकता थी। इसी संयोगपर स्वामी दयानंद पिछली शताब्दीमें मैदानमें उतरे। केवल हिन्दुओं के ही नहीं किन्तु संसारके समस्त धर्म, पंथ, संप्रदाय, देवी

देवता और धर्म-पुस्तकोंके विरुद्ध उन्होंने अपनी आवाज उठाई और केवल वेद ही एक सच्चा ईश्वरीय शब्द होनेका दावा किया । वेद धर्मका पुनः उत्थान करनेके लिये ही स्वामीजी ने यह क्रांति की । धर्मका मुख्य उद्देश्य यही है और होना भी चाहिये कि, उससे समाजका हित हो । जब समाजका कल्याण करनेकी उसकी शक्ति खोया हो जाती है, तब ही मार्ग दर्शक उत्पन्न होते हैं और धार्मिक क्रांति कर देते हैं । हिन्दू लोग हमेशा अपने बाप-दादाओंपर दृष्टि रखकर अपने जीवन व्यतीत करते हैं । जो उन्होंने किया है वैसा करनेमे भी वे हिचकते हैं और जो उन्होंने नहीं किया है, वह सुननेको भी तैयार नहीं रहते हैं । अब वे समझेंगे कि, एक बार नहीं चार बार हमारे पुरखाओंने अपने समयके धर्म को ठुकराया है और देश जातिको लाभ पहुंचाया है । मोरिशसमें हिन्दू धर्मकी क्या स्थिति है उसका वर्णन हमने किया ही है, जिससे विदित होता है कि, उससे अब यहा काम चलेगा नहीं अर्थात यहां भी क्रांतिकी आवश्यकता है और उसमें कुछ पाप भी नहीं है । इस बातको सिद्ध करनेके लिये ही हमने भारतकी धार्मिक क्रांतियोंके सम्बन्धमें थोड़ा सा लिखा है ।

दूसरी बात यह है कि, इस धार्मिक क्रांतिके लिये मोरिशस बहुत ठीक भूमि है । इस सम्बन्धमें हिन्दुस्थानकी परिस्थिति कितनी विकट है, यह हमने ऊपर बतायी है । यहां वह बात नहीं है । इस टापू एक हिन्दू, दूसरे हिन्दूका

Mr Maganlal R. Desai, Merchant and Ex-President of the Kathiawad Society.

मोहताज नहीं है । ऐसे क्रांतिकारी हिन्दुओंसे आर्थिक हानि नहीं पहुंच सकती है और अहिन्दुओंके साथ तो उसका कुछ संबंध ही नहीं है । हां, कोई गरीब मनुष्य, सत्य पर अप्रिय बातें लोगोंके सामने रखनेका साहस करे तो संभव है कि, कभी उसको लात घूसा खाना पडे। परन्तु क्रांतिकारी में हम समझते हैं कि, कमसे कम उतनी हिम्मत तो जरूर ही होनी चाहिये । दो चार थपड़ोंसे यदि समाजका कल्याण होने की संभावना हो तो वे खा लेनेमें ही क्रांतिकारीकी खरी परीक्षा है ।

धर्म-क्रांति करनेमें ईसाने अपनी जान गँवाई. महम्मद भागकर बच गया, जर्मनीके लूथरको छुपते छिपाते नाकों दम हो गया और दयानंदकी बेइज्जतीमें कुछ बाकी न रहा । इस समय किसीको जान खोनेका या देश त्याग करनेका कुछ भय नहीं है । दो चार साल हल्ला गुल्ला होता रहेगा और फिर चुप । खासकर सात्विक और शांत प्रकृतिके हिन्दू इससे आगे नहीं बढ़ते हैं ।

खुद लेखकका उदाहरण जनताके सन्मुख है । जिस सत्य के लिये लेखकने लात घूसा खाया था, उस सत्यको लोग अब खुल्लम खुल्ला अपना रहे हैं । क्रांतिकारीके साथ संभवतः ऐसी ही बितेगी, पर वह तोफान नरम पडनेपर उनके सिद्धान्तों की विजय होगी और उसका नाम, समाजका एक उपकार कर्त्ता की हैसियतसे इतिहासमें दीर्घकाल तक चमकता रहेगा ।

समाजके झटपट नेता बनने वालोंसे यह कार्य नहीं होगा। वे लोक-प्रियता चाहते हैं। क्रांतिकारीके लिये जीवन पर्यंत अपमान, निन्दा और गाली गलौच ही है। उसकी मृत्युके बाद उसकी स्मृतिमें विजय स्तंभ खडे किये जाएंगे; पर उमर भर तो वह साला और दोगला ही बना रहेगा!! डाक्टर बेरिस्टरोंसे यह काम नहीं होगा; पर सरकारी नौकर, इस कार्यके लिये योग्य मनुष्य हैं; क्योंकि पेटके लिये वे निश्चिंत हैं। त्याग निडरता, विद्या, शील और श्रद्धावान व्यक्ति चाहे गरीब ही क्यों न हो, ऐसी क्रांति कर सकता है। कलकतिया हो तो और अच्छा। कोई क्रांतिकारी मोरिशसमें पैदा होगा?

आर्यसमाज क्रांतिकारी संस्था है; परन्तु मोरिशसमें उससे यथेष्ट लाभ होने की उतनी आशा नहीं है। हिन्दुस्थान की नकल यहां भी वैसी ही हूबहू की जाती है। भिन्न सभ्यता के उपनिवेशों की परिस्थितिको ध्यान में रखकर अपने सिद्धांत और कर्मकाड आदि में जबतक संशोधन नहीं होगा तबतक आर्यसामाजिक प्रचार से वर्तमान प्रवाहको रोकनेकी आशा रखना व्यर्थ ही है। निःसंदेह उसने बहुत कुछ किया है; परन्तु उसकी प्रगति अब मंदसी मालूम होती है। हमारी अनुमति में उसके कार्यका स्वरूप इस समय हिंदुओंके शरीरमें सुई द्वारा औषधि डालनेके समान है। इससे कुछ और समय तक हिन्दू धर्म अपना सिर जहां के तहां रख सकेगा; सुईका उपयोग (इजक्शन) एक अन्तिम उपाय है। उससे रोग हटता नहीं, किंतु कुछ अवधि के लिये दब जाता है।

हम हमारे अनुभव से कह सकते हैं कि, मोरिशसकी हिन्दू प्रजा, भारतकी अपेक्षा अधिक चतुर, अधिक जागृत, अधिक स्वतंत्र, अधिक संगठित और अधिक सुखी है। समझाने पर वे जरूर समझेंगे, बाबाजी, बाबूजी (ब्राम्हण, क्षत्रिय) जैसे उनके जन्मसिद्ध, प्रतिष्ठित तथा धनाढ्य नेता, उनमें धार्मिक और सामाजिक सुधार करा सकते हैं। और १०० वर्ष के बाद यहां भी सूरबों जैसी स्थिति हो जाय तो बाबाजी-बाबूजीको पूछेगा कौन ? उनका नाम ही मिट जायगा। उनकी इज्जत उन्हींके हाथ मे है। किंतु उनके अस्तित्व का ही प्रश्न है। हिंदू समाज नहीं तो वे भी नहीं परमार्थ, परोपकार, पाप पुण्य आदि ढीली दुर्बोध और लंबी चौडी बातें तो हम करते ही नहीं परंतु निजका स्वार्थ, गौरव और अभिमान टिका रखनेके वास्ते तो हमारी उच्च जातियां कुछ हाथ पांव नहीं हिलायेंगी।

हिंदू समाजपर लिखते हुए हम क्रांतिपर पुनः आ पहुंचे। क्रांति यह एक ऐसा शब्द है कि, उसके उच्चारणसे-चाहे वह हिंदू-क्रांति ही क्यों न हो--दिल कांप उठता है और चित्त विचलित हो जाता है। विषयको छोड कर वह इधर उधर भटकने लगता है। इस लिये हमारी दृष्टि स्थिर नहीं होनेसे हम हमारी आंख यहां मूंद देते हैं। दूसरे पन्ने पर 'पुस्तक लिखनेका उद्देश्य' इस अध्याय मे हमने दोनों आंखे खोलकर हिन्दू समाजका निरीक्षण किया है। पाठक कृपा करके उसे पढ़े।

# पुस्तक लिखनेका उद्देश्य।

चार सालकी बात है कि, एक दिन शहरमें विष्णुक्षेत्र' के मंदिरमे हमारे मित्र स्व० पं० रामअवधजी का भाषण हम सुन रहे थे। संयोगसे विष्णुक्षेत्र मंदिरका कुछ पूर्व इतिहास भी आपके भाषणमें आ गया था। उनका वह समाचार हमको बहुत रोचक लगा। हमारे मगजमें वह बात रह गई और हम सोचने लगे कि, ढूंढनेसे कदाचित और मंदिरोंके इतिहासमें भी कुछ ऐसी ही रोचक बातें मिल सकेंगी। इधर उधर सुनने पूछने पर हमारी जिज्ञासा बढने लगी और वसी एक पुस्तक लिखने की कल्पना ने हममे घर कर लिया। वसी प्रकार सोसायटियोंमें भी हमारी नाक घुसने लगी। उनकी सुगंध ने हमें और भी उत्तेजित किया और ज्यों २ हम सामग्री जुटाने लगे त्यों २ यहां के हिंदुओं के हिंदू-धर्मका चित्र हमारी आखके सामने शनैः शनैः प्रकट होने लगा।

पिछले पचास सालकी गति तो लेखक ने अपनी आंखों देखी है। आरंभमें "मोरिशसके हिन्दू मंदिर और संस्था" यह नाम हमने हमारी पुस्तक को देना निश्चित किया था। हमारा लेखन बढता गया, धर्म--कर्म सम्बन्धकी नई बातोंपर प्रकाश आने लगा, जिससे हिन्दू समाजके अंतरंगमें हमको प्रवेश करना पडा। प्राचीन और अर्वाचीन हिंदू धर्म एवं समाजका निरीक्षण करते हुए उसके भविष्यके विचार भी उत्पन्न होने लगे। उस पर भी कुछ लिखना पड़ा।

सब कुछ लिख कर समाप्त करनेके बाद और फिर उसे

दुबारा पढ़ने पर मालूम हुआ कि, पुस्तक का उपरोक्त नाम एक तो लंबा है और उससे पुस्तक में किये हुए विवेचन का यथार्थ बोध भी नहीं हो सकता है। इस लिये पुस्तक को हमने "हिन्दू मोरिशस" यह नाम दिया है। इससे हमारे विचार में पुस्तक में क्या है, इस बात का पता लग सकेगा।

सन् १८३५ से सन् १८६० तक याने पहले २५ साल तक कलकतियाओं का कोई अच्छा मंदिर नहीं था। कथा-भागवत तथा विवाह संस्कारादि धर्म--कर्म के पालन के लिये जो सामाजिक स्थिति होनी चाहिये वह उस समय तक पहिली पीढी को प्राप्त नहीं हुई थी। उस समय रेलगाडी, मोटर आदि साधन वाहन नहीं थे, सडके अच्छी नहीं थीं, जंगल बहुत था और काम भी कड़ा था और कोठी वालोंकी सख्ती भी अधिक थी। किसी कार्यके लिये १५--२० मील चल कर आना जाना और चार बजे काम पर हाजिर होना, हो ही नहीं सकता था। उस समय स्त्रियोंका प्रमाण सौ पुरुषों में १५--२० से अधिक नहीं था। ( विशेष विवरण के लिये हमारा इतिहास देखिये।)

इस समय तो अर्थात ७५ साल के बाद विवाह, कथा--भागवत, अंत्येष्टि, प्रचार, श्राद्धभोज, व्याख्यानोपदेश, उत्सव, सभा आदियोंकी इतनी भरमार है कि, रविवार के दिन लोगोंको खुजलाने की भी फुरसत नहीं मिलती है। व्याख्यानों और लेखों में इस बात पर जोर दिया जाता है कि, डाक्टर बारिष्टर हम लोग हो गये हैं और "त्यतिष्ठत् दशांगुलम्" हम

वेद वाक्य के अनुसार, हमारे लिये स्वर्ग अब फकत १० अंगुली ऊंचा रह गया है। इसमे कोई सन्देह नहीं कि, ये वकील डाक्टर आदि भारतीय समाजके भूषण हैं; पर ये भी ध्यान रहे कि, ये वर्ग धनोत्पादक नहीं है; किन्तु दूसरोंकी कमाई पर अपनी जीविका करने वाला वर्ग है। कुदाड़ी से कलम तक हमने एक ही झड़पमें तय कर डाला है; पर बीचका रास्ता खाली ही पड़ा है। जिसको सर्वांगीण उन्नति कहते हैं, उससे हम लोग अभी बहुत दूर हैं। शिल्प, कला, कौशल्य, व्यापार, साहित्य, विज्ञान, वैभव, खेल, राजकारण, संगठन, स्वास्थ्य आदि मे हम बहुत ही पीछे हैं।

मोरिशसमे हमारी सौ वर्षकी आयु अब हो गई है। "शतं-जीवेत" यह हमारे ब्राम्हणोंका आशीर्वाद सच्चा हुआ है।

इस सौ वर्षकी अवधि को तीन हिस्सों में बांट दिया जाय तो पहिले हिस्से को "अंधेरी रात" (dark night) यह नाम देना होगा। दूसरे हिस्से को हम उषा काल याने dawn यह नाम हम दे सकते हैं और तीसरा हिस्सा जिसका आरम्भ बारिष्टर मणिलाल जी के आगमन से होता है, "सूर्योदय" अर्थात rising of the sun के नाम से पहचाना जा सकता है। इस काल-विभागों के संबंधमे हमने अन्यत्र लिखा ही है। माध्यान्ह समय अभी दूर है और जिसके लिये हमे तैयारी करनी चाहिये।

फ्रेंच शासन-समयसे लेकर पिछले ५०-६० वर्ष तक मोरिशसमें मद्राजियोंकी चलती रही है। उनकी संख्या अल्प होती हुई भी उनके १०--१५ अच्छे मंदिर हैं। उनके कारीगर भी थे। वे व्यापारी और कोठी वाले भी थे। वे माध्यान्ह स-मय तक नहीं पहुंच सके। उनके सूर्योदयके बाद ही उनको बादलोंने घेरा। जो उनमें लिख पढ जाते थे, वे ईसाई बन जाते थे और अभी तक यह बात कमी जास्ती प्रमाणमें उनमें पाई जाती है। उनकी खेती और व्यापार उनके हाथसे इस समय निकल गया है और उनका स्थान मुसलमानोंने लिया है।

इस समय चीनाओंका आक्रमण शुरू है और यदि मोरिशसकी ऐसी राज्य घटना रही तो बहुत संभव है कि, एक दिन उनका ही सामाजिक राज्य यहां हो जाएगा। यह उद्योगी, बुद्धिमान, कष्टालु और संगठित प्रजा है। हिन्दू मुसलमानके समान ये लोग व्यापार धंधा या रहन सहन में धार्मिक विधि-निषेध नहीं पालते हैं। जो जिसको चाहिये वह उनसे मिल सकता है। वे व्यापारी उद्यमी और धन सपन्न क्यों न हो ?

मद्राजी प्रजा इस अवनतिको क्यों पहुंची उसके कारणों का विचार होना चाहिये। बहुतसे मद्राजी, दो पैसे कमाने पर संपत्तिको बेच बाच करके यहांसे चले जाते थे। जिससे धन संग्रहकी परम्परा टूट जानेसे पैसेके पास पैसा नहीं आता था
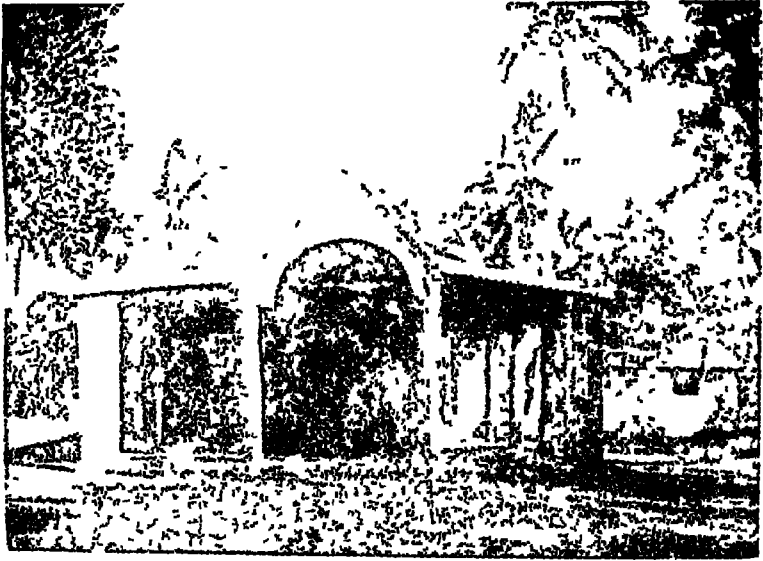
Droupadee Ammen alias Chinatamboo temple of Terre Rouge Photo by the kindness of Mr Vallabhbhai G Naik of Port louis

और वे धनाढ्य नहीं होते थे। यहाका धर्म और रीति रिवाज उनको पसंद नहीं थे अपने साथ वे बाल बच्चोंको नहीं लाते थे, जिससे यहांकी स्त्रियोंके साथ उनको गुजारा करना पडता हो तो कोई आश्चर्य नहीं। इससे उनको धर्म भी गँवाना पडता होगा और उनमेंसे शिक्षित तो अपनी शिक्षाके कारण प्रभु ईसाको ही अपना त्राता समझते होंगे।

दूसरा कारण, उनकी अवनतिका यह है कि, यहां मुसलमान व्यापारियोंका भारतसे आगमन। ६० वर्ष पूर्व ये गुजरात कच्छसे यहा आए और कपडे चावलमें उन्होंने पहले हाथ डाला। मुसलमानोंमें कट्टरता है। स्त्रीके लिये भी वे पर धर्ममें नहीं जाएंगे किन्तु उसको ही मुसलमान बनाकर बीबी बना देते हैं। पैसा कमाकर देश भाग जानेकी उनको इतनी आवश्यता नहीं। वे यहां ही ऐश आरामकर सकते हैं। उन की व्यापारी पेढिया बराबर चल सकती है। वे लखपति बने और अब भी हैं। पोर्ट लुइस शहरमें, जो घर मकान हैं, उनमेसे अधिकांशके मालिक मुसलमान ही हैं और खाद्य पदार्थ का व्यापार उनका ही है। इतना कहनेसे उनकी सांपत्तिक स्थितिका पता लग सकता है। व्यापारी कौशल्य और खास कर साहसमे चढे बढे हैं। उनकी प्रतियोगितामें मद्राजी धीरे धीरे पीछे हटने लगे और वे आजकी स्थितिको प्राप्त हुए। हमारी समझमें यही अधिक बलवान कारण था कि, मद्राजी का पाव इस व्यपारी युद्धमे फिसल गया और वे रणक्षेत्रसे बाहर हो गए। यहांका धर्म और सभ्यता तथा भारतीय मु-

सलमानोंका व्यापारी साहस इस चक्कीके बीचमें मद्राजी पिसे गए ।

इतिहास इसी वास्ते पढ़ा जाता है कि, भूत कालके ज्ञानसे वर्त्तमान और भविष्य कालके लिये मनुष्य सचेत होकर निजको वही ठोकरें न लगा लेनेमें हमेशा तत्पर रहे। हमारे भाई मद्राजी प्रजाका उदाहरण हमारे सामने है। मुसलमानों का भी है और चीनाओंको हम देख ही रहे हैं। उनसे हमें शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

हमने कहा है कि, हमारा यह सूर्योदय है। उसके किरणोंमे अब तक तेजी और गरमी नहीं आई है। इस बात को हम अधिक स्पष्ट करना चाहते हैं। झूठी घमण्डसे गाल बजानेकी आदत छोड़कर सामने मैदानमें आनेपर ही किसी की शक्तीका पता लग जाता है। इतना बीघा जमीनके मालिक, संख्यामे सबसे अधिक, ऋषि मुनियोंकी संतान और डाक्टर बेरिस्टरोंसे सुसज्जित हमारी जातिको अनायाससे मोरिशसको अपनी प्रगतिका दर्शन करा देनेका एक अवसर पिछले साल प्राप्त हुआ था वह अवसर भारतीय प्रवास शताब्दी था। यहां गोरोंके खेतोंपर काम करनेके लिये आये हुए हिन्दुस्थानियोंको पिछले साल सौ वर्ष पूरे हो गए। उसके उपलक्षमें यह शताब्दी उत्सव मनाया गया था। उसके चार मास पूर्व ही फ्रेंच गवर्नर लाबुरदोनेकी स्थापित राजधानी पोर्ट लुइस शहरका द्विशताब्दी महोत्सव २४ दिन तक यहां

माननीय रामखेलावन बुधन

माननीय राजकुमार गजाधर

मनाया गया था। उसमें, जो कुछ था उसकी हमारी स्मृति अब तक ताजी है। यह उत्सव जारी था कि, भारतीय शताब्दीका आन्दोलन होने लगा था। महात्मा गांधी तथा श्रीमती सरोजिनी आदियोंकी सलाह थी कि, शताब्दी दिन, उत्सवके रूपमें मनानेकी कोई आवश्यकता नहीं है; किन्तु उस विषयका एक पुस्तक लिखा जाय। यहांके प्रतिष्ठित लोगों का भी ऐसा ही विचार था कि, भारतीय प्रवास शताब्दीको उत्सवके रूपमें मनानेकी, मोरिशसकी आर्थिक स्थितिके कारण; जरूरत नहीं है। श्री० टी० के० स्वामीनाथनजीको उस अर्थका तार भी भेजा गया था। परन्तु नवशिक्षित लोग इस विचारसे सहमत नहीं हुए और उन्होंने शताब्दी तिथि मनाने का आग्रह किया। उन्होंने स्वामीनाथनजीको बुलाया और शताब्दी-उत्सव किया। अन्य किसी भी उपनिवेशोंमें प्रवासी भारतियोंने अभी तक सौ साल पूरे नहीं किये है। पहले पहल वे यहां ही आये और बाद दूसरी कोलनीमें गये। पहला मान मोरिशसको ही मिला है। इस दृष्टिसे देखा जाय तो शताब्दी मनाने वाले दलको सहानुभूतिके भावसे देखना अनुचित नहीं होगा।

मत भेद हुआ था, परन्तु श्री० रामखिलावन बूधन बैरिस्टरजीने अपने अन्य बुद्धिजीवी मित्रोंके साथ इस आन्दोलनका नेतृत्व स्वीकारा और उसकी पूर्ति की। कितना रुपया इकट्ठा हुआ था आदि बाते प्रकाशित नही हुई हैं; परन्तु जो कार्य हुआ है. उससे अनुमान किया जा सकता है कि, तीन

हज़ार तक व्यय हुआ होगा। मुख्य विधि, भारतीयोंको मोरिशसमें आकर सौ वर्ष पूरे हो गए उसके उपलक्षमें एक शीला--स्तंभका अनावरण था। यह विधि मद्रासकी "इण्डियन कोलोनियल सोसायटी" के अधिकृत प्रतिनिधि श्री० टी० के० स्वामीनाथन बी० ए० द्वारा हुआ था। यह स्तंभ, आर्य परोपकारिणी सभाकी भूमिमें खडा किया गया है। उसकी ऊंचाई चबूतरेके साथ लगभग बारह फूट होगी। डिसंबर तारीख २६ सन् १९३५ रविवारके दिन दिवसकाल यह अनावरण-विधि निष्पन्न हुआ। अंग्रेजी, हिंदी, उर्दू और तामिल भाषाओंमे स्तंभकी चारों ओर शताब्दी लेख खुदे हुए हैं। उपरोक्त भाषाओंमे व्याख्यान हुए, बच्चोंका राष्ट्रगीत हुआ और कुछ संगीतके बाद समस्त कार्यक्रम तीन घंटोमे समाप्त हुआ। दो तीन हज़ार मनुष्योंकी उपस्थिति थी। इस शताब्दीके संबंधमे दो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। एक फ्रेंच भाषामें, जिसके लेखक श्री० अनन्त विज्ञायर हैं, और दूसरी अंग्रेजीमें है, जोकि अनेक लेखोंका संग्रह है और जिसका संपादन श्री पूवनने किया है। शताब्दीके बारेमें इससे अधिक ब्यौरा देनेका यह स्थल नहीं है। हमारी पुस्तकमे यहांके भारतीयोंकी धार्मिक और सामाजिक स्थितिकी चर्चा की है, इसलिये उसी दृष्टिसे हमे शताब्दीको देखना होगा। हमारी पुस्तककी दृष्टिसे शताब्दीके कार्य क्रममें धर्म विधिको स्थान नहीं मिला था, यह एक उसमे अवगुण रह गया है। पोर्ट लुईस शहरकी स्थापनाकी जो, द्विशताब्दी मनायी गई थी, उसमे पहिली बाबत, प्रचण्ड सामुदायिक ईश-प्रार्थना शान्दे-

मासके मैदान मे हुई थी, इस बातको हमारे पाठक जानते ही होंगे। हमारी शताब्दी के प्रवर्त्तक और चालक आंग्ल विद्या विभूषित थे और वह वर्ग, धर्म-कर्मके प्रति क्या भाव रखता है, उसका विवेचन हमने अन्यत्र किया ही है। हिन्दू जातिके भाग्य विधाता ये ही लोग हैं।

शताब्दी जैसी सौ वर्षके उपरांत अत्यन्त महत्वपूर्ण होने वाला जातीय कार्य और उसमे धर्मका अभाव हिन्दू प्रकृति को धक्का देने वाली बावत बनी है और लोगों पर इसका क्या परिणाम हुआ होगा हम नहीं कह सकते है।

हम खुद इस विचार के हैं कि, नित्य या मामूली सामाजिक बावतोंमे धर्मको लाने की कोई आवश्यकता नहीं है। धर्म को खिलौना नहीं समझना चाहिये, इस बातका हम प्रचार करते हैं, परन्तु जिस जातिका सारा जीवन ही धर्ममय है और विकट परिस्थितिके साथ लड़ने भिड़ते जिन हमारे बाप दादाओं ने अपने धर्मकी ध्वजा फहराती रखी हैं, उसका स्मरण उस शताब्दी के आनन्द--अवसर पर होता तो हम समझते हैं कि वह अधिक बेहतर होता।

इस संबंधमे और एक दृश्यकी ओर हम लोगोंका ध्यान आकर्षित करना चाहते है और वह है स्वामीनाथनजीके संस्कारका रहस्य। आप एक ब्राह्मण थे और मद्रासी ब्राह्मण बड़े ही कर्मकाण्डी होते है; परन्तु विदित होता है कि,

कर्मको आप साथ लेकर नहीं आये थे। हिन्दुस्थानी याने हिन्दू-मुसलमानका भला हो, इस एक ही गायत्री मंत्रको जपते जपते आप यहां पधारे थे। महात्मा गांधी, नेहरू तथा समस्त देश सेवक, धर्मसे परे रहते हैं और स्वामीनाथन जी उन्हींमेसे एक थे। उनसे पहले बीसों हिन्दू-मुसलमान जाति प्रेमी यहा आ गये हैं और उन्होंने काम भी अधिक किया है। उनमें से किसीके ललाटपर सनातनका टीका लगा हुआ था, किसी पर कुरानका तो किसी पर वेदका। परिणाम यह हुआ है कि, एक अपने शिवाला में, दूसरा मसजिदमे और तीसरा समाजोंमे घूम घामकर अपने२ गली वालोंसे सम्मान पाकर चला गया है। स्वामीनाथनजी जैसा सार्वत्रिक सत्कार किसीका नहीं हुआ है। कारण यही कि, धर्म-कर्म और मत-मतांतरोके झगड़ोंसे आप कोसों दूर रहते थे और यही उनके हिन्दू मुसलमानोंके किये हुए सत्कारका रहस्य था।

भलाई और धर्म अर्थात, समाजोन्नति और धर्मोन्नति ये दो भिन्न विषय हैं और वे परस्पर कभी२ विरोधी भी हो जाते हैं। विज्ञान कहता है कि, मांसमे बल है और धर्म कहता है कि, हत्यामें पाप है। इसीको परस्पर विरोध कहते हैं।

मोरिशसके शिवाला, बैठका, सभा-सोसायटियां, कथा, भागवत, व्रत, अनुष्ठान, जप, प्रचार, वेदघोष, भजन, भाजन इत्यादि की प्रचुरता देख कर यही प्रतीत होता है कि, हिन्दुओं ने मोरिशसमे आकर जातीयताका कोई काम किया हो तो यही धर्म पालन किया है।

सन् १६१४ में जर्मन महायुद्ध की शुरुआत हुई और चीनी को दाम मिलने लगा तबसे सामाजिक बातोंमें भी भारतीयोंका पदार्पण हुआ और अब उसी क्षेत्रमें वे बढते जा रहे हैं। उनकी इस सामाजिक प्रगतिका वर्णन हमने अन्यत्र किया ही है। समाज और धर्मका इस समय झगडा सा हो रहा है। भारत में भी यही स्थिति पाई जाती है।

समाजोन्नतिका मूलाधार है धर्म। स्वामीनाथनजीका यह सत्कार देख कर धर्मपालकोंके सन्मुख यही प्रश्न खडा होगा कि, क्या धर्माचार्यकी अपेक्षा समाजाचार्य अधिक मानपात्र हैं? हो तो ऐसा ही रहा है। वट वृक्ष (पिये लाफूस) ज्यों२ बढ़ता और फैलता जाता है त्यों२ उसकी जड निर्बल होती जाती है और वायु के तूफानमें वह गिर पडता है। चलते जमाने को देख कर यह आशंका उत्पन्न होती है कि, वटवृक्ष रूपी हमारे धर्मके मूल कहीं दुबले नहीं बन जाय और किसी आंधी में उसको धक्का लगे। सारे संसारकी यही गति है। मोरिशस ही उसको अपवाद कैसे हो सकेगा? भय-सूचना देख कर मोटर वाला मोटर को धीमी कर देता है। उसी प्रकार हम भी ठीक समय पर आगाह हो जाय तो कुछ उपाय योजना कर सकेंगे।

हिन्दुओंने ही भारत प्रवास शताब्दी मनाई है। इस पुस्तक का सम्बन्ध उसके केवल धार्मिक अंग के साथ है और हमारे विषय की जिससे पुष्टि होती है उतने ही भाग का

विवेचन हमने किया है। शताब्दी आन्दोलन का आरम्भ कैसे हुआ, मत भेद क्यों हुआ था, शताब्दीमें क्या त्रुटियां थी, स्वामीनाथनजीने क्या किया आदि अनेक बातों पर हम लिख सकते हैं, परन्तु हमारी पुस्तकके विषयके साथ उनका संबंध नहीं होनेसे अधिक लिखना उचित नहीं है। परन्तु उत्सव और विधि इन दो शब्दोंके अर्थको हम जरा स्पष्ट कर देते हैं।

उत्सव शब्दमें गर्व, ऐश्वर्य-प्रदर्शन आनंद और मनरंजन का अर्थ समाया है। उस हमारी शताब्दीमें, जो कुछ क्रियाएं हुई है, उनमें मनरञ्जन, वैभव और कला कौशल्य आदिका प्रदर्शन करानेवाली बाते नही जैसी थीं। स्तंभ खडा करना या व्याख्यान देना ये सामाजिक विधि है। हम लोग शिवजीपर जल फल फूल चढाते हैं, आरती करते हैं, मंत्र बोलते हैं, यह सब पूजाकी विधि है। उत्सव नहीं है। जब हम मंदिर का शृंगार करते है, गाते बजाते हैं, सुंदर वस्त्र परिधान करते है, मीठा भोजन करते हैं, तब वह उत्सव हो जाता है। अ-र्थात हमारी शताब्दी विधि पूर्वक बनाई गई। पर हम नहीं कह सकते हैं कि, वह उत्सवके रूपमे बनाई गई। कुछ भी हो, वह मनाई गई है, यह एक दृष्टि से तो बहुत ही ठीक हुआ है। पैसे का लेन-देन करने वाली बंक प्रति साल अपना बैलंस शीट (balance sheet) निकाल के साल भरमे क्या काम हुआ और कितना नफा नुकसान हुआ आदि वृत्तांत जाहिर करती है। उसी प्रकार अपना सौ वर्षका वृत्तात, उस शताब्दी द्वारा
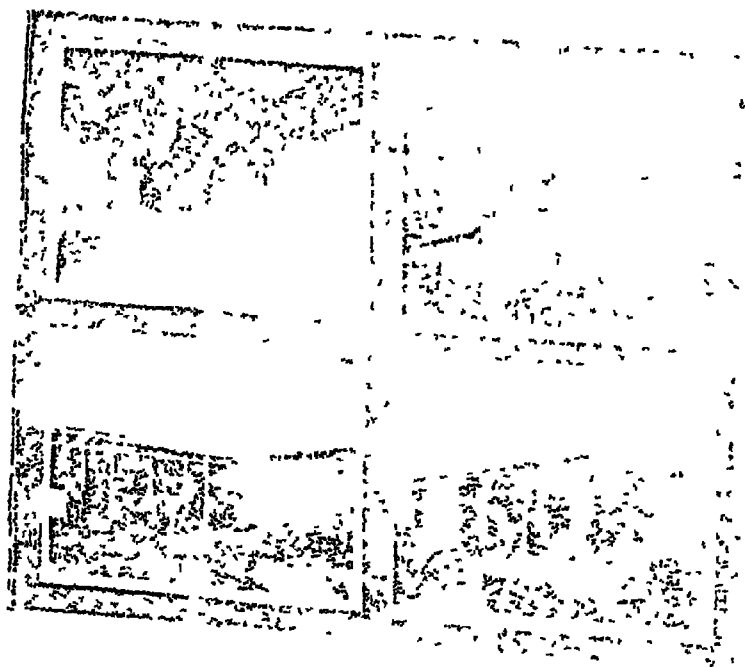
The Maratha temple at Cascavelle togethere with its School and Meeting Hall.

हिंदुस्थानियोंको विदित हुआ और हमें विश्वास है कि, वह जरूर उनके लिये मार्गदर्शक सिद्ध होगा। यदि कोई पूछे कि शताब्दी किस वास्ते बनाई गई तो उसका उत्तर हमारे ख्यालमें यही होगा कि, तुलसीदासकी भाषा बोलने वाले हमारे बाप-दादा, संन्यासी के दण्ड कमण्डलु के साथ सौ वर्ष पूर्व मोरिशस में उतरे और उनकी सन्तान अपनी बुद्धि, परिश्रम और कर्तृत्व के बलपर शेक्सपीयरकी भाषा बोलने लगी और लक्ष्मी पुत्रके ठाट-माट से रहने लगी, इस दृश्य को संसार पर प्रगट करने के लिये। संक्षेपसे कहना हो तो इतना ही बस होगा कि, हम जोगीसे भोगी बने और बंदेसे बेरिष्टर बने। यह शताब्दी मनानेमें हमें गर्व भी और हर्ष भी है और ये भाव, हिन्दुस्थानियोंने कैसे प्रकट किये हैं यह स्पष्ट करनेके लिये ही हमने यह थोडासा विवेचन किया है।

पोर्टलुइस शहर की द्विशताब्दी मनानेमे ये ही भाव थे और उसकी सुगंध मोरिशस भरमें फैली हुई थी। सौ हजार रुपया व्यय करके उन भावोंको उन्होंने कसी जगमगाहटके साथ व्यक्त किया था, यह मोरिशसकी जनता ने देखा है और हमारी शताब्दी मनानेमें ये भाव कैसे जाहिर हुए थे ये भी लोगों ने देखा है। ये दोनों चित्र साथ रखकर देखनेसे हमें पूरी तौरसे ज्ञात हो जायगा कि, वे कहा और हम कहां? हमारे प्रतियोगीकी बराबरी करनेके लिये हमे और कई बार जन्म लेना पडेगा यह भी हम समझ जायेंगे। इस भारतीय शताब्दी ने हमको हमारी शक्ति, बुद्धि, पुरुषार्थ, वैभव, ज्ञान आदि समस्त बातों

का स्पष्ट ज्ञान करा दिया है, यही एक इस शताब्दी से हमको बड़ा लाभ हुआ है । हम किसी से कम नहीं हैं, इस मंत्र जप करने वालों, बड़े पिताकी छोटी संतानकी आस इस प्रकार मैदान में उतरने से खुल जायगी तो हम कहेंगे कि, हमारी शताब्दी ने हमारी जातिका बड़ा ही उपकार किया है। रोज के व्याख्यान, लेख, उपदेश और जोश से, जो परिणाम नहीं होता है, वह हमे सोलह आना विश्वास है कि, उस शताब्दी से होगा। यह फायदा कुछ अल्प नहीं है और इस लिये शताब्दीके प्रवर्त्तकों को उस दृष्टि से हम धन्यवाद देते हैं।

फ्रेंच समयसे याने सन १७३५से भारतियोंका यहां निवास है। यहां के क्रेओलों को ( निग्रो गुलाम ) हुनर धंधा सिखानेके लिये भारत से (मद्रासके मलबार प्रांतसे) उनको लाया गया था। पीछेसे "जांबु" नामक जातिके बहुत से मद्राजी आये थे। इस लिये हमारी शताब्दी को भारतीय द्विशताब्दी कहा जाय तो वह वस्तु स्थिति के विरुद्ध नहीं होगा। फ्रेंच समयमें आये हुए भारतीयोंके इतिहासका हमें ठीक ज्ञान नहीं है और वे ब्रिटिश प्रजा जन नहीं थे। सन् १८१० में यहां अंग्रेजी राज्यकी स्थापना होनेके बाद २५ वर्ष के उपरांत याने सन् १८३५ से जो भारतीय यहां आये, वे ब्रिटिश प्रजा थीं और उनका इतिहास भी हम जानते हैं। शायद इसी कारण से द्विशताब्दी के बदले शताब्दी ही मनाना लोगोंने उचित समझा होगा। कुछ भी हो यह कहना होगा कि, इस शताब्दी ने हमारे यहां

के दो सौ वर्षकी स्थिति पर प्रकाश डाला है और यह प्रकाश इतना साफ है कि, हमारी देह पर की सूक्ष्म फुसजी भी हम देख सकते हैं।

अस्तु, हमारा लेख बढ़ता ही गया और अन्तमे हमें मालूम हुआ कि, हमारे लेखमें मूल उद्देश्यकी कक्षाके बाहर की अनेक बातें आ गई हैं। हमने भी मोर्चा घुमा दिया और हमारा उद्देश्य निश्चित किया। वह यह कि, भारतियोंके यहा आने के समयसे लेकर आज दिन तक का हिन्दुओंका धार्मिक और सामाजिक इतिहास तथा भविष्यकी रूप रेखा इस "हिन्दू मोरिशस" पुस्तक द्वारा जनताके सन्मुख रखी जाय। अंधेरी रात (पहिली पीढी) उषाकाल (दूसरी पीढी) और सूर्योदय (तीसरी पीढ़ी) ये जो हमने विभाग कल्पे हैं और उनपर जो विवेचन किया है, उस परसे हमारे पाठक समझ जायेंगे कि, पुस्तकमें किन बातोंकी चर्चा की है और उसको "हिन्दू मोरिशस" यह नाम क्यों दिया है।

मोरिशसमें हिन्दू-धर्म और हिन्दू-समाज की मूर्ति को ढालने वाले चार हाथ हैं। पहला हाथ है रामायणियोंका। उनको भगवान, झंडी, धोती, रामायण, बाबाजी, कथा और मोर के अलावा दूसरी बाते उतनी प्यारी नहीं लगती। ये पिता लोग (उषाकाल की दूसरी पीढी) हमेशा इन्हीं बातोंका उपदेश देते रहते हैं। ये परम्परा के "गारड़िये" याने रक्षक हैं। धर्म क-

मों में ये ही लोग पैसा खर्च करते हैं। नया विधान होने में नये विचारोंसे वे वंचित रहते हैं अर्थात उनका काम चलती गाडी को 'लारियाज' (गति रोधक लकडी) लगानेकी भांति होता है। उनको भूतकालका ज्ञान न होनेसे भविष्य कालका अनुमान उनसे नहीं हो सकता है। वे केवल वर्तमान कालकी चिंता रखते हैं। "हम मरे जब डूबे" के समान उनकी मनोवृत्ति रहती है।

दूसरा हाथ है आर्यसमाजका। अपने पुराने भारतमें बनाये सिद्धांतों से यह समाज जकडकर बंधा पडा है। वह उनसे टससे मस होना नहीं चाहते हैं। उनका सर्वस्व वेद है। बुद्धि, युक्ति और तर्क से वह काम लेता है, पर प्रमाण के लिये बूढे ग्रंथों में डुबकी मारता है और यहीं उसकी सांस रुक जाती है। आर्यसमाज ने पुराने पाखण्ड को हटाया है और उसके स्थान पर नई जडता को बिठाया है। कोई आर्यसमाजीको गोदान करते हमने नहीं देखा है; पर अपने संस्कारोंमें गोदानके मंत्र वे रटते ही जाते हैं। जब सोना चांदी के सिक्के नहीं थे, तब गौ ही रुपया था; पर अब? दिनमें आकाशके तारे देखनेमें नहीं आते हैं, पर उनके पंडित वधु को ध्रुव-दर्शन करा ही देते हैं। ऐसी अनेक बातें हैं। स्वामी दयानंदको वे अवतार के समान मानना चाहते हैं।

जर्मनी में मार्टिन लूथर ने लगभग ४०० वर्ष पूर्व, काथोलिक क्रिश्चन धर्म में संशोधन करके नए पंथकी स्थापना की,

जो आगे चलकर "प्रोटेस्टेन्ट" नामसे मशहूर धर्म प्रचलित हुआ। दयानंद सरस्वतीका हिन्दू धर्मके साथ ऐसा ही संबंध है। लूथरको पूज्य दृष्टिसे देखते हैं; पर उसके गीत कोई गाता नहीं। परन्तु हम देखते है कि, "दयानन्दके पीछे चलेंगे, हम उसके सैनिक बनेंगे, ऐसे गीत गाए जाते हैं।

गांधी-आंदोलनके समयमे बहुतोंने यह समझ लिया था कि, महात्मामे कुछ दैविक शक्ति है, जिससे उनका नाम लेनेपर गोली भी असर नहीं कर सकती है। बेचारे गोलीसे मरने लगे तब उनको होश आए और उनमें इस अन्धश्रद्धाका क्या परिणाम निकला और सत्याग्रह आन्दोलन कैसा निष्फल हुआ यह सबको विदित ही है। अपनी जातिके उपकार-कर्त्ता प्रति अवश्य आदर और कृतज्ञता-भाव होना चाहिये, पर अपनी बुद्धिको उसके चरणोंमे नहीं अर्पण करना चाहिये। महात्मा गांधो न तो ईश्वर है न तो सर्वज्ञ ही है। जिस अन्ध श्रद्धाको हम नष्ट करना चाहते हैं, उसीको झरोखे द्वारा हम अन्दर ले आते हैं। स्वामी दयानंद जैसे श्रेष्ठ विभूतिके लिये पूज्य-भावका होना उचित है और पूज्य भावसे ही उनका स्मरण दीर्घकाल तक रह सकता है; परन्तु अपने मस्तिष्क को उनको बेचना अंधता है। दयानन्द सरस्वतीका उद्देश्य हिन्दू राष्ट्रका उत्थापन करना था न कि शिव लिंग के स्थान पर अपनी मूर्ति बिठाने का। व्यक्ति-महात्म्य, सीमा से बाहर हो जाने मे समाज को हानि पहुंचती है उसका, ये भगत मंडली ख्याल नहीं करती है।

रामकृष्णके जीवन चरित्र लोग इस लिये पढते या सुनते हैं कि, उससे पाप नाश हो और स्वर्ग प्राप्ति मिले। उनके पवित्र और निर्मल जीवनसे शिक्षा लेकर तदनुसार निजका वर्त्तन शुद्ध रखनेकी, जो अनुज्ञा है, उस ओर, अति श्रद्धा के कारण, लोग दुर्लक्ष्य करते हैं। राम-सीतामे, जो पति पत्नी-प्रेम था, वैसा दम्पति प्रेम हर एक घरमे होना चाहिये इस बातका बोध, रामायणका पारायण करनेवाले नहीं लेते है; किन्तु पत्नीको पावकी जूती समझकर उससे वैसा व्यवहार करते हैं। रामायण पढनेसे लाभ क्या?

मोरिशसमें आर्य समाज यह एक ही संस्था है, जो सुधार-प्रचारे करतीं है, और इस समय हिन्दुओमे जो जागृति देखनेमे आती है, उसका श्रेय आ० समाजको ही देना चाहिये। आ० समाजका बहुतसा कार्य-क्रम. हिन्दुओंने उठा लिया है और संभव है कि, आ० समाजकी प्रगति धीरे२ उस कारण रुक भी जाएगी और फिर हिन्दू एवं समाजी दोनों अन्धेरेमें टटोलते रहेंगे। आर्य समाज अपना एक दल बनाकर और कुछ समयके लिये जीवित रह सकेगा, पर उसका नेतृत्व और हिन्दुओंके त्राता इस पदवीको वह खो बैठेगा। जिन लोगोंमें आर्य समाजने प्रचार किया था वे अब जाने लगे हैं। वेदकी बांसरीसे अबके युवक झुलने नहीं न मांस मद्यके निषेधसे ही वे मुग्ध होते हैं। उनको यदि नई बातें नहीं सुनाई जाएंगी, तो वे तुम्हारी छायाने भी खडे नहीं रहेगे। तब किनमें प्रचार करोगे।
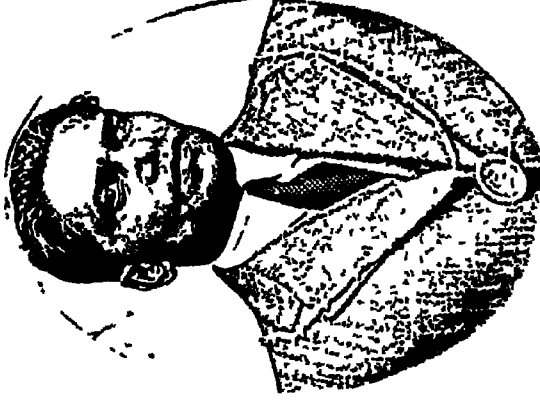
कुंवर महाराज सिंह

डॉ. शिवसागर रामगुलाम

इस समय बुद्धिका इतना विकाश हुआ है कि, एक२ शब्दपर घंटों वहस चला करती है । दगाबाजी और धोखा-बाजी, एक ही अर्थके दो शब्द है, पर दोनोंमे सूक्ष्म भेद भी है । मानहानि के मुकद्दमे मे किसीको धोखावाज कहने के लिये यदि ५० रुपया दण्ड देना पडे तो दगवाज कहने के लिये १०० रुपया देना होगा । ऐसी स्थितिमे याने इस बुद्धि तर्कमय जमानेमे किसी समयके लिखे या बोले शब्दोंको टांग पकडकर लटकते रहना आजका कौन व्यक्ति स्वीकार करेगा । 'बाबा वाक्यं' का जमाना गया । हमेशाके वास्ते चला गया । भारतकी ढोलकी यहा क्यों पीटने है, कुछ समझमे नहीं आता है । यहाके लोग निजको 'इंडो मोरिशियन' कहते है । उनके कर्म-मर्म भी इंडो मोरिशियन ही होने चाहिये ।

आर्यसमाज ही इन बातोंको समझ सकता है । उनमे तर्क बुद्धि होने से उनसे ही हिन्दुओंकी रक्षाकी आशा हो सकती है और इसी वास्ते हमने उसके संबन्ध मे हमारे विचार प्रकट किये है । हमने जो कुछ कहा है, वह सत्य और शुद्ध भावसे कहा है । उपहास या पाण्डित्यकी दृष्टि से नहीं, इस लिये हमे विश्वास है कि, हमारे आर्यसमाजी मित्र हमपर क्रोध नहीं करेगे । यदि आर्यसमाजको नहीं कहेगे तो किसको कहेंगे ? क्योंकि वही हिन्दुओं की "लेबोरेटरी" रसायनशाला है ।

तीसरा हाथ है शेक्सपीयर के भक्तोंका । यह वर्ग अल्प है; पर उसमे शक्ति है । बापके पैसे से उनको शिक्षा मिली

है; पर बापके आचार विचारोंसे वे सहमत नहीं रहते हैं। वे अपने बाप की बोली नहीं बोलते हैं. उनका पहनावा नहीं पहनते हैं. उसके धर्म-कर्म मे रुचि नही रखते है और उसके कामको भी नहीं संभालते है। वे materialist याने जडवादी है। खाना, पीना, मौज--शौक करना उनका ध्येय होता है। परन्तु ढलती उमरमें जब कभी किसीको कुछ सुनाना होता है, तब प्राचीन सभ्यता और धर्म--कर्म की दुहाई देकर ब्रह्मज्ञान के ठेकेदार होने का अपना दावा करनेमें चूकते नहीं! कम में कम इस भोगी को अपने पुरखा जोगी की अबतक याद रही है, यही ग़नीमत है। ऐसे महाशयों के संबंध मे हमने अन्यत्र लिखा है। उन्हीं लोगोंके हाथमें हिन्दू समाजका भविष्य जा रहा है। इनके हाथसे हिन्दू धर्म और समाजकी जो मूर्ति ढलेगी वह कैसी होगी, पाठक ही समझ लेंगे।

चौथा हाथ है यहाकी परिस्थिति और यहाकी सभ्यता। इसने तो किसीको नहीं छोडा है। क्या बापको क्या बेटे को और क्या पोतेको सब उसी जालमे। कोई कम लपटा पडा है तो कोई अधिक है इतना ही फरक; परन्तु लपटे पडे हैं सब। यह सभ्यता सबको प्रभावित करती है और उनपर सवारी करती है। हमारे विचार मे यही हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति की सबसे अधिक भक्षण करने वाली राक्षसी है। परन्तु अपनी मायासे, पूतना राक्षसी के समान, ऐसा सुन्दर रूप धारण करके हमको लुभाती है कि, हम स्वयं उसके मुँह मे जा पडते हैं। परिस्थिति से क्या मतलब है, वह हमने लिखा ही है।

Pandıt Gayasıng of Port Louis, the enthusiastic mıssionary of the Arya Prathınıdhi Sabha

तात्पर्य इन उपरोक्त चार हाथोंसे हमारा हिन्दू समाज बन रहा है। एक कल्पित दृष्टान्त द्वारा हम हमारे कथनको स्पष्ट करते हैं। एक स्त्रीको एक पड़ा हुआ बच्चा मिला। प्यारसे उसे छाती लगाकर वह घर आ रही थी। रास्तेमें दूसरीने उसे देखा और कहने लगी यह क्या काले कुरूप बंदरको तुम पालेगी? छोड दो उसको। इतनेमे तीसरी एक स्त्री वहां पहुंची। वह पूछने लगी क्या इस बच्चेकी जाति पाति तुम जानती हो? यों ही उठाकर चलने लगी। फेको उसको यह हल्ला गुल्ला सुनकर एक चौथी स्त्री वहां हाजिर हो गई। उसने सबकी बातें सुनकर गंभीरता पूर्वक कहा, देखो तुम सब बेवकूफ हो, तुम आपसमें लड़कर बच्चेको मार दोगी। 'दे दो बच्चा मुझे। इतना कहकर बच्चेको छीननेके लिये उसने हाथ बढ़ाये।

इसका अर्थ यह है कि, पिताजी, भागवतको गले लगाए बैठे हैं, पुत्रजी कहते हैं 'सा सो जाफेर' (उसकी मर्जी) आर्य समाजी कहता है, देखो यह बूढा गलेमें क्या लटकाता फिरता है। यहाकी सभ्यता कहती है 'बान बारबा' (सब जंगली है) हिन्दू समाजकी मोरिशसमे इस समय यह गति है।

इन चार हाथोंमेंसे चौथे और अंतिम हाथपर हमारा कोई अधिकार नहीं है। इसलिये उसको एक ओर धरकर पहले तीन हाथ क्या कर सकते हैं, यह देखना चाहिये। ये तीनों हाथ हमारे एक ही शरीरके हैं। परस्पर सहानुभूति रखकर

वे यदि कुछ मूर्ति बनाना चाहे तो बना सकते हैं और कदाचित उनके सहयोग से वह मूर्ति पूजनीय और दृढ भी होगी याने हिन्दू समाज मजबूत बनेगा।

और एक बातकी ओर हम पाठकों का ध्यान खींचते हैं। हमने कहा है कि, मोरिशस एक बडे कुटुम्बके समान छोटा देश है। एक भाई दूसरे भाई के संबंधमे स्पष्ट शब्दोंका उच्चारण नही करना चाहता है। टीका टिप्पणी, निषेध विरोध और निन्दा यह सब तो दूर रहा। सभ्य देशोंमें संशोधन और सुधार इन्हीं हथियारोंसे किया जाता है; परन्तु मोरिशसमे यह टापू बहुत छोटा होनेके कारण प्रति दिन एक दूसरेका दर्शन तथा संघर्ष भी होता रहता है, जिससे भाईचारे के सिवाय और कुशल मंगलमे वृथा दो चार मिनिट गँवानेके सिवाय अन्य बातो की चर्चा याने धार्मिक या सामाजिक विषयकी चर्चा या टीका टिप्पणी, वे अपनी बातचीतमे आने ही नहीं देते हैं। होता है, होने दो (लेसली) हमको क्या, हम क्यों किसीका दिल नाराज करे ? इस उदासीन मनोवृत्तिसे यहा लोगोंका जीवन व्यतीत होता है। आवश्यकता होनेपर भी नकटेको नकटा न कहो तो वह निजको गरुडावतार मानने लग जाए तो क्या आश्चर्य ? यहां, जो कुछ हलचल या सनसनी कभी फैल जाती है, वह भारतके लोगोंसे २८ वर्ष पूर्व आये हुए बॅरिस्टर मणिलालजीसे लेकर आज दिन तक जितने विद्वान और कार्य-कर्त्ता यहां आये हुए हैं, उनके कामोंको देखनेसे हमारा कथन स्पष्ट हो जायगा। उनके भाई बिरादर या इष्टमित्र

मोरिशसमे नहीं होते हैं। उनके कोई हित संबंध यहां नहीं है। किसीको प्रसन्न अप्रसन्न करनेकी उनको आवश्यक्ता नहीं है। वे इसी वास्ते यहां आते है या भेजे जाते है कि, उनसे मोरिशस वासियोंकी कुछ सेवा हो। कोई कौटुम्बिक या सामाजिक बंधन न होनेसे वे अपना काम भी पक्षपात रहित सत्य पर दृष्टि रख कर ही करनेकी चेष्टा करते हैं। उनमे से कोई लोभ के कारण अपने मिशनसे च्यूत हो जाय तो वह बात अलग है। वह सामान्य नियम नहीं है। बेरिस्टर मणिलाल स्व० पं० जयशंकर, स्व० डा० भारद्वाज, स्व० पं० बंसीराम, स्वामी स्वतंत्रानंद, स्वामी विज्ञानानंद आदि जाति सेवकों को मोरिशसकी हिन्दू जनता भलीभांति जानती है। ऐसे ही मनुष्य अपने सत्य और इसी लिये अप्रिय भाषण, लेख या वर्तन से हलचल या सनसनी पैदा कर सकते हैं।

मोरिशसके लोगोंमे भी उदारता, त्याग भाव, विचार. बुद्धि जाति प्रेम, उत्साह सबकुछ है। जो बात उनमे नहीं है, वह है स्पष्ट वक्तृता। समाजकी दुस्थिति को वे भली भांति जानते हैं। खानगीसे उसमें घुसी बुराइयोंका स्वीकार भी करते हैं: पर जनता के सामने उनको स्पष्ट शब्दोंमे रखनेको हिचकते हैं। ऐसा करनेसे अपनी प्रतिष्ठा को धक्का लगनेका उनको भय रहता है। इसीको 'moral courage' याने नैतिक वीरता कहते हैं, जिसका उनमे अभाव पाया जाता है।

ये महाशय सभामें खड़ा हो कर उपदेश देते हैं कि, हम सब लोग कुलिया हैं! हमको भाईर के समान ए

के साथ व्यवहार करना चाहिये। प्रचलित हिन्दू धर्मके अनुसार एक क्षत्रिय, एक शूद्रका भाई बन सकेगा ? न आपस में वे शादी ब्याह करेंगे न सह-भोजन ही और कहते हैं कि, भाई बन कर रहो !! मिश्र संतान याने वर्णशंकरको वे महापाप मानते हैं। ऐसी संतानको वे 'बतार' (दोगली) कह कर उसका तिरस्कार करते हैं। इस हालतमें भाई भाईका नाता कैसे हो ? तात्पर्य जहां रोटी बेटी व्यवहार नहीं, वहा भाईचारा भी नहीं इस साधारण बातको भी ये लोग नहीं जानते हैं। किन्तु जानते हैं; पर बोलते नहीं एक चीना या क्रेओलके साथ हम हाथ मिलाते हैं और उनका कुशल पूछते हैं। इतना भी हम हमारे देशवासीके साथ करनेको तैयार नहीं है और कहते हैं कि, हम तुम्हारे भाई !! परस्पर स्वार्थ संबंध हो तथा उनमें समानता हो तो ही भ्रातृभाव उत्पन्न होता है, अन्यथा नही।

मद्राजी और कलकतिया, बंगाली और बम्बई, गुजराती और सिंधि ये सब हिन्दू ही है; पर उनमें रोटी बेटी व्यवहार न होनेसे उनका आपसका व्यवहार भाईवत् नहीं हो सकता है। एक कलकतिया, दूसरे कलकतियाको देखता है तब दारूके गुत्तेमे घुसनेसे हिचकता है; क्योंकि वह उसके साथ कुछ धार्मिक या सामाजिक संबंध रखता है। एक हिन्दू स्त्री, क्रेओलको देखकर ओढ़णी नहीं तानती है। मतलब, जिसके साथ कुछ संबंध नहीं, उसका न आदर है न भय ही। तब भाई कैसा ? दूसरा मजा यह है कि, ऐसे व्याख्यान सुनकर श्रोता वर्ग भी

खुश होता है और व्याख्याताकी प्रशंसा होती है । व्याख्याता द्विज जातिका है और श्रोताओंमें अन्य जातियोंकी संख्या अधिक है । एक सभामें यह दृश्य देखकर हम निजको पूछने लगे कि, इनमें लबाड़ कौन, व्यास या श्रोता ? कौन किसको ठगता है ? कई वर्षोंसे हम ऐसे व्याख्यान और उपदेश सुनते आए हैं ? पर उसका असर होता नहीं देखा है । कारण यही जो हमने पहिले बताया कि, मोरिशसमें कोई किसीको ऐसी बातोंसे नाराज करना नहीं चाहता है ।

'अहो रूपं अहो ध्वनिः' इस संस्कृत सुभाषितके अनुसार सब व्यवहार चलता है । व्याख्यान आदिका लोगोंपर कुछ प्रभाव न देखकर निराशासे वे कहने लगते हैं कि, यह हिन्दू जाति कभी उठनेवाली नहीं है । यह देखते हुए भी वे अपनी चिल्लाहट चलाया ही करते हैं । उत्तम डाक्टर यही करता है कि, जब एक दवासे रोग हटता नहीं, तब वह रोगीकी दवा बदल देता है । पर हिंदू धर्मके डाक्टर ऐसे हैं कि, उनको रोगीकी अपेक्षा अपनी औषधिपर ही अधिक विश्वास है । बीमारी बढे और उसकी मृत्यु हो जाय, तो भी हमारे डाक्टर अपनी दवा बदलेंगे नहीं । इस दशामें हिन्दू जातिके उत्थापनमें विचारी लोगोंका आशा-भंग होता हो तो विस्मय ही क्या ?

एक उदाहरण देखिये । शिवरात्रिके अवसरपर धर्म, श्रद्धा, भक्ति, कर्म, पुण्य, मोक्ष, परलोक इत्यादि बातोंका कुछ थोडा उपदेश नहीं होता है । पर हमने सुना है कि, बहुतसे शिवा-

लयोंको खुशीसे कांवर ढोनेवाले मिलना मुशकिल हो जाता है। दो लाख हिन्दुओंमे, घडी भरके लिये मान लो कि, एक हजार कांवरथी मिले तो भी क्या ? गणितसे एक हजार हिन्दुओंमें पांच कांवरथी अर्थात सौ हिन्दूके पीछे आधा कावरथी हुआ !! सालमे एक ही दिन यह पर्व आता है। उसी दिन हमारी श्रद्धा, भक्ति धर्म कर्मकी परीक्षा हो जाती है। ४०-५० मील नीचे ऊपर (ऊपर सूर्य और नीचे गरम गुद्रोंकी सडक) भूनते चलना, हवा पानीसे हैरान होना और तीन चार दिनकी कमाई गुमाना आदि कष्ट उठानेके लिये यदि लोग तैयार नहीं होते हैं, तो दूसरा मार्ग क्यों न ढूंढ निकाला जाय ? परीतालाव का जल होना यह मुख्य उद्देश्य है। यह जल मोटर द्वारा प्राप्त हो अथवा बिसमें आ जाय या कामियोंमें मिल जाय, तो उसमे क्या बिगडेगा ? गंगाजलकी शुद्धि और पावित्र्य, चाहे उसे मनुष्य ले आवे अथवा यंत्र ले आवें; हम समझते हैं कि, घटता नहीं है। इतना ही नही, किन्तु भाडेके टट्टूकी अपेक्षा खुशीसे दौड़कर काम करनेवाला यह यंत्र ही अच्छा। लेकिन यह सब लोगोंको सुनाएगा कौन ? हमको सा पुर सा (सौ टका) खातरी है कि, हिम्मत करके उक्त रीतिसे यदि कोई जल लाने जाएगा, तो पाच दस सालमें वही प्रथा सर्वत्र जारी हो जाएगी। पर आरम्भ कौन करे। बिल्लीके गले घटी टांगनेके समान ही यह धोखावाला काम है। ऐसी और भी बाते हैं। केवल नमूनेके तौरपर इस उदाहरणको हमने यहां पेश किया है।

तुर्कस्तान में दस पंद्रह हजार मसजिदे हैं। उनमे प्रति दिन

पांच बार नमाज पढा जाता है। हर एक मसजिदमें एक बांगी रहता है। मसजिदके ऊंचे मिनारे पर खडा हो कर ऊंची आवाज से प्रति दिन पांच बार मंत्र द्वारा वह गाव के लोगों को खबर देता है कि, नमाजका वक्त हो गया, चले आव नमाज पढने को। इतने जोरसे वह मंत्र बोलता है कि, उसे अपने दोनों कानोंमे अंगली डालनी पडती है। इतने १०-१५ हजार बागियों को प्रति साल लाखों रुपया, केवल पाच बार चिल्लानेके वास्ते तलब देना मानों कि, गरीबोंके पसीने की कमाई का पैसा पानीमें फेक देना था। वहां की सरकार ने इस समय एक नई आयोजना की है। तुर्कस्तान की तमाम मसजिदोंमें राडियोके यंत्र बिठा दिये गये हैं। प्रमुख मसजिदों में बांगी लोग निश्चित समय पर राडियोके सामने उपस्थित हो कर बाग देते हैं और उसी क्षण तमाम मसजिदोंके राडियो यंत्र भी बांग देने लग जाते हैं। ध्वनि क्षेपक याने ऊंची आवाज करने वाला यंत्र भी समीप ही रहना है, जो बांगी से सौ गुणा बुलन्द सूरमें मंत्र सुना देता है। समझो कि, आकाश वाणी ही हो रही है। अब वहां इतने बांगियों की जरूरत नहीं और उनके लिये खर्च करनेकी भी जरूरत नहीं तथा आवाज भी बहुत दूर तक पहुंचती है। नमाजके समय की लोगों को सूचना देना (उन दिनों समय मापनेके घड़ी आदि साधन नहीं थे।) यह बांग का मुख्य उद्देश्य है। चाहे वह सूचना मनुष्यके मुँह से निकले अथवा यंत्रके मुँह से, बात एक ही है। हम क्यों नहीं यंत्रसे काम ले सकते है?

पहले गाली देने के लिये जीभ निकाल लेते थे,

व्यभिचार करनेके लिये जननेन्द्रिय काट लेते थे, चोरी के लिये हाथ काट लेते थे और कुदृष्टि के लिये आंख निकाल देते थे। उद्देश्य यह कि अपराधीको ऐसा भयंकर दंड देने से फिर वह वैसा काम न करे और दूसरे लोग भी ऐसे काम करनेसे डरें। परन्तु ऐसी अमानुष सजाएँ देकर भी मानव समाज सुधरा नहीं। तब मनुष्य का स्वभाव ही बदल देनेका यत्न हुआ और नीति धर्मके प्रचार द्वारा उसकी दुष्ट प्रवृत्ति पर अंकुश रखा गया और जंगली सजाओंको जंगलमें ही गाड़ दिया गया।

हमारे धर्मके नेताओं ने यही समझ रखा है कि, जितने कड़े बंधनों से हिंदुओं को कसेंगे, उतने ही वे अधिक धर्मिष्ट बनेंगे। परिणाम क्या हुआ है, वह हमने बताया ही है, मनुष्य कोई पशु नहीं है कि, जो खा पीकर पड़ा रहे। बहुत प्राचीन समय में शायद वह वैसा होगा। समीपके माडागास्कार के मलगास ऐसे ही हैं। परन्तु सभ्य देशोंमें मनुष्यका अवतार कृष्णावतार है, जो सबोंमें परिपूर्ण समझा जाता है। आज के मनुष्य के लिये उसका घरबार है, उसका मौज शौक है, उसका नाटक सिनेमा है, उसका लड़ाई झगड़ा है, उसके बालबच्चे हैं, काम धंधा है, प्यार यार है, सुख दुःख है. ज्ञान लालसा है, किसीका भला करना है, किसीको ताड़ना है, किसीका मालिक है तो किसीका सेवक है, उसको कमाना है गंवाना भी है, उसको हँसना है और रोना भी है। काम, क्रोध, राग द्वेष आदियोंके साथ उसका जन्म हुआ है। आजका मनुष्य ऐसा है।
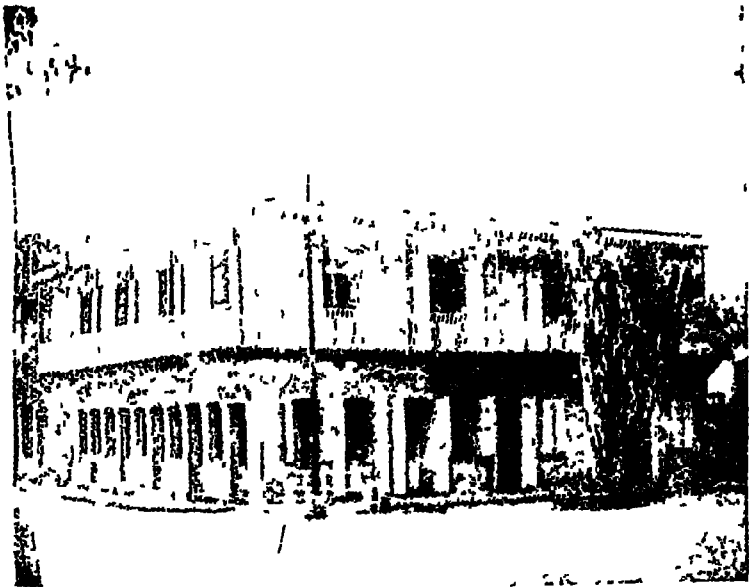
The Seat of the Hındoo Maha Sabha Photo by the kındness of Mr Vallabhbhaı G Naık, Merchant, Port Louıs

सारांश, रात दिन किसी न किसी चिन्ता या विषय में मनुष्य मग्न रहता है। रामनामका जप करनेको उसको अवकाश ही कितना है? प्राचीन समयकी स्थिति अब नहीं है। उस समय अन्न के पदार्थ उत्पन्न करना और उनका संग्रह हो जाने पर मक्खियां मारना इतना ही काम पहले होता था। हिन्दुस्थान के देहातोंमें अबतक यही स्थिति है। उनको हमेशा अवकाश होता था। दिनमे चार बार नहाना पांच बार हवन करना और तीन बार देव दर्शन करना तथा समय समयपर व्रती रहना आदि बंधनोंसे मनको इधर उधर न भटकने देनेके लिये यह धार्मिक व्यवस्था बहुत ही ठीक थी। आजका मनुष्य सूर्योदय से सूर्यास्त तक काम करता है। उसको नहाना धोना है, खाना-पीना और आराम भी करना है। इस समय मनुष्य को वह अवकाश नहीं है; इस लिये पंच महायज्ञके बंधनको आज ढीला करना ही पड़ेगा।

एक सप्ताह तक रात दिन भागवत ठान देना या १५ दिन तक रोज रामायण सुनाते रहना और कहना कि, भागवत में लोग नहीं आते हैं, कहां तक बुद्धिमानी है? क्या मनुष्य कोई यंत्र है कि, दिनभर काम करें और रात को भी फिर आ कर जागता रहे। हमारे धर्माचार्य कहते हैं कि, सच्चे हिन्दूको आना ही चाहिये। अर्थात बाबाजी की जबरदस्तीके सामने जो सिर झुकावे, वही सच्चा हिन्दू। विश्वामित्रके समान मानों कि ये बाबाजी अपने हरिश्चन्द्र रूपी यजमानकी सत्य परीक्षा ही करना चाहते हैं। फलस्वरूप प्रतिक्रिया आरंभ होती है और स्वयं बाबाजी की

. . . . २. पर ही आक्षेप होने लगता है। "पंडितवाके पैसा मिलेला, पंडितवा का सेतिये मे भागवत बांचेला?" इस तरह दोनोंमें खींचातानी होने लगती है और दोनों हानि उठाते हैं। बाबाजीको प्राप्ति नहीं होती है और यजमान को पुण्य नहीं मिलता है। कथा समाप्ति मे सू कास (सपट दो सपट) की जो ताम्र छटा थालीमे फैल जाती है, उसीसे व्यास श्रोता के सात दिनके युद्धका फल प्रतीत हो आता है। अन्ततगत्वा लोग इस बात की ओर झुकना चाहते है कि, वैसी दाम्भिक धर्म परायणताकी अपेक्षा, पाप भीरु नास्तिकता ही अच्छी है।

यह सब देखते हुए भी कोई महा पुरुष खड़ा हो कर बुलन्द आवाज से नहीं कहता है कि, बाबा, सात, पंद्रह या एक्कीस दिन तक क्यों लोगोंको कष्ट देकर उनका सत्व हरण करते हो? एक या दो दिन मे ही क्यों नहीं समाप्ति करते हो? धर्म पिता को समझना चाहिये कि, मनुष्य कोई जड वस्तु नहीं है। वह निराकार निर्विकार नहीं है। वह साकार भोगी जीव है। वह भी षोड्शोपचार चाहता है। उसकी रुचि अरुचि तथा स्वभाव प्रकृति जानना चाहिये। हमारे पंडितोंको थोड़ा Psychology (मनो विज्ञान) का ज्ञान होता, तो वे अधिक विचारसे, काम लेते। समय और परिस्थिति को भी जानना चाहिये। जितना बोझा, मनुष्य उठा सके उतना ही उस पर लादना चाहिये। महात्मा गांधीका सत्याग्रह इसी लिये गिर गया कि, लोग उसका अधिक भार न उठा सके। समाज या आन्दोलनका पतन या उत्थापन दोनोंका उत्तरदायित्व नेताओं पर होता है न कि अनुयायियों पर। जो समाजकी नाड़ीको नहीं प-

हचान सका है, वह अच्छा वैद्य नहीं है। समाज भेड जैसा है, गडरिया चतुर होना चाहिये। समाज को दोष नहीं देना चाहिये।

मोरिशसमें तो क्या हिन्दुस्थानमें भी धर्मका बोझा असह्य होने के कारण फेंका जा रहा है।

हमारे धर्म रक्षक या धर्म—नेता याने पंडित उपदेशक हमारा सारा सम्बन्ध केवल अदृश्य ईश्वरके साथ लगाना चाहते हैं। यह संसार और उसके बाशिन्दे यथा स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी, मच्छड़-मछली, कीडा-कीटाणु तथा अन्य पदार्थ यथा हवा-पानी, प्रकाश-पृथ्वी, घरद्वार, अंधेरा, भोज-पान, कला-संगीत, पहाड़-पत्थर, वृक्ष-वेली, फल-फूल, शाक-भाजी इत्यादि। मानों कि, हमारे लिये कुछ भी नहीं है; उनके हिसाब से ईश्वर और हम फकत दो ही इस संसारमे रहते हैं। हजारों प्राणी और पदार्थोंके मध्यमें हमे रहना है और रात दिन एक दूसरेसे हम टकराते रहते हैं। क्या उनके लिये हमारा कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है? अगर हमारा उनके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, तो उनके मध्यमे ईश्वर ने हमको पैदा ही क्यों किया?

रहना पानीमें और सिखाना चलने को, यह हमारी दशा है। पहले तो हमे तैरना जानना चाहिये; परन्तु हमारे गडरिया हमें पहले चलना सिखाते हैं। अब पानी पर चलने लगेंगे तो डूब कर मरेंगे नहीं? कुछ ऐसी ही हमारी स्थिति हो गई है। एक छोटी सी चूंटीका भी हमे ज्ञान नहीं

है और सिखाते हैं अदृष्ट ब्रह्म ज्ञान ! इसी को व्यर्थका बोझा कहते हैं और उसको हम कैसे फेकते आये हैं, यह हम अब स्पष्ट करेंगे ।

हमारे सोलह संस्कारों में से इस समय विवाह और श्राद्ध दो ही संस्कार जीवित रहे हैं। परन्तु आर्यसमाज, पुराने संस्कारों की सडी हड्डियोंको फिर ताजी बनाना चाहता है। विवाह संस्कार इस लिये रह गया है कि, उसमें मुख्य भाग उत्सव का है, और उसमे लोगोंको अपना बडप्पन दिखानेका एक मौका मिलता है और श्राद्ध इस लिये कि, अपने माता पिता के प्रेमका उसमें प्रदर्शन होता है। १६ संस्कारों में से यह दो ही रह गये हैं और ऐसा क्यों हो गया, इस बातका ये धर्मोपदेशक जरा भी विचार नहीं करते हैं। बाकी १४ संस्कार लोगों ने क्यों फेक दिये ? कारण यही कि, लोग उन्हें निरर्थक बोझा समझने लगे। "अति सर्वत्र वर्जयेत" बहुत नाक बढ़ानेसे नाक टूट जाती है यह इसका भावार्थ है ।

तात्पर्य यह कि, हिन्दू धर्म, चाहे उसे वैदिक धर्म कहो, दुनियाका सबसे प्राचीन धर्म है। दूसरे धर्मों ने भी कुछ दे ले कर उसकी वृद्धि की है। वेद कालमें हवन होता था। फिर किसी ने मूर्ति पूजा शुरू कराई। कोई अवतार ले आया, कोई ने विष्णु पुराण बनाया, किसी ने शिवपुराण लिखा, किसी ने संस्कार बताये, किसी ने मोहर्रम में नाचना सिखाया, किसी ने जातियां बनाई, किसी ने मारीआम्मेनका मंदिर बनाया।

हिन्दू धर्मका पेट इस तरह फूलता ही गया और अब हिन्दु-ओंको अपने धर्मका अपचन सा हुआ है और वे झाड़ा उलटी द्वारा उसे बाहर फेंक रहे हैं; याने श्रद्धा भक्ति से विमुख हो रहे है। आजकल के लिखे पढे, न विष्णु को पूजते हैं, न मुंडन संस्कार करते हैं, न जाति पाति को पहचानते हैं, न रामायण पढते है, न हवन ही करते हैं। हिन्दू धर्मावलम्बियों को धर्मका कितना अजीर्ण हुआ है, उसका यह प्रमाण है। भले ही कोई अपवाद हो वह अपवाद ही।

मुसलमान और ईसाई अपने धर्म में कितनी श्रद्धा भक्ति रखते हैं, यह सबको विदित ही है। उनके लेग्लीज (मंदिर) और मसजिदें, उसका प्रमाण है। मसजिद के एक पत्थर के लिये प्राण देने या लेने तक वे सदैव तैयार रहते हैं। अपने धार्मिक अवसरों पर हजारोंकी संख्या में वे कैसे जुटते हैं, यह भी लोग नित्य देखते हैं। कैसी शांति से वे पूजा–पाठ (प्रार्थना) करते हैं, यह भी हम देखते हैं। ईसाईयों की कई संस्थाएँ हैं, जिनके द्वारा गरीबों की और बच्चों की परवरीश की जाती है। ऐसे कामों के विचार तक हमारे दिलमें अब तक नहीं उत्पन्न होता है। जल चढानेसे धर्मात्मा हो जाता है, अब उसे क्या करना बाकी है ?

अब पुनः एक बार एक और दृष्टि से देखना चाहिये कि, ऐसी श्रद्धा–भक्ति हम हमारे धर्म के प्रति रखते हैं या नहीं ? हमारे मंदिर हमारी संस्थाएँ और कथा भागवत इत्यादि के बारे

में हमने लिखा ही है। उससे यह प्रतीत होता है कि, ऐसी श्रद्धा-भक्तिका हिन्दुओं में अभाव सा है। उनमें धर्म भावना (Sentiment शाचिमा) जरूर है; पर श्रद्धा नहीं है। हमारे व्याख्यान दाता सदैव हिन्दुओंको कोसते रहते हैं कि, हिन्दू जाति मूर्दार है, उनमें धर्म श्रद्धा नहीं है, उनमें संगठन नहीं है, वे मंदिरोंमें नहीं आते है, वे कथा पुराणमें रुचि नहीं रखते आदि हम रोज सुना करते हैं। पर अन्य धर्म वाला जब कुछ कहता है, तब हम उसपर गुस्सा करते हैं। कारण यही कि, हमारी धर्म भावना अभी तक जागृत है। महम्मदका उपहास करनेके कारण हिन्दुओं ने अपने प्राण गँवाये हैं; पर राम-कृष्ण को गाली देने वाले को हिन्दुओं ने कभी प्राण दंड नहीं दिया है।

भावना और श्रद्धा इन दो शब्दोंमे क्या फर्क है, यह हमारे पाठक अब बराबर समझ गये होंगे। हिन्दुओंकी अपने धर्ममें वैसी श्रद्धा किसी समयमें थी या नहीं, हम नहीं कह सकते है। बारह सौ साल से मुसलमानोंका हिन्दुओंपर आक्रमण होता आया है। हजारों शिवालय नष्ट--भ्रष्ट कर दिये गये हैं; पर हिन्दुओंके धर्म-युद्ध घोषित करनेका प्रमाण, जैसा कि मुससलमानोंके विरुद्ध ईसाइयो ने क्रुसेडके नाम से धर्म-युद्ध पुकारा था; इतिहास मे नहीं मिलता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि, व्यक्तियों ने या कतिपय लोगों ने खास कर सिक्खों ने हिन्दू धर्म का मुख समय २ पर उज्वल किया है, और अपनी श्रद्धा का तेज प्रकट किया है तथा मोरिशसमें भी ऐसी

व्यक्तियां मिल सकेंगी। परन्तु धर्म, पांच पचास व्यक्तियोंका या एक जातिका प्रश्न नहीं है। वह औसत हिन्दू का प्रश्न है, और इस दृष्टि से देखने से यही मालूम होता है कि, हिन्दुओं मे औरोंकी जैसी श्रद्धा नहीं है; केवल भावना है। अन्य शब्दोंमें यह कहना होगा कि, 'रस्सी जल गई; परन्तु बल नहीं गया।' वायुकी एक झपट लग जाय, तो यह जला बल भी हवा में उड़ जायगा और हम भी दूरबोन के ईसाई मद्राजियों की पंक्तिमें आ बैठेंगे।

हिन्दुओंमे श्रद्धा कम होने के कारणों की मीमांसा करते हुए हमने पिछले प्रकरण मे बताया है कि, अनेक देवी देवता, पंथ और धर्मपुस्तकोंको माननेसे हिन्दुओंके लिये श्रद्धाका कोई केन्द्र नहीं रहा और वह सर्वत्र थोड़ीर बटी जानेसे कमजोर हो गई। उदाहरणों द्वारा इस दृश्यको हमने सिद्ध किया है। हमारी श्रद्धा निर्जीव होनेका दूसरा बलवान कारण यह है कि धर्म और वेदांत दोनोंको हमने एक ही माना है। भागवतके एक अध्यायमें मूर्तिपूजाका मंडन, विधि और आज्ञा है तो दूसरे अध्यायमें निराकार परमेश्वर की स्तुति है। अब किसकी पूजा करें, साकार की या निराकार की? धर्म पुस्तकों के अनुसार दोनों पूजनीय है। धर्मका एक सिद्धांत कहता है कि, श्राद्ध करने से मृतककी मुक्ति होती है, तो दूसरा सिद्धांत बतलाता है कि, मनुष्यको अपने कर्मोंका फल भोगना ही चाहिये। इसमें सच्चा और झूठा कौनसा? धर्म और वेदांतकी इस खिचड़ी ने धर्मका स्वाद बिगाड दिया है। सर्वसाधारण जनता इन्हीं संदेहोंमे डुबकियां मारती रहती है और जहां सन्देह आया वहां श्रद्धा घटी।

मुसलमानके लिये उसका अल्लाह और उसका महम्मद यह जोडी, उसका स्वर्गका द्वार खोल देती है। ईसाई धर्ममें भी ऐसी ही बात है। परन्तु हमारा श्रेष्ठ ग्रन्थ गीता सिखाता है कि, चार योग यथा कर्म, ज्ञान, भक्ति और संन्यास। इनमें से किसी भी एक योग द्वारा स्वर्ग प्राप्ति हो सकती है। यहां बुद्धि भेद हो गया और वह चक्करमें पडी कि, इन चारमें से कौनसा योग अच्छा ? यह बात सच है कि, हमारा धर्म या धर्म-शिक्षा, व्यक्ति पर जबरदस्ती नहीं करती है; किन्तु वह उसको अपनी बुद्धि और शक्तिके अनुसार ईश्वर प्राप्ति का मार्ग पसन्द करनेको पूरा स्वातंत्र्य देती है। हमारे इस धार्मिक स्वातंत्र्य से कुछ व्यक्तियोंका शायद कुछ लाभ हुआ हो; परन्तु यह निःसंदेह है कि, उसने हिन्दू समाजका तो गला ही घोट दिया है। यदि कोई धर्मिष्ठ धर्मके लिये मरता है या मारता है, तो वेदांती उसको हँसता है!! श्रद्धामें शक्ति या जोश आवे कैसे ?

मेरा सिद्धांत और मेरे मार्गमें मेरा भाव और दूसरों में मेरी उदासीनता। यही आज हमारे धर्मका स्वरूप हो गया है, जिसमें श्रद्धाका नाम ही नहीं है।

एक घरके चार भाईयोंमें मतभेद हो तो घरका प्रबंध ठीक नहीं होता है, हर एक अपनी ओर खींचता है और कार्य बिगड़ जाता है, यह हमारा प्रति दिन का अनुभव है। यही दशा हमारे धर्म की है। व्यक्ति२ की यह भावना, समाजका फायदा नहीं करती है और यही कारण है कि, अनेक सिद्धांत और

Mr Bheembhai G kala, Secretary of the Kathiawad society and designer of the Port Louis bi-centenary medals

अनेक मार्ग मानने वाले हिन्दुओंका संगठन नहीं हो सकता है, जिससे कि वे एक प्रचण्ड शक्ति को पैदा कर सके। किन्तु यह अनेकता ही समाजमे ईर्ष्या और मतभेद उत्पन्न करके उसके टुकडे२ बना देती है और उसकी शक्तिको क्षीण करती है। इसी अर्थमे हमने कहा है कि, हमारे धार्मिक स्वातंत्र्य ने हमारा गला काटा है।

धर्मसे संगठन, संगठनसे शक्ति, शक्तिसे अभ्युदय और अभ्युदयसे ईश्वर प्राप्ति। यदि यही धर्मका उद्देश्य हो तो साफ कहना चाहिये कि इस उद्देश्य की परिपूर्ति के लिये प्रचलित हिन्दू धर्म सर्वथा असमर्थ है। धर्ममें सिद्धांत की जबरदस्ती होनी चाहिये; जैसी कि और धर्मोंमें पायी जाती है। तब हीं उनमें शक्ति पैदा होगी। हिन्दुओंपर ऐसी जबरदस्ती न होनेसे उनकी कितनी हानि हुई है, यह हमने इस पुस्तकमे बार२ बताया ही है। यह सब पढ़कर यदि कोई इस विचार पर आ जाय कि इस बूढे घोडेको रोज दस लीवर (सेर) चना खिला कर उसमें जवानी तेजी, और पुष्टि लानी चाहिये। इस संबंधमें हम एकदम से कह देना चाहते हैं कि, यह होना अब अशक्य है। घोडेका जठराग्नि मंद हो गया है उसको कितना ही मलीदा खिलाओ कुछ नहीं होगा। उसकी काया पलट ही करनी चाहिये, जिसके लिये कोई अन्य मार्ग ढूंढ़ना चाहिये।

इटली अबिसिनिया युद्धमें इटली के तमाम सैनिकोंके हाथ में एक ही प्रकारकी बंदूक, एक ही प्रकारकी वर्दी (पोशाक) और

एक ही सेनापतिकी हुकूमत होनेसे तलवार, बंदूक, जंबिया, भाला, बर्ची ले कर बीसों मुखियोंकी हुकूमत मानने वाले पाच हजार अबिसिनिया के सैनिक, एक हजार इटालियनोंका सामना नहीं कर सकते थे, यह तो हमारे पाठकों ने सुना ही होगा। एकता और अनेकता मे यही फरक है। एकतामें बल है और अनेकता मे निर्बलता है। एकताका प्रचार करने वाले धर्मों के सामने अनेकता का प्रचार करने वाला धर्म क्यों नहीं खडा हो सकता है। यह हमारे पाठक अब जान गये होंगे।

इटली अबिसिनिया यहां से दूर है, इस लिये खास अपने घरका याने मोरिशस का ही दर्शन, इस सम्बन्ध मे, हम हमारे पाठकोंको करा देते हैं। यहां की चीनी प्रजाको देख लीजिये। उनकी सन्तान धडाधड ईसाई होती जाती है। कारण यही कि उनपर उनके धर्मकी सख्ती नहीं है। हमारी तरह उनको भी धर्मका स्वातंत्र्य है। अब इसके विरुद्ध मुसलमानोंको देखिये। उनमे धर्मकी जबरदस्ती है और उसीसे उनकी धर्म श्रद्धा दृढ रही है। वे पर धर्म में नहीं जाते है। उनका संगठन बना हुआ है और उसी कारण उनका समाज शक्तिशाली बना रहता है।

धर्मका विशुद्ध स्वरूप लोग जाने, धर्म धर्म मे झगडा न हो और संसारमे धार्मिक शांति रहे; इस हेतु से वेदान्त कितना ही लाभदायी क्यों न हो, सर्वसाधारण जनता के लिये धार्मिक जोश की दृष्टि से वह हानिकारक ही है। भारतवर्षके वेदांत ने भारत का सिर दुनियामें ऊंचा किया है, पर उसके हाथ पांव काट डाले हैं।

हमारी श्रद्धा में कट्टरता न होनेका और भी एक कारण है।

स्मार्त, वैष्णव और शाक्त—शिव, विष्णु और शक्ति के उपासक—आपसमे लड़ते रहे और एक दूसरेके देवता को नीचा दिखाने लगे। पुराणों से ही यह बात सिद्ध है। इस लड़ाई झगड़ेसे कुछ लाभ होनेकी संभावना नहीं देखनमे आई तब उनमें एक सुलहसी हो गई और हमारा भी अच्छा तथा तुम्हारा भी अच्छा माननेंकी प्रवृत्ति हिन्दुओंमे उत्पन्न हुई। एक ही मंदिरमे हरिहर की पूजा होने लगी। उसीमे देवी भी चली आई सब मंदिर Pantheon हो गये अर्थात एक ही मंदिरमे सब देवी देवताओंकी पूजा होने लगी। इसीको अंग्रेजी मे Toleration याने सहिष्णुता कहते है। इस सहिष्णुता भाव ने भी हिन्दुओं की श्रद्धा को और कमजोर बना दिया है। जब दूसरों क देवी देवता भी हमारे जैसे ही पूजनीय है, तब हमारेमें विशेषता क्या और उनपर ही दूसरोंसे अधिक श्रद्धा क्यों करनी चाहिये? ईसाई या मुसलमान कभी ऐसी सहिष्णुता स्वीकार नहीं करते हैं। उनका ही धर्म सच्चा और बाकी सब धर्म झूठे यह उनका महान सिद्धांत है और इसी वास्ते उनकी श्रद्धा भक्ति भी वैसी ही जबरदस्त है। राम रहीम एक है यह कहने वाले हिन्दुओं में करोडों मिल जायेंगे पर मुसलमानोंमें कितने मिलेंगे?

हिन्दू धर्मके हित चिन्तक ये सब बाते स्पष्ट रीतिसे जनता के सामने रखते नहीं। जनता भी ठीक तौरसे नहीं समझ सकती हैं कि, उसको हुआ क्या है? रोगका ज्ञान हो

जाने पर कुछ न कुछ दवा मिल ही जायगी। हमारी खरी स्थिति हम पर प्रकट हो जाय तो, लोग विचार कर सकेंगे कि उसके सुधारनेमें क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये ?

हमको मोरिशसमें २४ वर्ष हो गये हैं। हमने बहुत कुछ देखा है, किया है और सुना है। और एक साल बाद हम हमारे 'मोरिशस निवास' की पाव शताब्दी अथवा रजत जुबिली, हरि इच्छा हो तो मनायेंगे। और कदाचित यहां से रुखसत भी होंगे। ये भविष्यकी बातें हैं जिनपर हमारा ताबा नहीं है; सिर्फ हम हमारी इच्छा प्रकट कर रखते हैं। इससे पहले हमारे विचार यहा की हिन्दू जनताके सामने सद्भावसे; पर स्पष्ट रीति से रखनेका हमने संकल्प किया और उसी उद्देश्यसे यह पुस्तक लिख कर हम उसको आपकी सेवा में अर्पण करते हैं। अगर यह काम हम नहीं करते तो दूसरा कोई आज नहीं कल जरूर ही करता। इस वास्ते "शुभस्य शीघ्रम्" याने शुभ काम शीघ्रतासे करना चाहिये अथवा delay is dangerous अर्थात विलंब भयावह है। इन संस्कृत और अंग्रेजी वचनोंके अनुसार हम ही उसको कर डालते हैं।

## विरोध में शक्ति ।

विरोध करनेमें मनुष्यकी आत्मामें तेज पैदा होता है, उसमें साहस आ जाता है और बुद्धिका भी विकाश होता है। गुरु नानक ने सिक्ख पंथकी स्थापना की। लगभग दो सौ वर्ष तक यह पंथ माला जपता रहा और उससे कुछ नहीं बन सका। पर मुसलमान शासकों के अत्याचारोंका जब सिक्ख लोग विरोध करने लगे, तब उनमें एक ऐसा तेज उत्पन्न हुआ कि, जिसमें मुगलोंका राज्य जल कर खाक हो गया और सारे पंजाब के स्वामी, महाराजा रणजीत सिंह बन गये। शिवा जी महाराज ने इसी मार्ग से हिन्दू साम्राज्य की स्थापना की। करीब ३०० साल तक मराठा जाति दब्बू बन कर मुसलमानोंकी सेवा करनेमें निजको धन्य समझती थी। शिवाजी ने सेवावृत्ति को ठुकराया और उसने मुसलमान सुलतानोंका सामना किया। इस विरोध में मराठोंका तेज चमका और सौ वर्षके भीतर हिन्दुस्थान भर में उनका साम्राज्य फैल गया। विरोधमें कितनी शक्ति है, उसके ये ऐतिहासिक प्रमाण हैं। मतलब यह कि; कोई केवल जाति के कारण किसीको नीच कहने लग जाय तो उसका तुरन्त निषेध और विरोध करना चाहिये। तब ही ऊंची जातियां संभल कर चलेंगी। नाक दबाने से मुँह खुलता है, यह हमारे पाठक जानते ही होंगे। नीच कहने पर कोई 'ओ' कहेगा प्रलय पर्यंत वह नीच ही बना रहेगा।

ऊंची जातियोंका आत्मगौरव कैसे लुप्त हो गया है, यह ऊपर

हमने बताया ही है। विरोधके सामने ऐसी जातियोंका सिर झुकना ही चाहिये। नीच दशामे रहने वाले और उनको उसमे रखने वाले दोनों तीसरे मुकाबिले मे नाश हो जाते हैं। हिन्दुस्थान, ग्रीस और रोमका इतिहास इसका साक्षी है। इस बीसवीं सदी मे और मोरिशस जैसे टापू मे भी निजको हलका माननेमें ही धन्य समझने वाले लोग हैं, यह देख कर खेद होता है।

मोरिशस में हमारे पडोसी क्रेओलों का उदाहरण हमारे सामने है। किसी भद्दे क्रेओलोंकी भी 'मोंशे' नहीं कहो और वैसी ही गंदी औरत को 'मदाम' नहीं पुकारो, तो आंखे लाल करके तुम्हारी खबर लेगे। उनके साथ वातचीत करो तो पहले 'बोंजू' कहो अपनी मान मर्यादा वे जानते हैं और शिष्टाचारमे न्यून देखते ही गुरगुराते हैं। हमारी इच्छा न होने पर भी क्रेओल हजाम और क्रेओल चमार को हम 'बोंजू' बोलते हैं तथा उनसे हाथ मिलाते है। वैसा नहीं करो तो वे तुम्हें असभ्य समझेंगे और सुना भी देंगे। उनके इस विरोधी-मनोवृत्ति के कारण हमे झक मारके 'बोंजू मोंशे' कहना ही पड़ता है।

बच्चा रोता है, तब उसकी माता को प्यार से या लाचारी से काम काज छोड कर उसे गोदमें उठाना ही पडता है। बच्चे का रोना यह उसका अपनी माता प्रति विरोध ही है। जहां अपनी इच्छा, फलद्रूप होती नहीं, वहां विरोध आवश्यक है; किन्तु प्रकृति ही वैसा करने पर बाध्य करती है। अपने विषयकी ओर किसी का ध्यान आकृष्ट करना है, तो वह विरोध से भली

प्रकार हो सकता है। जर्मनी के मार्टिन लूथरने पोप का विरोध करके धर्म-सुधार किया। दयानन्द ने स्वामी प्रचलित हिन्दू-धर्मका विरोध करके धर्म संशोधन किया।

विरोध का अर्थ युद्ध नहीं है। डंडे से या गोली से विरोध करने की शिक्षा हम नहीं दे रहे हैं। सभ्य संसार मे इस विरोध का अर्थ अथवा प्रतिशब्द, निषेध या प्रतिवाद होता है। जिसको अस्वीकृति के अर्थ मे भी हम ले सकते है। सत्याग्रह भी इसी का नाम है। किसी के कोई काम, व्यवहार या वचन प्रति हम हमारी अस्वीकृति अथवा अप्रसन्नता प्रकट करते हैं, तब वह निषेध या विरोध हो जाता है और ऐसे ही विरोध के लिये हम कह रहे हैं।

हिन्दुओं में, जो वृथाभिमान फैला हुआ है, उसको हटानेका एकमात्र शीघ्र उपाय, निशेधरूपी विरोध ही है। इससे जाति जाति में कुछ कालके लिये कहीं२ क्षोभ उत्पन्न होने की संभावना है; परन्तु उसे अनिवार्य मान कर देश जाति के अंतिम लाभके ऊपर दृष्टि रख कर, सहन करना ही होगा। बुखार का विरोध किनीन के सेवन से होता है। किनीन खानेसे गरमी (क्षोभ) अधिक पैदा होती है; पर वह बुखारी गरमीको हटा देती है और स्वास्थ्यका लाभ कर देती है। इस लिये उपरोक्त प्रकार के विरोधसे यदि कुछ क्षोभ उत्पन्न हो जाय, तो उसकी फिकर नहीं करनी चाहिये। अंग्रेजों के राज्यमे हमे शान्ति का समय प्राप्त हुआ है और ऐसे समय में ही हम कुछ सामाजिक सुधार

के कार्य कर सकते हैं। हिन्दुस्थानियों के राज्यमें समाज या धर्म सुधारका कार्य होना कठिन ही है और अंग्रेजों के आने से पहले ऐसा कोई कार्य नहीं हुआ था, यही उसका प्रमाण है। इस समय भी देशी रियासतों में आर्यसमाजके प्रचारकों को कहीं कहीं आने नहीं देते हैं। कुछ दिनों से मुसलमानों में एक कादियानी नामका पंथ निकला है। अंग्रेजी राज्यमें उसका प्रचार हो सकता है; परन्तु किसी मुसलमानी देशमें उसके प्रचारकको जिन्दा नहीं रहने देंगे जैसे कि अफगानिस्तानमें उनके एक प्रचारक को पत्थरों से मार दिया गया था। अंग्रेजी राज्यमें ही हमें धर्मका स्वातंत्र्य मिला है, उससे पूरा लाभ उठाना चाहिये।

हमारा स्वभाव दब्बू बन जाने के कारणों की चिकित्सा हमने की ही है। दुष्ट राज्य, दुष्ट रीति रवाज तथा अत्याचार के सामने हम हमेशा गर्दन झुकाते आये हैं। अब गर्दन उठानेका समय आ गया है उससे पूरा२ लाभ उठाना चाहिये। गर्दन उठाने की आदत हो जायगी, तो हमारा सारा दब्बूपन भाग जायगा। हमारा सारा समाज बलवान और वीर्यशाली बनेगा और तब कौन हमको जंगली बता सकेगा? धन, विद्या, सदाचार होने पर भी अगर हम सदैव तुच्छ ही गिने जायेंगे और जिसके पास उनमेंसे एक भी न हो, पर केवल जाति के कारण उसकें सामने सिजदा (सिर झुकाना) करना पड़ता हो, तो समझ लो कि, ऐसे समाजमेंसे मनुष्यत्व ही निकल चला गया है। यह महात्मा गांधीका वचन है। हम यहां पर यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि, कोई सिद्धांत, रीति या रूढि, प्रचारमें आती
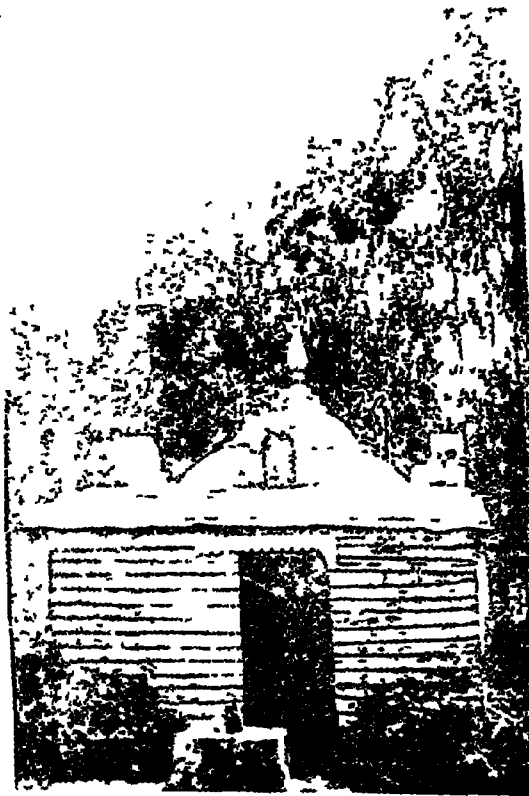
Temple of Mari Ammen Photo by the kindness of
Mrs Widow Narainsamy Kistnen of Quatre Bornes

है, उसका कोई खास कारण होता है। कार्य कारण के इस नित्य सम्बन्ध को कभी नहीं भूलना चाहिये। रक्तकी शुद्धि कायम रखने के लिये गुणकर्मानुसार ऊंच नीच वर्ग समाज प्रचलित हुए होंगे और प्राचीन समयमें समाजके पोषणके लिये उसकी आवश्यकता होगी तथा उस सम्बन्धमें जो सामाजिक निर्बंध बनाये गये थे, वे भी उस समय के वास्ते उचित ही होंगे। अर्थात पूर्वजोंको दूषण देना मूर्खता ही होगा। अधिक मूर्खता इस बातमें होगी, जब कि उन बूढ़ों बंधनोंसे आज भी हम हमारे हाथ पांव बंधाने में राज़ी होंगे। इस समय रक्त शुद्धि का प्रश्न नहीं है। वर्तमान सारा २५०,०००,००० (दे सां सेंकांत मिलियों) हिन्दू-समाज आज आर्य और ऋषि मुनि की संतान बन गया है। इस हालतमें धार्मिक दृष्टिसे ऊंच नीच कौन और उसकी आवश्यकता क्या? ऋषि मुनिकी संतान होने पर भी वे ऋषि मुनि नहीं है, इस बात को हम स्वीकार करते हैं। महात्मा का पुत्र मियाजी बन जाता है, यह हम सब जानते ही हैं। अर्थात्, जो कुकर्मी है उसको नीच ही मानना पडेगा; परन्तु बिना उसके गुण कर्म जाने ही उसके सिर पर नीचताका 'यावद् चंद्र दिवाकरौ' का टीका लगा देना मानों कि ऋषि कुलका घोर अपमान करना है। जब एक भाई बिना योग्य कारण के अपने दूसरे भाई को नीच कहने लगता है, तब ही तो विरोध उत्पन्न होता है। आज के हिन्दू-समाजके सामने यही प्रश्न उपस्थित हुआ है कि, उसके एक अंग मंगल और दूसरा अमंगल कैसा? जब तक इसका ठीक उत्तर नहीं मिलेगा तब तक आपसमें खींचातानी होती रहेगी और पश्चात हमारे न कहने पर भी विरोध होगा।

आर्यसमाज गुण कर्मानुसार जाति व्यवस्था मानता है; परन्तु आजतक उसमे केवल पंडितोंकी ही पैदायश हुई है। उसमे क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कौन हैं, उसका पता नहीं लगता है। अर्थात प्रत्यक्ष व्यवहार मे उसमे दो ही जातिया याने वर्ण देखनेमे आते हैं, एक ब्राम्हणका दूसरा अब्राह्मणका। चार वर्णोंको मानना और दो वर्णों को ही रखना इससे सिद्धात और व्यवहारमे कुछ विसंगति आ जाती है; परन्तु वह प्रश्न आर्यसमाजका है। प्रत्यक्ष व्यवहार देखनेसे ऐसा मालूम होता है कि, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र इन तीन जातियोंका आर्यसमाज ने लोप कर दिया है और उनके स्थान पर अब्राह्मण नामकी एक नई जाति उत्पन्न कर दी है। आर्यसमाजकी यह व्यावहारिक जाति-व्यवस्था, हम समझते है कि, पुरुषवर्गको ही लागू है। समाजका दूसरा अंग, जो स्त्री उसकी जाति कौनसी? औसत हिन्दू स्त्री, कुछ अपवाद छोडकर दो ही कर्म करती है। गृह-कार्य और संतानोत्पादन, किन्तु संसार भर की स्त्रियोंके ये ही दो मुख्य कर्म हैं। ब्राम्हण, क्षत्रिय, या वैश्यके कर्म वे नहीं करती हैं; इस लिये क्या उनको शूद्र की जाति देनी चाहिये। आर्यसमाज ने स्त्री के वर्णके सम्बन्ध में क्या व्यवस्था दी है, हमको विदित नहीं है। लेकिन चूं कि व्यवहार मे तीन जातियोंका लोप हो गया है और उनके स्थान पर अव्यक्त और अदृष्ट अब्राम्हण नामक नई जाति निर्माण हुई है, शायद स्त्रियोंको भी उसीके साथ बिठाना ठीक होगा।

आर्य समाजका जाति विषयक सिद्धात और जातिके नामों के साथ नहीं, पर उसकी व्यावहारिक जाति-व्यवस्था के साथ हमे

सहमत हैं। ब्राह्मण और अब्राह्मण नामोंके बदलेमें बुद्धिजीवी और हस्तजीवी ये जाति वाचक नाम हम अधिक पसन्द करते हैं। अगर जातियोंकी जरूरत है तो ये ही दो जातियां मानना ठीक होगा. डाक्टर, बेरिस्टर, इन्जीनियर, लेखक, कवि, उपदेशक, अधिकारी, अध्यापक, पूंजीपत्ति, विद्वान, पुरोहित, दलाल, साधु सन्यासी आदियों को हम बुद्धिजीवी कहते हैं। ये लोग अपनी जीविकाके वास्ते कोई शारीरिक कष्ट अर्थात अपने हाथसे कोई काम नहीं करते हैं; किन्तु अपनी बुद्धि और ज्ञानके बलसे अपना पोषण करते हैं। शेप समस्त व्यवसाय यथा शिल्प, कला, वाणिज्य, खेती, सेवा, हुनर, धंधा, मजदूरी आदि करने वालों को हम हस्तजीवी जातिके समझते हैं। इस जाति के लोगोंको अपने उदर–भरणके लिये अपने हाथ से काम करना पडता है और इसीसे हम इनको हस्तजीवी कहते हैं। समाजका भरण--पोषण और सुख--शाति के लिये दोनों की आवश्यक्ता है और दोनो मान भरे हैं।

हम जिस विरोध के सम्बन्ध में लिख रहे है वैसा विरोध आर्यसमाज भी कैसे कर रहा है, इस बात को बताने के लिये ही हमने उपरोक्त विवेचन किया है। दोनोंमे फरक इतना ही है कि, पहिले "नमस्ते" सीख कर फिर उसका विरोध शुरू होता है और हमारा विरोध "पॉवलगी" में से निकल आता है !!

भारत की हिन्दू महा सभा का विचार है कि, समस्त हरिजनों को क्षत्रिय बना दिया जाय। प्रचलित हिन्दू समाजका यह एक भारी विरोध है। हरिजनोंके सुप्रसिद्ध नेता डाक्टर आंबेडकर बारि-

स्टर-ऐटलॉ ने तो घोषणा कर दी है कि, हरिजनों को हिन्दू धर्म का त्याग करके किसी दूसरे धर्म में प्रवेश करना चाहिये। इस घोषणासे विचारशील हिन्दू लोग घबरा उठे हैं। हिन्दू समाजका यह विरोध नहीं; किन्तु उसके साथ वह युद्ध है। हिन्दू धर्मका उसमें धिक्कार है। मोरिशमका हिन्दू समाज सुधारवादी है। जैसे जैसे दलित जातियोंका विरोध बढता जायगा, वैसे वैसे हिन्दू समाज उनकी आकांक्षाओंकी परिपूर्त्ति करनेमें, हमें आशा है कि, संकोच नहीं करेगा अपने भाईको अपने ही घरमें दबा रखनेके कुफल हम चाख रहे हैं। हमारी इतनी बडी संख्या होनेपर भी—इंग्लेण्ड, फ्रांस, इटली, जर्मनी और जापान इन सबोंसे अधिक—हम इतने निर्बल है उसका कारण वही है। यह तो हमे विश्वास है कि, डा० आंबेडकर का अवतार मोरिशसमे नहीं होगा; परन्तु यह नहीं समझना चाहिये कि, यहां विरोधकी आवश्यकता नहीं है। गुण कर्मानुसार, जब तक समाजके हर एक व्यक्तिको समानताके अधिकार प्राप्त नहीं होते हैं, तब तक यह प्रतिवाद या प्रतिक्रिया जारी रखनी ही चाहिये। ऐसे विरोधमें शक्ति और शक्तिसे आत्मविश्वास और उससे शौर्य उत्पन्न होता है और सारा समाज मर्द बनता है। ऊंची जातियोंमें विचार उत्पन्न करना यही विरोधका ध्येय होना चाहिये। हमारे दुर्बल समाजको बलवान बनानेके जो जो उपाय या साधन होंगे, उन सबोंको काममे लेना चाहिये विरोध भी एक उपाय है और इसी वास्ते हमने उसपर थोडा लिखा है।

# मुसलमानोंसे शिक्षा।

इस पुस्तकमें अनेक बार मुसलमान जाति का उल्लेख आया है। हिन्दू और मुसलमान दोनों एक ही देशसे यहां आये हैं। दोनों एक ही भाषा बोलते हैं। अधिकतर मुसलमान हिन्दू-वंशके ही हैं। एक हजार वर्षोंसे वे एक दूसरेके पडोसी की हैसियत से रहते आये हैं। बहुतसे मुसलमानोंको खासकर बूढ़ोंको धोती पगडीमें देख कर यही विदित होता है कि, उनकी सभ्यता भी हिन्दुओं से मिलती जुलती है। दोनों एक ही अंग्रेजी राज्य की प्रजा हैं। दोनों की सरकारी शिक्षा एक ही किसिमकी है और दोनों की नागरिक अधिकार भी समान हैं। सुख दुःखमें भी वे ऐसे ही संलग्न हैं। यह सब होने पर भी मुसलमान--समाज अपनी पृथकता रखनेमें सदैव दक्ष रहता है। अपने व्यक्तित्वके लिये मुसलमानको अधिक ख्याल रहता है। हिन्दुस्थानमें उन्होंने लगभग १,००० वर्ष राज्य किया है। इस बातको शिक्षित मुसलमान भूल नहीं सकता है और वह यह जोश से मानता है कि, संसार के उत्तम धर्मका वह अनुयायी है। धर्म-पालन तथा जाति के हित गौरवके लिये आत्म बलिदान करनेमें तो दूसरा कोई समाज उनका हाथ नहीं पकड़ सकता है। मोरिशसके २५०,००० हिन्दुस्थानियोंमें वे केवल ५०,००० याने पांचवां हिस्सा हैं, तो भी जीवन संग्राममें वे हिन्दुओंसे बढ़े चढ़े हैं। दोनों (बंबई प्रांतके मुसलमान व्यापारियोंको छोड़ कर) कुदाड़ी ले कर ही यहां आये; परन्तु मुसलमानों ने कुदाडी फेंक दी है और शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि जो भी हाथ लगे उसे पकड़ वे जीवन

युद्धमें अग्रसर होते हैं और विजय पाते हैं। उनकी संख्या इतनी अल्प होने पर भी उनकी मोटरें, बिस, नौका, छापेखाना, धंधे, हुनर, सिनेमा, होटले, नौकरी, दुकाने, शिक्षा, खेती, व्यापार, जायदाद, राजनीति इत्यादिमें उन्होंने ऐसे पाव फैलाये हैं कि, बेचारे हिन्दू तो क्या क्रेओल और गोरोंको भी उनकी लातें लगने लगी हैं। मानों कि वे सबको ठेल रहे हैं।

बुद्धिमत्तामें भी वे कम नहीं हैं। दो लाख हिन्दुओंने एक लोरियेट (लोरिया) पैदा किया, तो आधे लाख मुसलमानोंने दो लोरियेट उत्पन्न किये। सरकारी न्याय विभागमें उनके एक माजिस्ट्रेटने तो हिन्दुस्थानियोंके यहाके इतिहासका एक पन्ना ही उलाट दिया है; क्योंकि वह पहला हिन्दुस्थानी माजिस्ट्रेट है। धन संपत्तिमें राजधानी पोर्ट लुईसके करीब तीन हिस्से मकान उनकी जायदाद है। इतना कहनेसे ही उनकी मालदारीका पता लग जाता है। उनका शहरकी भव्य और मनोहर मसजिद एक प्रेक्षणीय स्थान है और यात्री लोग उसका दर्शन करने आते हैं। पोलिटिक्स याने राजनीतिमें भी वे दम भरते हैं और शहरमें तो क्रेओलोंके वेही प्रतिद्वंद्वी हैं।

हमारी धारणा है कि, और ३०-४० साल बाद पोर्ट-लुइस शहरका कारोबार याने म्युनिसिपालिटीपर मुसलमान सहाल अपना कब्जा कर लेगा। गोरे लोगोंने तो शहर छोड ही दिया है और सुखी जो क्रेओल हैं, वे भी गोरोंका अनुकरण करते जाते हैं। नौकरी और काम धंधोंके लिये उन्हे

शहरकी गरम हवामे आना पडता है; परन्तु उनके निवास स्थान पोर्ट लुईससे १०–१५ मील दूर ठंडी हवामे होते है। शहरमें रहने वाले क्रेओल ( निग्रो वंशकी मिश्र ईसाई प्रजा ) अधिकांश मे गरीब और मजदूर है। हिन्दू बहुत थोडे है चीना तो अत्यन्त अल्प है। अब रहे मुसलमान। व्यापार, दुकानदारी, जायदाद तथा फुटकल हुन्नर धंधों मे उनकी प्रधानता होनेसे उनके कर भरने की शक्ति के कारण म्युनिसिपालिटी पर उनका प्रभुत्व हो जाय तो वह कम प्राप्त ही है। एक सालसे म्युनिसिपालिटीका उन्होंने बहिष्कार किया है और उसकी धाक क्रेओलोंको लग रही है। यह बहिष्कार उनकी शक्ति और संख्या का साक्षी है।

मुसलमानों की यह प्रगति और उनका दबदबा देख कर हिन्दुओंके मुँहमे लार टपकने लग जाय या ईर्ष्या पैदा हो तो वह मनुष्य स्वभावके अनुकूल ही है। एक कुटुम्ब के मनुष्यों मे; किन्तु भाई भाई मे भी जब हम ईर्ष्या भाव देखते हैं, तब भिन्न धर्मीय हिन्दू मुसलमानोंमे वह जरा अधिक मात्रामे देखी जाय, तो उसमें कुछ भी आश्चर्य की बात नहीं है। परन्तु आश्चर्य इस बातका है कि, कम संख्या वाले मुसलमान, जिन गुणोंसे हिन्दुओंपर मात करते आये हैं, उनका अनुकरण या उनसे शिक्षा, एक हजार वर्ष बीत जाने पर भी उन्होंने नहीं ली है।

महमूद गजनी ने, जो किया सो किया। फिर लगभग २०० सालके बाद मुहम्मद खिलजी ने ईसवी सन् ११९९ में याने आज से ठीक ७३७ वर्ष पूर्व केवल १८ अफगान सवारोंकी एक टोली

साथ लेकर विशाल बंगाल के ब्राह्मण राजा पर आक्रमण किया और विना युद्धके सारे बंगाल को कबजा किया! ऐसे और भी उदाहरण हैं। मुसलमानोंको, जो कुछ लडना पडा है, वह उत्तरमे याने पंजाबमे ही। दिल्लीसे नीचे उतर आने पर तो उन्होंने सर्वत्र 'आओ घर तुम्हारा' यही स्थिति पाई है। सारा हिन्दुस्थान पादाक्रांत हुआ; पर कभी हिन्दुओंके दिलमें यह विचार नहीं आया कि, ऐसा क्यों हुआ? न अपनी निर्बलताके कारणों की ही उन्होंने खोज की न मुसलमानोंके विजयकी ही मीमांसा की। मुसलमानों का संगठन, उनकी वीरता, उनकी एकता, उनकी धर्मश्रद्धा और उनके साहस ने हिन्दुओंको जरा भी नहीं जगाया। क्या यह थोडे आश्चर्यकी बात है?

यह तो हिन्दुस्थानकी बात हुई और मोरिशसमें जो वे पुरुषार्थ कर रहे हैं, उसके सम्बन्धमें हमने ऊपर और अन्यत्र लिखा ही है। यहा और एक बात का निर्देश करना हम आवश्यक समझते हैं। हिन्दुस्थान के राजनीतिक नेता, हिन्दुओंकी कमजोरियोंके लिये अंग्रेज सरकारको ही कोसते रहते हैं। मुसलमानोंकी वीरताका कारण भी अंग्रेज लोग ही!! अपना दौर्बल्य ढापनेके लिये अंग्रेजोंको मुसलमानोंके पक्षपाति कहकर अपने उत्तरदायित्वसे छूट जानेका यह एक अच्छा दाव है पर इसमे वे अपनी और अपनी जातिकी वंचना करते हैं। इस बातकी ओर उनका ध्यान नहीं जाता है। उनकी इस नीतिसे हिन्दुओंको आत्म-संशोधन करनेकी सूझती नहीं और वे अधिक निस्तेज बनते जाते हैं। इतिहास कालमें लोग कर्म-फल मानकर समा-

Mr D Bonamally, Treasurer A P Sabha and Manager
Vaidıc Aryan Aıded School, Vacoas

घातकर लेते थे और वर्त्तमान कालमें अंग्रेजोंको पक्षपाती कहकर समाधान मान लेते हैं !! जिस जातिकी कर्मण्यता नष्ट हुई है और जिसका पुरुषार्थ लुप्त हो गया है, उसको किसी भी दशा मे किसी बहानेका सहारा ले कर समाधान मान लेने के सिवाय दूसरा मार्ग ही कौनसा रहता है ?

पिछले २४ वर्षो के अनुभवसे हम कह सकते है कि, मोरिशस में ऐसा कोई पक्षपात अंग्रेज सरकार से नहीं होता है । हम यह बताना चाहते हैं कि, मुसलमान समाज अपने गुण और अपने पुरुषार्थसे सदैव अग्रसर रहता है न कि किसीकी मेहरबानी या पक्षपातसे । अफ्रिका, बर्मा, बुरबोन, माडागास्कार, आबिसिनिया, चीन, जापान आदि देशोंमें भी यही स्थिति पायी जाती है । जिनका समाज शक्तिशाली है, उनका हाथ ऊंचा होना ही चाहिये । पक्षपातका अर्थ यही है कि, "नाचे न जाने अंगनवा टेढ़ा ।"

इन हमारे पडोसियोंका यहा का प्राचीन इतिहास हमसे अधिक मनोरंजक है । अंग्रेजी राज्य १८१० में यहां होनेपर कलकतिया हिन्दू यहा आये, वे गिरमिटया कूली थे, जिनमे मुसलमान भी थे । परन्तु फ्रेंचोंके शासन समयमे सन १७६८ में याने आजसे १२८ वर्ष पूर्व म्हैसोरके टिपू सुलतानका राजदूत मोरिशसके उस समयके गवरनरके साथ राजनीतिक परामर्श करनेके लिये यहां आया था । उसके मानमे १५० तोपोंकी उसे सलामी दी गई थी और बडी धूमधामसे उसका स्वागत हुआ था । उस समय हिन्दुस्थानमे राजा, महाराजा, नवाब,

सुलतान सैंकडोंकी संख्यामे थे; जैसे कि आज भी है। उनमे से अंग्रेज और उनकी राजनीतिको किसीने ठीक तौरसे पहचाना हो तो टिपू सुलतानने ही। उस समय हिन्दुस्थानमे अंग्रेज और फ्रेंचोंमें युद्ध हुआ करता था। टिपूका बाप हैदर पहिले म्हैसोरके हिन्दू राजाकी नौकरीमें था। मौका पाकर अपने स्वामीकी गद्दीपर वह बलात् चढ़ बैठा! एक लडाईमे उसने अंग्रेजोंको भी अपनी वीरताका परिचय दिया था। फ्रेंच लोग उसकी सहायतामे थे। बापके मरनेपर टिपूने भी अंग्रेजो के साथ युद्ध जारी रखा, पर वह जानता था कि, अंग्रेजोंके साथ वह टक्कर नहीं दे सकेगा। फ्रांससे सहायता मांगने के संबन्धमे उसने सुप्रसिद्ध नेपोलियन बोनापार्टके साथ पत्र व्यवहार किया, और अपना राजदूत मोरिशसमे भी भेजा। राजदूत लौटकर गया, तब कुछ स्वयंसेवक भी टिपूकी ओरसे अंग्रेजोंके साथ लडनेके लिये उसके साथ रवाना हुए थे।

बहुतसे हिन्दुस्थानी, शहरके लाप्लास पर, जो लाबुरदोनेकी मूर्ति खडी है, उसको टिपूसुलतान की ही मूर्ति मानते हैं। उसके कारण को पाठक अब समझ जायेंगे। आगे चल कर लडाई में टिपू मारा गया और उसका राज्य अंग्रेजों ने असली हिन्दू वंशको सौंप दिया आदि बातों से इस पुस्तकका सम्बन्ध नहीं है। कहनेका मतलब यही कि, फ्रेंच समय से ही मुसलमानोंका दौर दौरा यहां था। इस घटना से ३६ साल पहले याने सन १७५६ में महमद बकस नामका बंगाली मुसलमान बटलर (भंडारी) वहां आया था, किसी फ्रेंचकी नौकरीमें। ४६ साल बाद, अ-

थांत, १८०५ में मुसलमानों को अपना प्रार्थना-घर बनाने की खास परवानगी मिली थी। अंग्रेज़ी राज्य होने पर उनकी पहली मसजिद सन १८४० में शहरके कॉ·लास्कार मे बनी है। (उपरोक्त समाचार सेठ तैयुब अय्युब अल्हवानी काठियावाड़ी की कृपा से प्राप्त हुआ है।)

इस सम्बन्धमें जानने योग्य बात यह है कि, हिन्दू लोग मुसलमानों से पहिले आये हैं। उन्होंने देवल आदि बना कर उसमें पूजा पाठ करने की परवानगी मागी और वह उन्हें मिली या नहीं कुछ मालूम नहीं। कुछ भी हो, मुसलमान अपने धर्म-विषय में, कैसे दक्ष रहते हैं, उसका यह एक खासा प्रमाण है। उस समय के कातोलिक बडे कट्टर होते थे, तो भी मुसलमानों को वह धार्मिक सहूलियत मिल गई थी। फिर भी इस्लाम के अनुयायियों की संख्या नहीं जैसी होनेसे, वे अधिक कुछ कर नहीं सके, परन्तु सौ साल बाद उदार अंग्रेजी राज्यमें, वे हिन्दुस्थानसे एक तादादमें आने लगे और अब तो मोरिशसको उन्होंने अपना एक अच्छा अड्डा बना लिया है। इस समय उनकी ५५ मसजिदे और ६५ संस्थाएँ हैं। ५०,००० मुसलमानोंके लिये इतनी मसजिदे और संस्थाएँ उनकी धार्मिक और सामाजिक उन्नति के साक्षी है। उनकी ५ मसजिदें वहांकी आबादी उठ जानेसे वैसी ही खाली पडी हुई हैं। मुसलमानोंकी नजरमे उनका भी बड़ा मूल्य है। इन मसजिदोंको, वे शहीद कहते हैं। धर्मके वास्ते मरने वालेको शहीद कहते हैं। भावार्थ यह होना चाहिये कि, उनको टूटी, खाली या निकम्मी नहीं कहनी चाहिये; किन्तु वे पाक स्थान होने से उनको शहीद शब्द से इज्जत करनी चाहिये! मरे हुए मनुष्यके पीछे

स्वर्गस्थ लगानेके समान ही यह शहीद शब्द है। मुसलमानों की यह ऐसी श्रद्धा है। आजकलके लोग भले ही उसको अंधश्रद्धा या अतिश्रद्धा कहे; पर मुसलमानोंको उसकी परवाह नहीं।

हमने ऊपर हिन्दू-मुसलमानकी परस्पर स्पर्धा के सम्बन्धमें लिखा है। जबतक संसारमें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, बुद्ध, सिक्ख, यहूदी आदि धर्मभेद रहेंगे तबतक यह खींचातानी रहेगी ही। कोई भी धर्म अपना दही खट्टा कहने को तैयार नहीं है और अपनी शेखीका झण्डा हाथमें लेकर वे मैदानमें उतरते हैं। इस हालतमें एक दूसरे प्रति ईर्ष्या भाव की सृष्टि होना अपरिहार्य ही है। जीवनके संग्राममें मुसलमान हमसे आगे निकल गये हैं। वह उनका हक है। वह उनका पुरुषार्थ है। वह उनका संगठन है। हमको मुंह टेढा नहीं करना चाहिये। उनके व्याख्यान, उपदेश, लेख चर्चा आदि में सामाजिक सुधार, धार्मिक सुधार, कुरीति तोड़न, जातपात उठावन, जैसी एक भी बात कभी नहीं आती है। सामाजिक या धार्मिक कोई खामी वे अपने संगठनमें नहीं देखते हैं। उनका समाज तैयार बना पडा है। इस्लामका प्रचार करना, उसका झण्डा ऊंचा रखना और अपने समाजकी उन्नति करना ये ही उनके ध्येय हैं। हिन्दुओंको अभी अपने घरकी सफ़ाई करनी है। धर्म प्रचार और समाजोन्नति तो दूर ही है हम क्यों नाक सिकोड़े?

सारांश, एवं गुण विशिष्ट मुसलमान समाज आज एक हजार वर्षोंसे हमारा पडोसी है। लेकिन हिन्दुओं ने उससे कुछ शिक्षा ग्रहण नहीं की है। हिन्दुओंको क्या कहना चाहिये? अंग्रेज लोग हिन्दुस्थानमें २०० वर्षों से ही है और पांच हजार मील दूर रहते हैं;

पर उन्होंने हिन्दुस्थानकी काया पलट कर दी है। हिन्दू लोग दूसरोंसे लेने में उतना सकोच नहीं करते हैं, यह बात उससे स्पष्ट होती है; परन्तु मुसलमानों से उन्होंने अच्छी बातें भी नहीं ली। उसका कारण संभवतः यही हो सकता है कि, उनके ऐतिहासिक दुर्व्यवहारके कारण उनसे दूर रहनेमें ही वे अपनी भलाई समझते होंगे। जो हो हिन्दुओं ने उनसे उचित शिक्षा ग्रहण की नहीं यह बात सत्य है। वह एक सुसंगठित साहसी, उद्यमी और मर्द कौम है और हमारी पड़ोसी है। हमारा जीना मरना भी उनके साथ है। इसी लिये हमारी पुस्तकमें उसका हमने बार बार उल्लेख किया है। उद्देश्य यही कि, हमारे पाठक तथा हमारा हिन्दू समाज, निजको उनके साथ तौल कर देखे और वे अपनी स्थिति को भलीभांति समझें तथा उनसे योग्य शिक्षा ग्रहण करें।

## चित्र-रहस्य।

पुस्तकमें प्रसिद्ध मंदिर और धर्म तथा समाज-कार्य करने वालों के चित्र दिये हैं। लोग घरमें रामकृष्णादि के चित्र रखते हैं और आजकल तो देशभक्तों के चित्र भी हमारे घरोंमें निवास करते हैं। उद्देश्य यही कि, उन चित्रोंको देख कर उनके प्रति हमारी श्रद्धा भक्ति जागृत रहे और हममें अच्छे काम करने की स्फूर्ति और प्रेरणा उत्पन्न हो जाय। मंदिरोंमें देव-दर्शन के लिये हम जाते हैं, उसका कारण यही है। उनको देखते ही उनके कामोंका हमें स्मरण हो आता है। ये चित्र मानों कि, हमें सदैव एक शिक्षा देते रहते हैं।

मनुष्य वस्तु या पशु आदियोंका चित्र द्वारा यथार्थ दर्शन कराना एक कला है और कलामें मनरंजन है। सिनेमाकी नटियां आदियोंके चित्र, लोग आंख को खुश करने के वास्ते रखते हैं; परन्तु शिवा जी या राणा प्रताप सिंह के चित्रोंका उद्देश्य दूसरा होता है। वे चित्र अपने यथार्थ दर्शन द्वारा प्रेक्षकोंमें एक खास भाव और ज्ञानकी सृष्टि करते हैं। हम पढते थे और सुनते थे कि इटली, आबिसिनी पर वायुयान-से-बंब फेकता था। परन्तु वह दृश्य कभी देखा नहीं था। अर्थात चक्षु-इंद्रिय को समाधान नहीं मिला था। परन्तु वह दृश्य जब चित्र में हम देखते हैं, तब सारी बात हमारी आंखके सामने खडी हो जाती है और हमारी जिज्ञासा तृप्त होती है। चक्षुरेन्द्रियका काम है देखना। वह देखने के लिये सदैव तरसता रहता है और देखता है तब ही उसको संतोष होता है।

मनुष्य, जो कुछ पढ़ता या सुनता है, उसका अवलोकन भी कर लेगा, तो उसको उससे पूरा आनंद और समाधान प्राप्त होगा। बोलते सिनेमापर; जो लोग इतने टूट पडते हैं, उसका कारण ही यह है कि, वे उसे सुनते हैं और देख भी लेते हैं। आंख और विश्वासका कैसा घनिष्ट संबन्ध है. यह भी जरा देखना चाहिये। कभीर लेखक अतिशयोक्तिपूर्ण या झूठ भी लिख मारता है या वक्ता गप भी हांक देता है। इस लिये पढ़ने सुननेपर भी उस विषयपर सोलह आना विश्वास करनेमें दिल किंचित हिचकता ही है। परन्तु आंखकी बात ऐसी नहीं। उसको कोई ठग नहीं सकताहै। वह घोडेको घोड़ा और बिल्लीको बिल्ली ही कहेगी। अर्थात, एक वस्तु, घटना दृश्य, मनुष्य

तथा जानवरके सम्बन्धके वर्णनमें यदि उस विषयका-चित्र ही सन्मुख रख-दिया जाय तो आख द्वारा उसपर पूरा विश्वास आ जाएगा। चित्र और विश्वासका परस्पर कैसा नाता है, यह हमारे पाठक अब समझ सकेंगे। अदालतोंमें दस गवाह, जो काम नहीं कर सकते हैं, वह एक चित्र कर देता है; इस बातको लोग जानते ही होंगे।

दूसरी बात यह है कि, लिखना या पढना मनुष्य-कृत कार्य है। लिखनेकी कला मनुष्यने बनाई है। ईश्वरने किसी को लिखना पढना नहीं सिखाया है। इस लिये ईश्वरके दिये हुए इन्द्रियरूपी साधनों द्वारा यथा चक्षु, नाक, स्पर्श, कर्ण आदिसे जब तक मनुष्य किसी विषयका अनुभव नहीं करता है, तब तक उसको पूरा आनन्द, समाधान और विश्वास नहीं आ सकता है। मनुष्य अपने बुद्धि-बलसे बहुत कुछ साध्य कर लिया है यह बात सत्य है, पर ईश्वरकृत अथवा कुदरत के साधनोंके सामने मनुष्यकृत बनावटी साधन लूले हो पडते हैं; यह बात यहां सिद्ध होती है। यह भी सिद्ध हुआ कि, आंख के आनंद और विश्वासके वास्ते विषयका यथा तथ्य ठीकर ज्ञान करा देनेवाले चित्रोंकी भी कितनी आवश्यकता है। मतलब यह है कि, आंख और कानके दिये हुए समाचारसे ही मस्तिष्क अपना कार्य करनेपर समर्थ होता है, इस बातको सदैव ध्यानमें रखना चाहिये।

इस पुस्तकमें दिये हुए मंदिरोंके चित्र, पाठकोंकी श्रद्धा-भक्ति जागृत रखनेमें जरूर ही सहायक होंगे और धर्मशीलों

के चित्रों प्रति उनका आदर और गर्व रहेगा और उनको उनसे शुभ संकल्प और शुभ कार्य करनेकी प्रेरणा होगी।

पांच पचास चित्र, घरमें रखनेके लिये बहुत स्थान चाहिये परन्तु पुस्तकमें सुरक्षित स्थितिमें और किसी भी सख्या में वे मजेके साथ रह सकते हैं। ईसाई लोगोंने ऐसी पुस्तक हैं, जिनमे उनके मंदिर एवं धर्मार्थी लोगोंके चित्र रखे गये हैं। लोगोंमें श्रद्धा-भक्ति और उत्साह-प्रेम बढ़ानेके या जहां वे नहीं है, वहां उत्पन्न करनेके मार्ग या साधनोंको वे काममें लाते हैं और हम देखते हैं कि, उनसे उनकी उन्नति होती है। भारतमें ऐसी पुस्तकें प्रकाशित होती हैं, यह हमारे पाठकोंमें से बहुतोंने देखा ही होगा। हम भी मोरिशसमें उनका अनुकरण क्यों नहीं करें?

पुस्तकमे मंदिर और धर्मशील पुरुषोंके चित्र देनेके उद्देश्य को हमने अब स्पष्ट कर दिया है। यह नहीं समझना चाहिये कि, जिनके चित्र पुस्तकमें दिये हैं उनके सिवाय और कोई धर्म परायण या जाति सेवक मोरिशसमे नहीं है। और भी हैं तथा यह जाहिर करनेको हमे हर्ष होता है कि, उन में कतिपय स्त्रियां भी हैं। परन्तु वे स्त्री पुरुष अपने चित्र देना नहीं चाहते हैं। जिससे उनका दर्शन उनके परलोकवासी होनेपर होना मुशकिल होगा, यह खेदका विषय है। उनमें कतिपय महाशय तो मान मर्यादाके इतने भूखे होते हैं कि, छोटी अदनी बातपर भी गाली गलोच करनेपर उतारू हो जाते हैं। या हसकर मुंह ही तोप लेते हैं। पर हमारे चित्र मांगनेपर कह देते हैं कि, "हमे शेखी नहीं चाहिये"। मानों कि,

Sınhachalam Telagoo temple of Beau Vallon, by the kındness of Mrs Doorgamah Potanah of Port Louıs

उनके हिसाबसे गांधी, तिलक नेहरू आदि देशभक्त मानके लिये ही मर रहे हैं। उनके वास्ते हम इतना ही कहते हैं कि, वह उनका विचार-दोष है। मुसलमान लोग चित्र या मूर्ति से दूर भागते हैं; पर मूर्ति-पूजा करने वालों की ऐसी बातें सुनकर आश्चर्य होता है। वे अभी तक अपने सनातनी विचारोंके पंजे में फँसे पडे हैं। उनका धर्मकार्य या समाज सेवा देखी जाय तो उनके फोटो हमारी पुस्तकमे अवश्य ही होने चाहिये; पर उनकी वैसी इच्छा नहीं होनेसे हम लाचार हैं और हमें दुःख भी है।

श्री. श्री गोकुला जी, सजीवन महाराज, शीतलबाबू, गौरदास जी प्रभृति धर्ममना पुरुषों के चित्र हमें मिलते तो हमें बडा ही हर्ष होता। पर क्या करना ? उनके बनाये हुए मंदिरोंमें उनकी आत्माएं निवास करती हैं; इस लिये उनका नहीं तो उनकी आत्माओंका दर्शन करके-पाठकों को समाधान मान लेना चाहिये।

चित्रोंसे प्रेक्षकोंका जो लाभ होनेकी संभावना है, उसका विवेचन हुआ, अर्थात चित्रोंको देखने का यह एक दृष्टिकोण हुआ। अब उन्हें दूसरे एक पहलू से भी देखना चाहिये। वह है उन्होंने हमारे पर किये हुए ऋणकी अदाई। उनका गुणगान करके उनके आत्माओं को सन्तोष देनेके सम्बन्ध मे हमने आगे चल कर लिखा ही है। ऋण या कर्जका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि, वह एक कुछ पैसे टकेका सौदा है। वह एक नैतिक ऋण है। जब कोई किसी पर कुछ उपकार करता है, तो इस हेतु से नहीं कि, उपकृत व्यक्ति से वह कुछ बदला चाहता है। उसका उपकार निष्काम बुद्धिसे होता है याने वह केवल उपकार के वास्ते

ही उपकार करता है। यह बात हुई उपकार करने वाले की अर्थात परोपकारी मनुष्य की। परन्तु उपकृत याने जिनपर उपकार हुआ है, उनका उपकार करने वाले प्रति कुछ कर्त्तव्य है या नहीं? और कुछ नहीं तो 'मेरसी' धन्यवाद से भी वे गये गुजरे? इसीका नाम है नैतिक ऋण। शहर के जारदें कोंपाई (कंपनी-गार्डेन) में कई प्रसिद्ध पुरुषोंकी मूर्तिया खडी हैं। और स्थनों पर भी हैं। ये मूर्तियां खडी करनेका जो उद्देश्य है, ठीक वैसा ही हमारी पुस्तक के चित्रों का भी है। ये मूर्तिया उन पुरुषों का स्मारक है। हमारे चित्र भी स्मारक रूप ही है। पुस्तक में उन्हें देख कर और उनके कार्यका वर्णन पढकर हमें उनकी सदैव स्मृति रहेगी। और उनसे हमे शुभ कार्य करने की प्रेरणा होगी। उनके प्रति हमारे ये भाव रहे तो कहना पडेगा कि, अंशतः उनका ऋण चुका देनेमें हिन्दू जनता ने अपना कर्त्तव्य पालन किया है।

पुस्तक में ऐसे चित्रोंकी आवश्यक्ता और महत्व कितना है, यह उपरोक्त भाष्यसे स्पष्ट होता है। चित्रोंसे हमारा निज-का जो लाभ हुआ है, उसको अन्यत्र हमने दर्शाया ही है। कतिपय महाशयों ने चित्र देने में बडी आनाकानी की थी और बहुतों ने तो दिया ही नहीं; इस लिये यह 'चित्र-रहस्य' लिखना पड़ा है।

# ऋणकी अदाई।

हमने आरम्भमें ही कह दिया है कि, मोरिशस हिन्दू प्रजाके लिए केवल धर्म यह एक ही चर्चाका विषय है। मोरिशसमें इस समय तीन साप्ताहिक समाचार-पत्र हिन्दीमें प्रकाशित होते हैं। तीनोंका विषय धर्म; राजनैतिक, वैज्ञानिक, औद्योगिक आदि प्रश्नोंपर वे सर्वथा उदासीन रहते हैं। वे भी क्या करें जैसे श्रोता वैसे वक्ता। हम भी क्या करें, हमें भी उसी रास्तेसे चलना चाहिये। लेकिन वह रास्ता चलते समय इस बातकी ओर भी हमारा लक्ष्य रहा है कि, पूर्व कालमें, जिन लोगोंने अपनी जातिके लिए कुछ कर रखा है, उनका पुण्य स्मरण तो उसमें जरूर हो जाय और वर्तमान समयके, जो जाति सेवक हैं, उनकी स्मृति आनेवाली सन्तानको रहे। उनका हमपर नैतिक ऋण है। इस पुस्तकके द्वारा उसे हम अंशतः भी अदाकर सकेंगे तो हमको उससे संतोष होगा।

लोग कहते हैं कि, शिवालयोंके संबंधमें क्या लिखना है? लोग मंदिरमें जाते हैं, जल चढाते हैं, पूजा पाठ करते हैं, इसमें लिखना क्या? बात ठीक है। परन्तु कोई बतला सकता है कि, प्रांबासेंको परीतलाव यह नाम किसने दिया था? २५-३० वर्षके बाद कोई नहीं बतला सकेगा कि, त्रिओलेका शिवालय किसने और कब बनाया था? यह भी कोई नहीं बतला सकेगा कि, शिवजीपर शिवरात्रिके दिन परीतलावका जल चढानेकी प्रथा किसने जारी की थी? इस निशाचरोंके देशमें अंधकारके समयमें पहले पहल किस पंडितने भागवत बाँचा था, कोई कह सकता है? यदि पंडितका नाम और

भागवतकी तिथिकी खबर हो जाय तो उस दिनको, हम लोग मोरिशसमें सनातन धर्मकी 'जयन्ति' के रूपमें मनाएंगे। इस संबंधमें पं० देवदत्तके दादा स्व० पं० रामलोचन तथा दूसरे एक पंडित रामशरनका नाम सुननेमें आता है। कहते हैं कि, लगभग ४० वर्ष पूर्वकी वह बात है। मोरिशसमें, जिस पंडितने पहले भागवत बाचा है और जिसने बचवाया है, मानों कि उन्होंने हिन्दू धर्मकी ध्वजा ही यहां फहराई है। उनको प्रणाम करना चाहिये।

श्री० अमर पंडितजीको मोताई लोंगमें श्री० प्राणवतजीके भागवतमें, दक्षिणा, भूमि, वस्त्र आदि मिलकर दो तीन हजार रुपयोंकी प्राप्ति हुई थी। स्व० पं० रामटहल अपनी पंडिताईमें, सुनते हैं कि, लाख रुपयाके आसामी हो गये थे। पं० रामअवधके पिता स्व० पं० महीपतजी, सत्यनारायणकी पोथी हाथसे लिख कर उसे ४०–५० रुपयोंमें बेचते थे। २५–३० वर्ष पूर्व बैरि-स्टर मणिलालजीने मोरिशसमें पहले पहल पोकेट गीता वितीर्ण कर गीताका कुछ प्रचार किया था। इन बातोंको जानने वालोंमें बहुतसे चल बसे और जो हैं उनको याद नहीं है और कुछ लिखकर रखते नहीं। इन हालतमें उनकी सन्तान अपने पूर्वजोंके शुभ कामोंको कैसे जान सकती है और उन के लिये उनको कैसे गर्व हो सकता है?

सब कोई राम राम कहता है; पर बाल्मीकि और तुलसी दास जी न होते तो रामचन्द्रजी को कौन जानता? वही बात वेद, उपनिषद, गीता आदि पुस्तकों की भी है। अभिमन्यु या शिवाजी

की वीरता का वर्णन पढ़कर हमारे बाहु फड़कने लगते हैं। यह सब इतिहास लेखन की कृपा से। इसी प्रकार किसीकी कीर्ति सुन कर अथवा पढ़कर वैसा ही नाम कमानेकी अभिलाषा उत्पन्न होती है। सीताजीका उदाहरण देख कर हिन्दू स्त्रीका पति प्रेम क्या दृढ़ नहीं होता होगा? सजीवन महाराजका नाम सुनकर हिन्दूके हृदय में उनके लिये आदर उत्पन्न नहीं होगा और कुछ वैसा ही कार्य करने की इच्छा उसको नहीं होती होगी? लोगोंका कहना है कि, आजकल श्रद्धा कम होती जाती है। बात बिलकुल सच है। आज भी कुछ न लिखा जाय और आने वाली पीढ़ी अपने बाप दादा की कीर्ति न सुन सके तो आज, जो थोड़ी सी श्रद्धा बची है, वह भी कम घट हो जायगी। अच्छे काम करने वालोंकी सर्वत्र प्र-शंसा होती है और उसीसे दूसरोंको सत्कार्य करने की प्रेरणा होती है। लेकिन कुछ लिखा हुआ हो तो प्रेरणा न होगी? बड़ी मेहनत से लोग धन कमाते हैं, भोग विलास करते हैं और अपने बालबच्चों के लिये सबकुछ छोड़कर चल बसते हैं। इसी प्रकार हम लोगों का भी यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि, हमें भी जो करना है, वह क-रके भविष्यकालीन प्रजाके लिये हमारे कार्य और ज्ञान दर्ज कर रखे; ताकि भिखारी बापको उसके पुत्रसे जो गालियां मिलती है, वह हमें न मिले!!

पोर्टलुइस शहरके मद्राजियों का पुराना और पहिला मंदिर मीनाक्षी देवीका है, जो कैलासोंके नामसे मशहूर है। लेकिन जि-न्होंने उसको निर्माण किया, उनका नाम तक लोग नहीं जानते हैं।

जो अपने बापका श्राद्ध नहीं करता है लोग उसे कुपूत कहते

हैं। इसी प्रकार शिवाला बना कर अथवा सभा सोसायटी बांध कर हमारा कल्याण करने वालोंको हम भूल जायें तो हमको क्या उपधि मिलनी चाहिये ? सुनी सुनाई बातोंमें धीरे२ सच-झूठ जुटता जाता है और कालान्तरमे वह एक किस्सा कहानी हो जाती है और उसपर फिर कोई विश्वास नहीं करता है। लेख की बात ऐसी नहीं और वह समकालीन हो तो वह अधिक विश्वासनीय समझा जाता है। हजारों वर्ष पूर्वका ज्ञान लेख द्वारा ही होता है। उसे पढकर हम जान सकते हैं कि, पहिले कैसा था, अब कैसा है और भविष्यमे कैसे होगा। राष्ट्र का मूल्य उसके साहित्यमे होता है। श्रीमान दुखी गंगा अपने नौकरोंको प्रति रविवार घर२ भेजकर लोगोंको शिवालयमें आनेकी प्रेरणा करते हैं, यह बात आज हम जानते हैं, परन्तु १५–२० साल बाद लोग उसे भूल जायेंगे। यदि यह बात लिखी हुई हो तो उसे पढ़कर सौ वर्ष के बाद आने वाली सन्तान भी उसे जान सकेगी और उसका अनुकरण करेगी। हिन्दुओंका लेखबद्ध इतिहास न होनेसे उनको आजकी स्थिति प्राप्त हुई है।

ईर्ष्या, द्वेष, स्वार्थ आदिके कारण, सज्जनोंके अच्छे कामों की भी समकालीन लोग निन्दा करते हैं। गो स्वामी तुलसीदासको लोग उनके जीवनमे 'तुलस्या' कहकर पुकारते थे; परंतु उनके लेख रामायणने उनका नाम पूजनीय बना रखा है। ऐसी दशामें अपने विश्वासके अनुसार काम करते चले जानेवाले धीरोदात्त पुरुषोंकी जितनी प्रशंसाकी जाए, कम ही होगी। केवल अपनी नामनाके खातिर, जो लोग कभी कुछ पाच पच्चीस रुपया इधर उधर फेंक देते हैं, उनकी प्रशंसाके पूल बाधे जाते

हैं; परन्तु मुंह मोड़ते ही गुनगुनाने लगते है। ये लोग वर्त्तमान समयके अनुकूल पगड़ी फिराकर अपना आसन स्थिर करने की चेष्टा करते हैं; पर जनताका स्थायी कल्याण उनसे नहीं होता है। वह मार्ग दर्शक नहीं, किन्तु वाम दर्शक है। लेख द्वारा इन बातोंका विवेचन क्या भविष्यकी पीढीको कुछ बोध न दे सकेगा? सज्जनोंकी स्तुति और दुर्जनोंकी निन्दा इस दुधारी तलवारसे ही समाजकी रक्षा होती है। सारांश, पूर्वजोंका अनुभव उनके विचार, उनके कार्य, उनका ज्ञान, उनकी भूलें और उन की परिस्थिति इत्यादि बातोंका सच्चा ज्ञान, लेख-बद्ध इतिहास से ही भावी प्रजाको होता हैं। उनके पुनीत स्मरणसे हम उनका मृतक और जीवित दोनों प्रकारका श्राद्ध करते है और इस 'हिन्दू मोरिशस पुस्तक द्वारा हम उनका तर्पण करते हैं। हमे आशा है कि, उनका कुछ ऋण इस प्रकार अदा होगा।

---

## हम

इस 'हिन्दू मोरिशस' में हम अपना दर्शन भी पाठकोंको जरा बताना चाहते हैं। पिछले तीन सालसे यह पुस्तक लिखनेके संबंधमें हम यत्न कर रहे हैं। हमारे मित्रपर जरा इर्ष्याग्रस्त, इस बातको सुनकर कोनें कूचेमें अपना मुखकमल खोलने लगे। 'अब सुनते हैं कि, पं० आत्माराम मोरिशसके हिन्दू मंदिरोंका इतिहास लिखनेवाले हैं। एक पेटका धंधा खड़ाकर दिया है। और क्या'? हम कहते हैं कि, उनका कथन सोलह आना सत्य है; सिर्फ उनके भाव अशुद्ध हैं।

Office bearers and members of the Marathi Premawardhak Mandalee of Cascavelle

यह भी कदाचित मोक्षका द्वार खोल देनेका एक तरीका हो सता होगा। पर हम देखते हैं कि, इनमें पेट ही पहिले अपना दावा पेश करता है। पेटके लिये पैसा न मिले तो भागवत नहीं, कथा नहीं और मोक्ष भी नहीं! हम कहते हैं कि, पैसे से ही सत्कार्य होते हैं। रात दिन व्रती रह कर लगातार सात दिवस कथा सुनावे, क्या उसको पैसा (दक्षिणा) नहीं मिलना चाहिये। मेहनतका फल व्यासको मिलना ही चाहिये। कोई महात्मा ही क्यों न हो उसको अपना पेट भरना चाहिये। हम कैसे अपवाद हो सकते हैं?

परन्तु हमारा कार्य वैसा नहीं है। हम किसी को मोक्ष या पुण्य नहीं बेचते हैं। जिस कथाको लोगों ने बीसों बार सुना है उसीको पैसा ले कर दुहराते रहना यह एक प्रकार है और पैसा लेकर उसके बदले में लोगों को कोई नई प्रत्यक्ष वस्तु देना यह दूसरा प्रकार है। हम दूसरे प्रकारके हैं, पहिले प्रकार के नहीं इतना ही हम हमारे वैसे मित्रोंको जता देना चाहते हैं।

मोरिशसमें हिन्दीमें लिखना खेल नहीं है। 'बैठ कर नहीं पढो' इतना कहनेमें ही कुछ लोग बुरा भला कहने लग जाते हैं। हमारे बापदादा बैठकर पढते थे, क्या वे मूर्ख थे? बस चला मामला! कहीं२ अपने व्याख्यानोंमें अथवा कभी लेखोंमें जरा स्पष्ट बोलकर हम जनता को किंचित् हिलाने की चेष्टा करते हैं। "लावेरिते ओफांस" यह एक फ्रेंच भाषा की कहावत है। सत्य कडुआ होता है, यह उसका अर्थ है। हमारे विरोधी हमारा उत्तर नहीं दे सकते हैं, तब बदलेमें कहते हैं,—"देखा यह आ-

र्या है, नास्तिक है, तुम्हारा पैसा लेकर फिर तुमको गाली देता है।" भोले भाले लोग उनकी बातोंमें आजाते हैं और हमारे कार्यको हानि पहुँचती है।

वेद, गीता, रामायण यह सब पुराना साहित्य ही है और देश जातिका उससे कितना उपकार है, यह सब कोई जानते ही हैं उसी प्रकार नये ढंग का साहित्य निर्माण करना यह भी आजकल समाज सेवाका प्रधान अंग समझा जाता है। हम एक साधारण योग्यता के लेखक हैं। पेट भरतेर यदि हमसे थोड़ीसी लोक सेवा हो जाय तो उसमे हमको सन्तोष ही होगा। मोरिशस में हिन्दीमें पुस्तक लिखना कितना कठिन काम है, इस बातका हमारे मित्र, अनुभव नहीं कर सकते हैं। क्योंकि उस पेशे को करने वाला वर्ग यहां है ही नहीं। एक गरीब ब्राह्मण बनकर कथा भागवत या शिवालय के नाम पर हाथ फैलाने से कुछ न कुछ मिल ही जाता है; परन्तु पुस्तक लिखने की कल्पना ही बहुत लोगों की समझमें नहीं आती। "इतना तो हमार पोथी पुस्तक पढ़ल बा और अब तूँ कौन चीज लिखबे ?" इस प्रश्नका जबाव देना, युक्ति, प्रमाण द्वारा उनकी खातरी करना बहुत ही सिर फोडीका काम है। श्रीमान जी राजी होने पर उनकी इच्छा के जरा विरुद्ध ही बातोंकी झोंकमें उनके जेब तक हाथ बढाना मानों कि, एक कारामात कर बताना है। इस लिये हमारे पेटके साथ हमारे परिश्रमों को भी देखने की हमारे उन मित्रोंको हमारी प्रार्थना है। यहां हिन्दी साहित्य की कदर करने वाले बहुत थोडे मनुष्य हैं। परम्परा अर्थात, आचार, धर्म के वे पाबन्द हैं। रामायण

आदि पुस्तकोंके सिवाय और पुस्तकों की उन्हे आवश्यक्ता प्रतीत नहीं होती है। क्या किया जाय?

हम फिर कहते हैं कि, आफ्रिका महा द्वीपके एक टापू में हिन्दीमें लिखना जानों कि, पतली तार पर कसरत करनेके सदृश अत्यन्त धोखे का कार्य है और हमको तो उसका पूरा अनुभव हो चुका है। यह एक आगके साथ खेल है। तो भी हम कुछ न कुछ लिखने की हिम्मत करते ही रहते है। पाच सात छोटे छोटे २ पुस्तक हमने लिख मारे है। इस देशमें हमको अब २४ वर्ष हो गये हैं। सुनते सुनाते और लडते भिडते हमारा जीवन यहां व्यतीत हुआ है। हमको बहुत घाव लगे हैं। गीताके बचन के अनुसार हमारा देह यदि धारा तीर्थ मे 'रह गया तो हम स्वर्गको प्राप्त करेगे और वह नहीं बना तो पृथ्वीको भोगेगे। हमको दोनों समान है। तात्पर्य हमारी इतनी ही इच्छा है कि, आज कथा बाचे और कल तेल बेंचे; यह हमको करना न पडे तथा इसी साहित्य सेवा द्वारा दालभात मिला करे तो हम निज को धन्य २ मान लेगे।

इस 'हिन्दू मोरिशस' के पीछे हम तीन सालसे पडे थे और अब चौथे सालमे इसका जन्म हुआ है। ५ रुपये के लिये एक एक व्यक्तिके पास १५ बार हमने मुँह खोला है। कतिपय महाशय प्रतिज्ञा करके हट गये हैं। कतिपयों ने तो पत्रोंका उत्तर भी नहीं दिया। कतिपय तो ऐसे है कि, पुस्तक प्रकाशित हो जाने पर भी हाँ हाँ करते ही रहेगे। यही दशा चित्रों की है। बहुत थोडे हैं, जो साहित्यकी कदर करते है और उनसे भी कम हैं,

जो सक्रिय सहानुभूति रखते है। ऐसी दशा मे, जिनकी सक्रिय सहानुभूति से यह पुस्तक प्रकाशित होती है, उनको हम कोटिश धन्यवाद देते है। हमारे वह मित्र जो विचारे अन्धारेमे टटोलते है, उनको इन बातोंका ज्ञान हो, इस हेतुसे यह लिखना पडा है। हम आशा करते है कि, ये सब बाते सुनकर हमारे मित्र हमारी कठिनाइया और हमारे परिश्रम की कदर करेंगे और हमारा साहस बढाएंगे।

# उपसंहार ।

संस्कृत नाटकका आरम्भ नांदीसे होता है और समाप्ति उपसंहारसे होती है। दुनिया एक रंग-भूमि है, जिसपर अगणित नट नटियां अपना खेल बताकर चली जाती हैं। संसारकी कोई वस्तु या प्राणी स्थिर और चिर नहीं होनेसे ही संसारको नाटककी उपमा दी जाती है। उसमें हमेशा परिवर्त्तन हुआ करता है। हमारी पुस्तक, उसके सफेद कागज, उसकी काली सियाही उसके चित्र और उसका विषय सब कुछ एक काल बाद परिवर्त्तन होतेर लोपको प्राप्त होगा। इस लिये इस पुस्तकमे हमने, जो कुछ लिखा है, वह भी उपरोक्त दृष्टिसे एक नाटक ही है। इस नाटककी नांदी उसका 'निचोड' है और अब केवल उसका उपसंहार बाकी है।

हमने कहा है कि, भारतीय भाषाएं यथा हिन्दी, तामिल, तेलगू और मराठी मोरिशसमें रोगग्रस्त हैं। हमने जो चार पांच पुस्तकें लिखी हैं, और उसमें हमको, जो अनुभव मिला है, उससे हमको वहुत थोड़ी आशा रखनी चाहिये कि, इस पुस्तकका मोरिशसमें यथेष्ट प्रचार होगा और लोग उसे पढकर उसपर कुछ विचार करेंगे। भारतियोंकी तीसरी उदयमान पीढीके संबधमें हमने लिखा ही है। हम चाहते हैं कि, खासकर यही पीढी हमारी पुस्तक पढे, परन्तु हम देखते हैं कि, वह हमारा सौभाग्य नही है। रही दूसरी पीढी। उसा से वहुत नहीं तो कुछ लोग जरूर ही पुस्तकको पढेंगे। पर

उनकी रुचि है पोमदामूर (टमाटो) में । हमारी इमली शायद उन्हें खट्टी लगेगी ! अरुचिका भोजन आनंद नहीं देता है, अर्थात, वे भी इसे उलट पलटके पुस्तकको ताकमें धर देंगे और हमें भय है कि, वह हमेशाके लिये 'मीजे' अजायब घर की एक वस्तुके समान वहीं धूल खाती पड़ी रहेगी । दूसरी बात यह है कि, हमारे सारे पाठक वृद्ध होते जा रहे हैं, वे चन्दरोजके मेहमान हैं, यह समय, उनके लिये राम राम भजनेका है, दुनियाके झंझटोंसे उन्हें कोई अनुराग नहीं है, और अपनी 'मोदेर्न' याने आधुनिक सन्तानपर उनका उतना बस भी नहीं है । इस हालतमे हमारी पुस्तकसे किसको और कितना लाभ होगा ? प्रश्न बड़ा विकट है । नहीं मालूम इस का हम क्या उत्तर दें ।

हम कोई 'मेचीये' काम धंधा नहीं जानते हैं । खाली थोड़ासा लिखना जानते हैं । हम हैं हिन्दू, अपना वर्ण छोड़ कर दूसरेमें प्रवेश नहीं कर सकते । क्योंकि, वैसा करनेसे यह भी डर है कि, वर्णसंकर कहलाएंगे । इसलिये इस पुस्तक से किसीको कुछ लाभ हो या न हो, हमारा पेट भरे या न भरे हमको अपनी जाति-स्वभावके अनुसार फल ईश्वराधीन मानकर कर्म करते ही रहना चाहिये ।

हमारी पहली कृति 'मोरिशसका इतिहास' ने जनताको क्या फायदा पहुंचाया और उसके ज्ञान में कितनी वृद्धि हुई हम ठीक नहीं कह सकते हैं । परन्तु इतना कह सकते हैं कि, उसने लोगोंमें हलचल मचा दी थी और या हुसेनकी तरह मारो

Droupadi Ammen temple of Rose-Hill, Photo by the kindness of Mr Ranchchodjee G. Desai.

मारोकी धूम चल पड़ी थी। पढ़े अनपढ़े दोनोंमे खूब ही भक्ति न भक्ति हुई। चार छः मास तक इस पुस्तकका डंका बजाता रहा। जिस दर्शसंकरपर आपत्ति उठाई गई थी, वह अब आपत्ति रही नहीं है; किन्तु संपत्ति होती जा रही है। यह हमारी पुस्तककी विजय है या लोगोंके धर्म-विचारोंमे शिथिलता आनेका अथवा उनमें सुधार होनेका वह चिन्ह है, स्वयं पाठक ही उसका निर्णय कर लेवें।

यत्न कभी निष्फल होता नहीं। उसका यथेष्ट फल भले ही न मिले, कुछ न कुछ हाथ आ ही जाता है। कममें कम यत्न करने का आनन्द तो अवश्य ही प्राप्त होता है और जब कभी कोई, बादल हट जानेपर पुस्तककी प्रशंसा करता है तब तो स्वर्ग सुखका अनुभव होता है। मनुष्यको सदैव आशा वादी रहना चाहिये आशा ही मनुष्यके जीवनका आधार है. वह तरकारीमें मसाले के समान है। वह गति उत्पन्न करनेवाली शक्ति है. इसलिये हम भी हमारी पुस्तकसे बहुत नहीं, थोड़ी आशा जरूर रखते हैं। अगर कुछ दिन उसपर चर्चा चली तो हम समझेंगे कि, हमको कुछ मिल गया और हमारा परिश्रम व्यर्थ नहीं हुआ।

Prophets are not respected in their own countries, अर्थात, भविष्यवेत्ता अपने निजी देशमें आदरपात्र नहीं होते हैं। इसका मतलब है कि, दूरके ढोल सुहावन लगते हैं। कविवर डाक्टर रविन्द्रनाथ तागोरको भारतमें कौन पूछता था? जब योरपके विद्वानोंने उनकी कदर की और उन्हें नोबल पुरस्कार प्रदान किया, तब भारतके लोगोंको मालुम हुआ कि, टागोर कोई

त्न है। मोरिशसकी भारतीय प्रजा, लेखकका रूपरंग, सूरत शकल, आचार विचार, रहन सहन, स्थिति, बोली, गुणदोष इत्यादि समस्त बातोंसे परिचित है, और 'अति परिचयात् अवज्ञा' इस संस्कृत वचनके अनुसार हमारी पुस्तकका 'गुन ग्रहन' करनेमें लोग जरा आनाकानी ही करेंगे। इस बात को हम भलीभांति जानते हैं और वह हमें निरुत्साह करने वाली है। लेकिन हम यह भी कह देते हैं कि, निरुत्साह होने से हम इन्कार करते हैं और आशा रखते है कि, आज न कल जरूर ही एक दिन वे हमें मेरिट सार्टिफिकेट देंगे।

मोरिशसकी प्रतिकूल परिस्थिति के कारण हिन्दी साहित्य की यहा भले ही कदर न हो, पर हमारा भारत तो उसकी कदर करेगा ही। पं० तोताराम सनाढ्य, सन्यासी भवानी दयाल, तथा पं० बनारसीदास चतुर्वेदी जैसे सज्जनों ने प्रवासी भारतीयों की, जो सेवा की है, और अब तक कर रहे हैं, वह सर्वश्रुत है। ये जाति सेवक तो हमारी पुस्तक जरूर ही पढ़ेंगे। उसपर लेख लिखेंगे, आन्दोलन करेंगे और मोरिशसकी ओर भारतीय विद्वानोंका ध्यान खींचेंगे। मोरिशसके हिन्दुओंकी धार्मिक और सामाजिक स्थितिका सम्यक् ज्ञान उनको नहीं है। क्या उनके लिये यह पुस्तक उपयोगी नहीं होगी? भारत की हिन्दू महासभा इन बातोंको जान जाय तो अच्छा नहीं है? दो लाख हिन्दुओंका सवाल है। वह जरूर ही कुछ मार्ग बतलायगी। मान लो कि, भारत ने हमारे वास्ते कुछ नहीं किया, तो भी क्या? हमारा उत्तरदायित्व हलका हो जानेका तो समाधान हमको मिलेगा। भारतसे समय समय पर, जाति चिंतक यहां आया करते हैं। थोड़े दिन के निवास से

यहां की स्थिति को शायद वे बराबर नहीं पहचान सकेंगे। क्या हमारी पुस्तक से उनको कुछ सहायता नहीं पहुंच सकेगी ? लौट जाने पर वे भी भारतके लोगों को अवश्य ही यहां का हाल सुना सकेंगे। इसी प्रकार फिजी, अफ्रिका, ट्रिनिडाड, ब्रिटिश गायना, न्युझिलेण्ड आदि उपनिवेशोंमे, जहां जहां हिन्दू लोग बसते हैं, हमारी पुस्तक जा पहुँचेगी। वे भी हमारे समान ही परिस्थितिके साथ लड रहे हैं और हमारा अनुभव उनको निःसन्देह मार्गदर्शक होगा। हमारी स्थिति जानकर अपनी स्थितिके साथ वे उसकी तुलना करेंगे। हमारी भूलोंसे बचनेके प्रयास करेंगे अथवा हमारा गुण ग्रहण करेंगे. या हमको कुछ बतलायेंगे. कोई भी दृष्टि बिन्दुसे देखा जाय तो इस पुस्तकसे हानि तो बिलकुल ही नहीं; किन्तु कुछ लाभ होने की ही अधिक संभावना है। यहां तथा देश और उपनिवेशके समाचार पत्रों में 'हिन्दु मोरिशस' का नाम कुछ दिन चमकता तो रहेगा। चलो, और कुछ नहीं तो इतना ही सही ! इस पुस्तक से और एक फायदा है। मोरिशसमे पिछले साल के अन्तमें भारतीय प्रवास शताब्दी मनाई गई। इस अवसर पर भारतीयोंकी आर्थिक, शैक्षणिक, और राजनैतिक स्थिति पर बहुत कुछ प्रकाश डाला है। इस संबंधमे इंग्लिश और फ्रेंच भाषा में लिखी हुई दो पुस्तकें उसका प्रमाण है। परन्तु भारतीयों के धार्मिक और सामाजिक स्थितिके सम्बन्ध का उनमें पता नहीं लगता है। हिन्दुओं का जीवन धर्ममय है. उनके सौ सालकी जयन्तीके संयोग पर उनके धार्मिक और सामाजिक जीवनका कुछ विवेचन होता और पुस्तक के रूप में उसे संग्रह किया जाता तो, वह शताब्दी अधिक अर्थपूर्ण होती। हमारी यह पुस्तक, शताब्दी के कुछ ही मास बाद प्र-

शित होती है, वह एक सुसंयोग ही है। हम आशा करते हैं कि, हमारी यह पुस्तक 'हिन्दू मोरिशस' उपरोक्त त्रुटि की अंशतः पूर्ति कर सकेगी; क्योंकि उसका विषय ही हिन्दुओं की धार्मिक और सामाजिक स्थिति का चित्र रंगाना है। दूसरी बात यह है कि, मोरिशस के २ लाख हिन्दुओं में से तीन चार हजार मनुष्य इंगलिश फ्रेंच पढ़ सकेंगे, पर बहुजन समाज को तो शताब्दी सम्बन्धके ज्ञान से वंचित ही रहना पड़ेगा; क्योंकि उनकी मातृभाषामे कुछ लिखा नहीं गया है। अगर हमारी यह हिन्दी पुस्तक उनकी कुछ सहायता कर सकेगी तो हम हमारे मित्रों की यह इच्छा कि, भारतीय प्रवास शताब्दी के संयोग पर हम वैसी एक पुस्तक लिखे, हम समझते है कि, कुछ अंशमे तृप्त होगी और हमें भी उसमें आनन्द होगा।

इस पुस्तककी विशेषता यह है कि, उसमे गुण दोषोंका केवल आविष्कार करके लेखक चुप नहीं हो गया है। स्थान२ पर उसने सूचनाएं की है और अपनी राय तथा विचार स्पष्ट शब्दोंमे दर्ज किये हैं। कोई उनको पसंद न करे और उनका स्वीकार न करे; लेखक ने अपने प्रामाणिक विचार जनता के सम्मुख रखनेमें कसर नहीं की है। हमारा विश्वास है कि, जनता को जगानेका अथवा उनका ध्यान आकर्षित करनेका स्पष्टोक्ति ही एक योग्य उपाय है। हमारी पुस्तकका 'निचोड़' किसीकी राजी नाराजीके लिये नहीं है। हमारे विचार, अनुभव, विश्वास और साशकताका वह एक दर्पण है। बोलना एक और करना दूसरा यह हमारे खून में नहीं है। हमने देखा है कि, यत्न करने पर भी किसी व्यक्ति, वस्तु या स्थिति की झूठी प्रशंसा या झूठी निन्दा हमसे नहीं हो

सकती है। हम क्या करें हम लाचार हैं।

एक पंडित के लिये प्रचलित धर्म और समाजका संशोधन एवं सुधार करनेके हेतु से उसके गुण अवगुणों को प्रगट करना धोखाका काम है और मोरिशसमें तो वह भयप्रद है. अपनी रोटी पर भी लाठी चलाना है. पर उसकी भी हम उतनी चिन्ता नहीं करते हैं; क्योंकि हम लम्बोदर नहीं हैं अर्थात हमने हमारा पेट बहुत संकुचित कर रखा है। यह सब देख कर भी हम खसे नहीं और अब यह पुस्तक पाठकों के हाथ में हम धर ही देते हैं।

यही कारण है कि. शताब्दी सम्बन्धकी हम कोई पुस्तक लिख नहीं सकते हैं। शताब्दी एक आनन्द का विषय है। उस सम्बन्ध में जो पुस्तक लिखी जायगी उसमें प्रवासियों के अपने सौ वर्ष के यहां के निवास में की हुई उन्नति की प्रशंसा के सिवाय अन्य बातोंको, जो कि, उनकी अवनति का प्रदर्शक हैं; उसमें स्थान नहीं मिलेगा। शताब्दी की पुस्तकमे वाह वाह और शाबासकी भूर होनी चाहिये। शताब्दी किस लिये मनाई जाती है यह अन्यत्र हमने लिखा ही है। प्रवासियों ने विकट स्थितिमे रह कर भी लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंको अपनाया है, यह वाक्य बड़े गर्व के साथ शताब्दी-लेखक अपनी पुस्तकमे लिखेगा; लेकिन अपने धर्मकर्मकी ओर उनकी पीठ घूम रही है, इस वाक्यको लिखनेमें उसका हाथ कांपेगा। एक ब्राम्हणको वेदाचार्यकी उपाधि देना और साथ ही साथ यह भी कहना कि, वह शराबी है! ऐ-सी विसंगत शताब्दी-पुस्तकमें नहीं आ सकेगी।

हम सप्तसुरयुक्त गाना पसंद करते हैं। एक सुरके गायनमे हम

सेवामें हमारी नम्र प्रार्थना है कि, कृपया वे हमारी कड़ी आलोचना न करें; किन्तु मोरिशसकी परिस्थिति के अनुसार लिखी हुई भाषा ही यहांकी प्रजा, आसानीके साथ समझ सकती है। इस बातको दृष्टिके सामने रखकर पुस्तक की अन्य समस्त बातोंपर चाहे हमारा आशय, उद्देश्य, कल्पना विचार, सूचनाएं, विधि, निषेध, दृष्टि आदि पर वे खरीसे खरी टीका टिप्पणी कर सकते हैं। उससे हमको लाभ ही होगा।

संभव है कि, व्याकरणकी भूलें कुछ रह गई हों; लेकिन मोरिशस जैसे आफ्रिकीय टापूमें उनके प्रति दर गुजर करना ही हम समझते हैं कि उचित होगा।

भाषाके अतिरिक्त इस पुस्तकमें और एक दोष रह गया है और वह है द्विरुक्ति या पुनरुक्तिका। एक ही बातको एकसे अधिक बार कहना उसको पुनरुक्ति कहते हैं। लिखनेके झोंकमें कभी२ ऐसा हो जाता है। तन्तु कतिपय स्थानोंपर हमने पुनरुक्तिको इस लिये रहने दिया है कि, वह विचार या कल्पना वाचकके सामने सतत रहे और उसपर मनन करनेपर वह बाध्य हो। बहुतसे लोग ज्यों ज्यों पढते बढ़ते जाते हैं त्यों त्यों पीछेको विस्मरण करते हटते रहते हैं। उनकी स्मृति फिर ताजी करनेके लिये कतिपय पुनरुक्तियोंको हमने रहने दिया है। हम इस दोषकी स्वीकृति करते हैं, तब हमारे समीक्षक क्या कर सकेंगे ?

पुस्तक प्रकाशनमें तीन साल लगे हैं। छपाईका 'सारा

भार उठानेकी शक्ति हममें होती तो कदाचित पुस्तक अल्पावधिमें बन जाती; पर पुस्तक प्रकाशनके लिये करजोडी करनेमें ही हमको नाको दम आ गया था। उसीमें अधिक समय व्यतीत हो गया है और उसीसे पुस्तकके जन्ममें थोडा विलंब हो गया है। इस करजोडीका उल्लेख करते हुए यह भी कह देना अनुचित नहीं होगा कि, जिन सज्जनोंने हमारा मुंह खुलते ही उसमें दाना डाल देनेकी कृपाकी है उनके प्रति कृतज्ञताका भाव प्रकट किये विना हम नहीं रह सकते। इस संबंधमें श्रीमान घूरनसिंह एम० बी० ई० को १०० हम मार्क देते हैं। हमारे मित्रोंकी आर्थिक सहायतासे ही इस पुस्तककी सृष्टि हुई है, इस लिये उनको हम जितना धन्यवाद देंगे थोडा ही होगा। अब पाठकोंको सहृदयतासे पुस्तक पढ़नेकी प्रार्थना करके हम इस उपसंहारको समाप्त करते हैं।

## छपाई।

पुस्तक मोरिशसमें ही छपी है। उसमें अनेक गलतियां रह गई हैं। कहीं स्याही अधिक लगकर अक्षरका मुंह काला हो गया है तो कहीं स्याही न होनेसे अक्षरका धब्बाही रह गया है। टाइप भी बस नहीं है और वह भी नाना विध नहीं, जिससे सुन्दरता भी उसकी नहीं। ह्रस्व, दीर्घ, काना, मात्रा, अनुस्वार इत्यादि अशुद्धियां उतनी नहीं हैं; पर पन्ने पर नजर करो तो मुद्रण, कलाका अभाव साफ जाहिर होता है। मोरिशस में इंगलिश, फ्रेंच की छपाई अच्छी होती है; पर हिन्दी, हिन्दू की लिपी और भाषा होनेसे इंगलिश-फ्रेंचकी बराबरी करने को उसको और कितना समय लगेगा ईश्वर ही जाने। यहांके हिन्दी समाचार पत्रोंकी

छपाई देखनेसे हमारे कथनकी सत्यता मालूम हो जायगी। भारत में छपाई हुई हमारी 'हिन्दी दूसरी पुस्तक' के सम्बन्धमे हमको धोखा हुआ था; इस लिये उपर्युक्त त्रुटियों को जानते हुए भी हमको यह पुस्तक यहीं छपवाना मंजूर करना पडा है समाधान की बात इतनी ही है कि हमारे दत्तक देश मोरिशस मे यह पुस्तक छपी है; अर्थात, वह 'स्वदेशी' है और उसे अपनाना चाहिये। अतएव पाठकोंकी सेवामें हमारी अर्ज़ी है कि, वे कृपा करके पुस्तक को 'मीठी नजर' से देखे और स्वदेशी मुद्रण कला का साहस बढाने की भावना से उसे पढें।

पुस्तकका 'निचोड़' यहां समाप्त होता है। पुस्तकका मुख्य विषय जो मंदिर और संस्थाएँ हैं, उस ओर हम अब घूमते हैं, जिसमे प्रति मंदिर और संस्थाका अलग अलग वर्णन दिया गया है।

Mr Ranchchodjee G Desai, merchant, founder, promoter and president of the Mauritius Merchants Textile Association.

# मंदिरोंका इतिहास।

मंदिरोंके सम्बन्धमें हमको, जो ज्ञात हुआ है, उसके आधारपर हमने यह वर्णन लिखा है। इस प्रकरणमें हमने हमारा अभिप्राय प्रकट नहीं किया है। जो कुछ सुना या देखा, वही दर्ज किया है। भूल चूकके लिये पाठक क्षमा करेंगे।

ग्रंथकर्त्ता

# विष्णु क्षेत्र

पोर्ट लुईस।

लगभग ७४ वर्ष पूर्व पोर्ट लुइस नगरमें "आनंद वाटिका सोसाइटी" नामकी एक संस्था निकालनेकी चर्चा होने लगी और १६०६ के सालमें सरकारी कानूनके अनुसार उसकी स्थापना हुई। आरम्भमे उसमें १८ सदस्य थे। उसके कतिपय उत्साही सदस्योंने एक मंदिर निर्माण करनेका विचार किया। लारी (सड़क) सेन्देनीमे श्री० गिय्यो नामके एक साहबकी एक खाली जमीन थी। स्व० बाबू त्रिलोकीसिंहने एक भागवत कथाके समयपर मंदिरके लिये वह भूमि खरीद कर देनेकी प्रतिज्ञा की। कुछ दिनोंके बाद उन्होंने वह भूमि २०० रुपया मे खरीदी और उसमेसे आधी श्री० लालजी सीचरन, गोपीलाल छत्तर, जान फोकीर और स्व० सुखलाल के नामोंपर मंदिरके लिये प्रदान की और अपना वचन पूरा किया। उक्त महाशय 'आनंद वाटिका' के सभासद थे।

उपरान्त सार्वजनिक चंदा तथा भागवत कथा आदि साधनोंसे एक छोटासा मंदिर बनाया गया और उस स्थानका "विष्णु क्षेत्र" के नामसे प्रथम ही नामकरण हुआ।

कुछ दिन पश्चात समाचार मिला कि, सितादेल (किला) पर एक स्थानमे शिवलिंगकी एक मूर्त्ति देखी गयी है। वहां एक हिन्दू पलटनका निवास था और उन्होंने अपनी पूजा अर्चाके लिये एक स्थानपर शिवलिंगकी स्थापना की थी। पलटनके यहांसे चले जानेपर शिव बाबा घांस आदिसे अच्छा-

दित होकर वहीं गुप्त रीतिसे विश्राम करते थे। लोगोंको इस बातका पता लगनेपर गाजे बाजेके साथ वे वहां पहुंचे और बड़े समारोहके साथ शिवजीको वहांसे लाकर 'विष्णु क्षेत्र' मे उनकी लोगोंने स्थापना की। तबसे वहां शिवरात्रिका उत्सव होने लगा और परी तलावका जल शिवजीपर चढने लगा।

१६११ के साल में श्री. लालजी गोसांई सोसायटी के प्रधान बने। उसी साल इंग्लेण्डके स्व० राजा पंचम जार्ज के राज्यारोहण के उपलक्षमें संस्थाकी ओरसे एक राजनिष्ठा दर्शक मानपत्र (address) राजा रानीको यहां के गवर्नर द्वारा अर्पण किया गया था।

पण्डित द्वय बलदेव प्रसाद और रामअवध की बौद्धिक एवं धार्मिक सहायताका उक्त सज्जनोंको मंदिर निर्माण करनेमें समय २ पर लाभ पहुंचा है। स्व० पं० रामअवधका बनाया हनुमान स्थान का जीर्णोद्धार श्री भाग्य भाई भोज ने हाल ही में किया है। कुछ समय व्यतीत हो जाने पर श्री० त्रिलोकी सिंह की शेष आधी भूमि के स्वामी श्री. लालजी हुए। उस समय का मंदिर नाम मात्रका ही था। श्री. लालजी ने समय २ पर लोगों से कुछ पैसा बटोर कर मंदिरको बढाना, मरम्मत करना, एकाध उत्सव करना आदि प्रकार से यथा शक्ति लगभग १२ वर्ष विष्णुक्षेत्र की सेवा की है।

## श्रीमती सनातनधर्म प्रचारिणी सभा।

यह संस्था १६२१ में स्थापन हुई है। श्री. श्री. एम० बरन चौबे, सीतल सिंह, (अब बेरिष्टर) बिसुनदयाल गंगा, एस० घूरन,

(अब वकील) स्व० सिसंकर अन्तवन्त, (बाबू सिरकिसुन सिंह) पं० देव-दत्त, आर. रामा, एल० नन्दुचन्द (अब वकील) जैसे प्रतिष्ठित पुरुष सभा के सदस्य थे। बरन चौबे जी प्रधान थे। सभाकी स्थापना होने पर स्व० जुगतराय त्रिवेदी, श्री. श्री. नारायणदास काला, और नारायण भाला भाई इन तीन सज्जनों ने लालजी गोसांई से आधी भूमि ५०० रुपैयोंमें खरीदी और सभाको अर्पण की। बाकी आधी भूमि भी छत्तर माष्टर, मि० फोकीर, लालजी प्रभृति सज्जनों ने उनके सर्वाधिकारों के साथ सभा के हाथ सौंप दी। यह सारी भूमि अपने कब्जे में आते ही सभा ने उसकी सफाई की। कहते हैं कि, यह भूमि राकेत (नागफनी) आदि से भरी हुई थी। उसको उखेड़कर जमीनको साफ सुथरा करनेमें ही दो तीन सौ रुपैया खर्च हुआ है। उस भूमि को उसकी चारों ओर दीवार बना कर घेर लिया गया है।

सभा ने हिन्दुओं की एक धर्मशाला निर्माण करने का संकल्प किया और 'गंगसेन्स हिन्दू असोसियेशन'' के भवन में हिन्दुओंकी एक दूसरी सभा बुलाई। टापू भर के लगभग समस्त धनीमानी हिन्दू सभा में उपस्थित थे। जातीय गौरवता और जातीय आवश्यकताओं पर जोशीले व्याख्यान हुए। श्री. धनपत लाला (वकील) सभापति थे। २०,००० के करीब रुपैया कागज पर जमा हुआ। पर जब महाशयों से पैसा उगाहना होने लगा तब केवल ५०० रुपयोंकी रकम सभाको मिली।

मंदिरकी ओर अब सभा ने ध्यान पहुँचाया। शक्कर का भाव

अच्छा होनेसे चन्दा उगहया में सभाको सफलता हुई। स्व० श्री. देवीदीन रितु ने ५०० रुपैया देकर श्रीगणेश किया। लगभग २००० रुपैया इकट्ठा हुआ। पं० बलदेव सभा की ओरसे उपदेशक नियुक्त हुए और मंदिर नये ढंगसे बनने लगा।

## बोधा भगतकी संपत्ति।

यह एक धर्मप्रिय मनुष्य था। उसको कोई संतान या वारिस नहीं था। वह बीमार हुआ तब अपनी ,लगभग २००० रुपयों की संपत्ति स्व० सेठ जुगतराय के पास इस इच्छा से उन्होंने रखी कि, अपनी मृत्युके बाद वह धन किसी धर्म-कार्य में लगा दिया जाय। कुछ ,समय बाद उनकी मृत्यु हुई। कुछ रुपैया उनकी उत्तर क्रिया मे खर्च हुआ और शेष आधेसे अधिक मंदिर के कामों मे लगा दिया गया। पुजारीके लिये एक कमरा और सभाका कार्यालय उसी पैसे से बना है। इसका बहुतसा श्रेय स्व० श्री. सिवकिसुन सिंह के यत्न को है।

मंदिरमें दीपावली, कृष्णाष्टमी आदि उत्सवोंके अवसरोंपर उपदेश, भजन व्याख्यानादि होने लगे और पूजा अर्चा नियमित रूपसे होने लगी। सभाने भारतके दो विद्वान सनातनी उपदेशकोंको बुलाकर उनसे मोरिशसमें धर्म-प्रचार कराया। उन के नाम पं० पं० बन्सीराम और रामशरन थे। ये घटनाएं श्री० गुरुप्रसाद भगतके प्रधानत्वके समयकी है।

यह सब हुआ; पर मंदिर अब तक लोगोंको आनन्द नहीं

देता था। समय बदल गया था। हिन्दू जातिमें अपने बड़प्पन का भाव जाग उठा था। मोरिशसकी राजधनीके शहरमें वह एक भव्य, विशाल और आलीशान हिन्दू मंदिर देखना चाहते थे।

श्री० श्री० नारायणदास काला, नारायण भाला भाई, श्री० द्वारका दुबे और रामधारीसिंह (पोलीस कर्मचारी) तथा स्व० श्री० हरद्वारसिंह प्रभृति उत्साही पुरुष सभाको आ मिले। टापू भर घूमर कर उन्होंने कहींसे पैसा, कहीसे तोल (पत्रा) कहींसे लकड़ी, कहींसे चूना, कहींसे सीमेन्ट, कहींसे रेती, कहींसे पत्थर आदि जो कुछ भी मिले; मंदिरके लिये इकठ्ठा करना आरम्भ किया। अपने धर्म बाधव हिन्दुओंपर तो वह दावा करते ही थे; पर चीना, क्रेओल आदियोंको भी उन्होंने नहीं छोडा! बाबू गयासिंह और पं० अनिरुद्ध (आर्य समाजी) ने भी इसमें सहयोग दिया है।

अब ये लोग मंदिरकी मरम्मत करना या उसे थोडासा बढाना नहीं चाहते थे; किन्तु मंदिरको नये ढंगसे बनानेपर ही उन्होंने कमर कसी। पुराने मंदिरको तोड़कर फिरसे नयी सृष्टि का आरम्भ हुआ। मंदिर आधा बन गया और सभाका खजाना भी खाली हो गया। पं० देवदत्तसे भागवत कथा करायी और उसकी आय लगभग १००० रुपया मंदिरको अर्पण हुई। बस नहीं। पं० रामअवधको बिठाया। उनकी कथामे जो कुछ मिला वह भी मंदिरमे चढाया। भख बढती ही जाती

है! डालो जेबमें हाथ और चढ़ाव पांच पचास पत्थर। फिर काम बन्द। मजदूरोंको देना है। पुनः टटोलो अपने जेब! जेब भी ढीला होने लगा। अब क्या करना? फिर दौड़ो। पुनः हजार पांच सौ इकट्ठा किया। यह भी मंदिर खा गया। श्री. काला आदि सदस्योंने आनरेबल अच्छा के द्वारा म्यु-निसिपालिटीका दरवाजा खट खटाया। लाव, पैसा लाव। लग भग १८ महीनोंकी मिहनतके बाद नयार संस्थाने (म्युनिसिपालिटी) एक हजार रुपया देकर मंदिरका बोझा कुछ हलका किया। मास दो मासमें वह भी स्वाहा हो गया। उसी अवसरपर श्री. आनंदराव राव साहबने मंदिरको २५० रुपया प्रदान किया। श्री. आपा झाला उर्फ भगतने अब सभामें प्रवेश किया और बचे_सचे लोगोंको ढूंढ़ढ़ के निकालकर कुछ रुपैया एकत्र किया और, जो घटता था, वह अपने पैसेसे पूरा करके मंदिरकी पूर्ति करनेमें श्री. आपाजीने बड़ी ही सहायता पहुंचायी। अब दो सालसे श्री. श्री. गुरुप्रसाद भगत, सि. किसुनसिंह प्रभृति अनुभवी कार्यकर्त्ताओंका सहयोग कुछ शिथिल हो जानेसे और उक्त पोलीस कर्मचारियोंकी बदली हो जानसे श्री. श्री. काला, झाला आदि सभासदोंपर भारी जवाबदारी आ पड़ी थी। अ-धूरा काम पूर्ण करना ही था और वह उन्होंने उत्तम रीति से किया।

प्रधान पं० शिवशंकर पाठक (राजपाल) और मंत्री स्व० श्री. इन्द्राव सिंह ने अपना अपना कार्य उचित ढंगसे किया है।

पिछले साल [ १९३१-३२ ] में ही कोषाध्यक्ष कालाजी के हाथ से ७००० रु० मंदिरमें खर्च हुआ है।

The Late Mr Ramlalsing Nawaroy of Beau champ who was popular for his religious and social activities

आज दिन तक कुछ नहीं तो लगभग २०.००० रु० मंदिर कार्य मे लग चुका है। मंदिरपर तीन बडे गुंबज हैं और उनपर त्रिशूल विठाये हैं। मध्यवर्ती गुंबज ३३ फीट ऊंचा है।

ईश्वर बडा है और बडप्पन, मनुष्यके हृदयमें एक आदर भाव उत्पन्न करता है। इस मंदिरके देखनेसे ऐसा ही भाव आ जाता है। हिन्दुओंकी श्रद्धाकी किंचित् झलक यह मंदिर अब दे सकता है। विष्णुकी मूर्ति स्व० रामलाल तिवारीकी ओरसे दान मिली है। श्री० आपा भाई झालाने करीब २०० रुपयाके आभूषण मूर्तियोंपर चढ़ाये हैं। पुजारी, सामग्री आदिके लिये मासिक व्यय ३० रुपयोंके करीब है परन्तु आय का ठिकाना नहीं है। प्रति दिन पूजा, आरती वगैरे नियमानुसार कार्य होता है। साल १९३२ में विजया दशमीके दिन बड़े समारोहके साथ इस नये विशाल मंदिरका उद्घाटन हुआ था। ब्राह्मणों द्वारा हवन पूजन, उपदेश आदिके साथ बेण्ड बाजा की मधुर संगीतमें उत्सवकी समाप्ति हुई और आज लगभग दश वर्षोंसे अधिक समयसे चले हुए मंदिर-निर्माणके इस महा यज्ञकी पूर्णाहुति हुई। सेवा निवृत पुलिस इन्स्पेक्टर श्री० धूरनसिंह M. B. E. जो कि क्षत्रिय महासभाके प्रधान है, कुछ दिन सभाको आ मिले थे। मंदिरके साथ उनका पुराना संबंध है। श्री. दुबुरी मास्टर कुछ समय सभाके कार्यवाह रह चुके हैं।

एक वर्षके उपरान्त यहाके धर्मशील, वयोवृद्ध सुनार श्री० भायाभाई भोजने मंदिरके लिये राधाकृष्ण और लक्ष्मी नारा-

यणकी दो युगल मूर्तियां एवं नंदी तथा हनुमानकी एक मूर्ति प्रदान की है। उनका मूल्य १२०० रुपयाके करीब है। श्री० भायाभाईके घरसे मूर्तियोंका जुलूस बैण्ड बाजाके साथ निकला था, जो शहरके मुख्य मार्गोंमे घूमकर मंदिरमे पहुंचा। बड़े समारोहके साथ २४ जुलाई सन १९३३ को विष्णु मंदिरमें उनकी प्राण प्रतिष्ठा हुई। उस समय गरीबोंको अन्न समर्पण किया गया। अनाथालयको भी दान मिला। भाया भाईजीने उस सम्बन्धमें लगभग २,००० रुपया व्यय किया है। कथा, भागवत आदिमे आप सदैव खर्च किया करते हैं।

विष्णु क्षेत्र और सनातन धर्म प्रचारिणी सभाका जानो कि उपर्युक्त रीतिसे अवतार-कार्य समाप्त हुआ था। अर्थात, वे कार्यकर्त्ता तब हट गये और अब पिछले साल से दूसरा दल, मंदिर और सभाकी व्यवस्था देखता है। इस समय सभा के प्रधान श्री धनपतसिंह बिहारी हैं।

# मीनाची आम्मेन

पोर्ट लुईस।

सोकलिंगम मीनाची आम्मेन यह इस मंदिर का पूरा नाम है। मोरिशस के हिन्दू मंदिरोंमें प्राचीनता की दृष्टिसे मीनाची आम्मेन का तामिल मंदिर दूसरे नंबरका है। मोरिशसमे तामिज याने मद्राजियोंका निवास दो सौ वर्षोंसे है। इस पुस्तकके निचोडमें कुछ कुछ हाल हमने इतःस्तत दिया है। सन १८४५ के बाद मद्राजी भी कुलियोंमे भरती हो कर आने लगे। सन १७५६ में अर्थात फ्रेंच लोगोंके समयमें जांतू जाति के बहुतसे मद्रासी आने का पता लगता है। हमारे मोरिशसके इतिहासमे इस सम्बन्धमे पाठक पढ सकेंगे। अंग्रेजी राज्य हो जाने पर व्यपारी वर्ग भी आने लगा। मद्रजियोमे नाटकोटि चेटी नामक एक जाति है। मारवाडियों के साथ उनकी तुलना की जाती है। सूद पर पैसा चलाना यह उनका मुख्य व्यवसाय है। मोरिशसकी हिन्दी भाषा मे उनको महाजन कहना चाहिये। इन मद्राजी महाजनों ने याने नाटकोटि चेटी जाति के व्यापारियों ने ७० वर्ष पूर्व इस मंदिरकी सृष्टि की है।

मोरिशसके अधिकतर तामिल मंदिर, मारीआम्मेन या द्रौपदी आम्मेन के नाम से मशहूर हैं। कुछ थोडे सुब्रह्मण्यके है। राम, कृष्ण या शिव के कोई मंदिर नहीं है। मीनाची देवी का यह एक ही मंदिर है। मद्रास प्रांतके सुप्रसिद्ध मदुरा शहरमे इसी नाम का एक विख्यात मंदिर है। वहां एक मीनाची पंथ है, जो

मीनाक्षी देवीका उपासक है। मालूम होता है कि, इस मंदिर की सृष्टि करने वाले नाटकोटि चेटी, इस पंथके अनुयायी थे।

जहां यह मंदिर बना हुआ है, वहां समीप ही एक छोटा सा देवल था। कहते है कि, कोई कैलासों नामक व्यक्ति ने उसे बनाया था। वही उसका पुजारी था। कहते है कि, उस देवल का पुराना दरवाजा अबतक कहीं मंदिर में रखा हुआ है। मीनाक्षी मंदिर की अपनी ८-१० बीघा भूमि है; पर उससे कुछ आमदनी नहीं होती है। कहते हैं कि, इस भूमि के मालिक उपरोक्त कैलासों ही थे और उन्होंने मंदिरके योगक्षेमके लिये वह दान दी है। कोई कहते हैं कि, नाटकोटि चेटी व्यापारियों ने वह भूमि खरीद करके मंदिर को अर्पण की है। इन संक्षिप्त सुनी सुनाई बातों परसे हमारे पाठक समझ जायेगे कि, मंदिरका खरा नाम मीनाक्षी होने पर भी वह अबतक सर्वसाधारण जनता में "लेरजीज कैलासों" के नाम से क्योंकर पहचाना जाता है।

मीन यानी मछली और अक्ष यानी आंख, इन दो संस्कृत शब्दों के बहुव्रीही समासमें मीनाक्षी शब्द बना है। इस देवी की पूजा अर्चाकी कोई विशेष विधि हो तो उससे हम अपरिचित हैं। मद्रासियों में कलकत्तियाओं की अपेक्षा बहुत अधिक कर्मकाण्ड रहता है, यह तो सबको विदित ही होगा। मंदिर में मुख्य मूर्त्ति मीनाक्षीके सिवाय अन्य अनेक देवी देवतोंकी भी मूर्त्तियां हैं। उपमंदिर भी हैं और उनमें भी मूर्त्तियां हैं। कर्म-

निष्ठ देशी ब्राम्हण हरिहर अय्यर मंदिर के पुजारी है। आप अंग्रेजी भी जानते हैं। १०-१२ वर्षोंसे मंदिरका कारोबार उनकी सलाह से होता है। मद्रासियोंमे उनका अच्छा मान है। समय समय पर कुछ धार्मिक कार्य और उत्सव उनकी प्रेरणा से मंदिरमे हुआ करता है जिससे धर्म जागृति होती है। प्रसिद्ध व्यापारी श्री. कानाबाडी समय समय मंदिर की सहायता करते हैं। विशेष अवसरों पर अन्न दान भी करते हैं।

मंदिर पर मुख्य उत्सव कावडीका होता है। उस मौके पर कभी कभी गवर्नरका सत्कार भी करते है। कावडी उत्सव मे मसजिद के सामने बाजा बजाने के संबंध मे मुसलमानों ने आपत्ति की थी और हिन्दू मुसलमानोंका उपद्रव पहले पहल मोरिशस मे सन १८७७ में हुआ था। बारह साल बाद याने १८८९ मे फिर एक बार ऐसा ही दंगा हुआ था। कावडी का जुलूस तबसे दूसरे रास्ते से जाने लगा है। मीनाक्षी का मंदिर शहर से मील डेढ मील दूर है और वह एक विस्तृत भूमि पर बना है। उपरोक्त नाटकोटि चेटी व्यापारी बहुत दिन तक मोरिशस मे रहे नहीं। मंदिर बन कर तैयार हो रहा था कि, वे वापिस देश लौट गये, तबसे यहां के धनाढ्य और प्रतिष्ठित मद्रासी व्यापारी मीनाक्षी मंदिर की व्यवस्था रखते है। करीब पचास सालके बाद याने सन १९१० मे "दी मोरिशस हिन्दू कान्ग्रेगेशन" नामक सोसायटी मंदिर की व्यवस्था के लिये अधिकृत रीति से स्थापन हुई। मंदिरके लिये खास आय नहीं जैसी है। उत्सवादि सार्वजनिक चन्दे से होते है. मंदिरके सामने पका मंडप बना

है, जो विवाह आदि के लिये काम आता है. श्री. श्री. नारायणसामी पिल्ले, वजायर्दो पिळे, अन्नासामी पिल्लें, रामलिंगम चेटी, ए० आलागप्पा, नयसार, टी० मुत्तुसामी, वी० रानी, एस० वीरासामी नायडू, मारदे नल्लाभाडी, आदियों ने मंदिरके लिये अच्छे परिश्रम किये है। पूजा-पाठ सब कुछ यथा विधि होता है; परन्तु मंदिर शहर से दूर होने से और हिन्दुओंमे सामुदायिक प्रार्थना पद्धति न होनेसे अन्य मंदिरो के समान यहा भी भक्तगणों की दैनिक उपस्थिति वैसी ही रहती है।

---

## काली आम्मेन।

### वेल विलेज-पोर्ट लुइस।

एक भाविक क्रेओल किसी असाध्य रोगसे मरतेर बच गया था। उस समय की हुई अपनी मनतीके अनुसार उसने एक छोटासा पत्रेका देवस्थान बनाया। उसीका रूपान्तर स्व० मुरगा पाड़ियाचीने छोटेसे मंदिरमे किया। लगभग ४० वर्ष पूर्वकी यह बात है। उनके पुत्रने, जिनका नाम मुराया पड़ियाची था; अपने उद्योगसे सन १९०६ के सालमे उस देवस्थानका जीर्णोद्धार किया और वर्त्तमान मंदिरकी सृष्टि की। पाच साल बाद उनकी मृत्यु हुई. तब मंदिरपर, जो खर्च हुआ था, उसकी अदाईके लिये वह बेचा गया। श्री० आपासामी मुदलीने उसे खरीदा। चार साल पूर्व वह भी गुजर गए।

वसे उनके पुत्र मंदिरकी देख भाल करते हैं। श्री. रामे ायड्डू पुजारी हैं। तामिल उत्सवोंमेंसे अग्निचलन अधिक-ासिद्ध है। हमेशा लोग अपनी मानताएं वहां आकर पूरी करते हैं। मन्दिरको अच्छी आमदनी होती है। पुजारीको कोई तलब नहीं है, पर कहते हैं कि, पुजारी ही मंदिरके मालिकको प्रति मास कुछ देता रहता है। एकड़के चौथे हिस्से भूमिपर यह मंदिर बना है, सब काम शीलाका है। पेचाई (पिशाच्च) मुनीश्वर, (डी) मादेवीरे, सुब्रह्मण्य, मारी आम्मेन, काटेरी, हनु-मान आदि मूर्तियां हैं। पानी, बत्ती आदिका प्रबंध अच्छा है। मंदिरकी बनाईमें तीन चार हजार रुपया खर्च हुआ है।

आब बियन डोकमें ऐसा ही एक और तामिल मंदिर है, जिनका ज़िफें मासें (अग्निचलन) मुख्य त्योहार है।

---

# सन्त पंथी।

## शिवनारायन स्वामीका धाम।

## ले सालीन-पोर्ट लुइस।

इस मठका हमने पहले कभी नाम भी नहीं सुना था। ५५ वर्षका यह पुराना स्थान है। कलकतिया हिन्दुओंका राज-धानीके शहरमें यही पहला पवित्र स्थान है। श्री. श्री. दुखन और गाविन नामक दो धर्मशील व्यक्तियोंके उद्योगसे सार्वत्रिक चन्दे द्वारा इसकी निर्मिति हुई है। शिवनारायणी पंथके अनु-

यायी अब बहुत थोडे रह गए है । पंथमें प्रवेश होनेपर भी जात पात तो कायम ही रहती है, जिससे फिर अपनी२ जात में जाकर अन्तमें हिन्दूके हिन्दू ही । अर्थात सदैव चमार और निरंतर दुसाध । यही हालत कबीर पंथकी भी है । ( पंथका उद्देश्य वास्तविकमें जात पात तोडनेका है ) इस समय बहुतो ने आर्य समाजमे प्रवेश किया है । धाम, पत्थरकी दीवारोंका बना है और ऊपर लोहेके पत्ते हैं । धाममे कोई मूर्ति नही हैं, केवल पंथका एक पुस्तक है, जिसका नाम "सन्त शरण" है और वह एक हस्तलिखित प्रति है । महन्तका नाम सन्तु-राम है और पुजारी मनुराम पांडवा है । इधर उधरसे मागकर के उनका उदर-निर्वाह होता है । धामकी मरम्मत के लिये श्री० दुखी गंगाजीने १०० रुपये की लकडी प्रदान की है । समयर पर कुछ बच्चे आ जाते हैं और पुलिस पेनशनर श्री० राधे उनको हिन्दी पढ़ाते हैं । श्री. लालजी गोसांई धामकी यथाशक्ति सहायता करते हैं । आज कल पंथका दौर दौरा नहीं है जिससे उनके मठ और अनुयायी दिन प्रति दिन अदृश्य होते जाते है ।

---

## लक्ष्मीनारायण ।

### पोर्ट लुइस ।

लारी (मु:याक) मोपे में यह स्थित है । मंदिरकी भूमि श्री. हुर गंगा जी की दान की हुई है, जिसकी कीमत अन्दाज एक

Mr Ramjatan Gungah of New Grove, one of the founders of the Geeta Maha Mandal

हजार रुपया है। मंदिरकी सृष्टि 'आनन्द वाटिका' सोसाइटी द्वारा हुई है। श्री. मूलजी भाला ने २५० रु० देकर कार्य आरम्भ किया। श्री. श्री. मोहिन मारते, रजाअर, पियान प्रभृति सज्जनोंसे सामानके रूप मे सहायता मिली है। इसी प्रकार श्री. श्री. हनुमान, कोटापा, आनन्द राव आदि सदार महाशयोंसे नकद रकम प्राप्त हुई हैं। सोसाइटी के प्रधान श्री. लालजी गोसांई और उनकी पत्नी दुखनी देवीने बड़े परिश्रमके साथ छोटीर रकम मन्दिरके लिये अच्छा धन इकट्ठा किया था। त्योहार मनाए जाते हैं और नियमित रीतिसे पूजा आरती होती है। मन्दिरमें चित्रोंके रूप मे अनेक देवी देवताओंका पूजन होता है।

मंदिरके साथ पाठशाला भी है जिसमें ७०—७५ बालबालिकाएं हिन्दीकी शिक्षा पाती हैं। सन १९३० में यह बनकर तैयार हुआ इसमें २,३०० के करीब रुपया व्यय हुआ है।

उनकी पत्नी श्रीमती दुखनी देवी, सोसाइटीके अंतरगत "महिला मंडल" की प्रधाना है। आप एक धर्मशीला, उत्साही स्त्री है। अटका विवाह, निर्धनकी मृत्यु तथा गरीबकी मदद आदि अवसरोंपर देवीजी से यथा शक्ति सहायता मिलती है और वह भी दूसरोंसे याचना करके!

श्री. लालजीके घरमे भी एक स्थानपर मूर्तियां रखी हैं और वह रोज दोनों उनकी पूजा करते हैं।

# ठाकुरबाड़ी

## पोर्ट लुईस ।

इसका दूसरा नाम विष्णु मंदिर है। ओफासी सड़कमें यह स्थित है। कलकतिया अथवा बिहारी हिन्दुओं का शहर में यह पहिला मंदिर है। उसके मालिक स्व० श्री. रामसुंदास बुलाकी नामक अपनी जात के श्रद्धालु सज्जन थे। लगभग ४० वर्ष पूर्व उन्होंने उस छोटेसे मंदिरको निर्माण किया था। वह राम भक्त थे और उनकी लम्बी शुभ्र दाढी ऋषियों का स्मरण कराती थी। पूजा के लिये ब्राम्हण होता था। सारा खर्च बुलाकी जी करते थे. मंदिरका उपयोग धर्मशाला के तौर पर होता था और अतिथियोंको खान पान भी मिलता था। कहते हैं कि, चिड़ियाओं को वह रोज एक सेर दाना खिलाते थे तथा चींटियों को शक्कर देते थे।

ओढनी, रुमाल आदि वस्त्रों पर रामनाम छाप कर उसका प्रचार करनेका श्रेय उन्हीं को है। उन्होंने कई बार देशकी यात्रा की थी। बीस साल की बात है, देशभक्त, तेजस्वी पंडित जयशंकर ने (अब स्वर्गवासी है) इस ठाकुरबाड़ीमें एक महायज्ञ किया था, जिसमें मोरिशस के सुप्रसिद्ध पंडित तथा धर्मात्मा पुरुष उपस्थित थे। उपरान्त वह मंदिर बुलाकी जी से २,००० रुपयों में खरीद किया गया। मंदिर बिक जानेसे उनका चित्त उदास हो गया था और भक्ति भाव में बाधा आने लगी थी। उनको पछतावा हुआ और रुपया लौटा कर पुनः वे मंदिर के मालिक

बने। खरीददारों ने भी उनके साथ कड़ा व्यवहार नहीं किया। पं० जयशंकर भी यकायक निर्वासित हो चुके थे और लोगों में डर समा गया था। सब काम स्थगित सा हो गया था।

उनके पुत्र श्री. कालीचरन इस समय मंदिरके स्वामी हैं। समय बदल गया है और मंदिर भी उसीके फेर में है।

## विश्वनाथ मंदिर।

### वाले दे प्रेत।

उपरोक्त स्थानके प्रतिष्ठित रईस स्वर्गस्थ श्री. देवकीनंदन बिहारी और उनके भ्राता बाबू धनपतसिंहके उदार दानों से यह मंदिर निर्माण हुआ है। उनसे आधा बीघा जमीन और १,२५० रुपया नकद मिला है और कार्यारम्भ हुआ। श्री. लछमन दास, श्री तिलकधारी उर्फ रकटू आदि वहां के श्रद्धाशील निवासियोंसे सम्यक सहायता पहुंची है। सन १९२३ में क्रमशः छोटी मोटी रकमोंसे शिवालय बनके तैयार हुआ। एक वर्ष उपरान्त स्व० देवकीसिंहजीका दिया हुआ शिवलिंग वहां विराजमान हुआ। प्राणप्रतिष्ठा विधिके आचार्य पं० दौलतराम एवं श्री. अमर पंडित थे। मंदिरके पार्श्वभागमें और एक छोटासा देवस्थान है, जिसमें गणेश. राम, सीता, कृष्ण, विष्णु तथा महावीरकी मूर्तियां स्थित हैं. प्रति दिन प्रातः सायं पूजा आरती होती है. पुजारीके लिये एक कमरा

और साथ ही दूसरा कमरा पाठशालाके लिये बना रखा है

मूर्तियां अन्यान्य व्यक्तियोंसे दान मिली है. प्रति एकादशी को शिवालय पर सत्यनारायणकी कथा होती है। मुख्य धार्मिक त्यौहार मनाये जाते हैं। पानी आदि का प्रबन्ध अच्छा है। इस सबमें लगभग ५,००० रु० खर्च हो गया है। भूमि तथा मूर्तियों की कीमत इसमें जोड़ दिया जाय तो यह रकम ७,००० के समीप पहुँच जायगी। एक विशेष बातका यहां उल्लेख करना चाहिये। बात यह है कि, यह सब पैसा वाले दे प्रेत और समीपवर्त्ती लोगोंसे ही प्राप्त हुआ है। जो कुछ किया है, वह सब अपने बल पर ही। केवल माननीय बाबू गजाधर और बोनाके के प्रसिद्ध बा० रामभजन सिंह की ओर से अपनी इच्छा से जो कुछ मिला है, उसे सहर्ष स्वीकार किया है।

शिवालयके संचालनके लिये 'वाले दे प्रेत हिन्दू सोसाइटी' नामक अधिकृत संस्था सन १९२६ में स्थापित हुई है, जिसके प्रधान बा० धनपत सिंह ही हैं। उत्सव आदि पर, जो अधिक व्यय होता है, उसकी पूर्त्ति तथा प्रति दिन की पूजा आदि खर्च आप ही करते हैं। मंत्री श्री. रकटू जी तथा कोषाध्यक्ष श्री. बजरा रघुवीर अच्छा सहयोग देते हैं। गुम्बजके साथ मंदिर की ऊंचाई करीब २० फीट है। यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं कि, वहां के नेता बा० धनपत सिंहके संचालन से ही मंदिरका प्रबंध उचित रीति से होता है। मासिक व्यय १५-२० रुपया है, जो आपस में ही परिश्रम करने पर; पर जरा कठिनाई

साथ, वसूल हो जाता है। मंदिर हमेशा साफ सुथरा रहता है।

## विष्णु मंदिर।

### वांवासें।

श्री. कम्वत कोडिया पाल्ने इस मंदिरके जन्म दाता है। लगभग ३० वर्षका यह पुराना है। मुख्य स्थानपर कोई मूर्ति नहीं केवल एक शीला है। उसीकी पूजा होती है और उसीको विष्णु अथवा आदि स्थान या मूलस्थानके नामसे पुकारते हैं। "गोविन्दन" मुख्य उत्सव है। रोजकी पूजा पुजारी करते है, जो कि मालिक है, विशेष कार्यके लिये ब्राह्मण बुलाया जाना है। १,००० के करीब उसमे खर्च हुआ है। गणेशका ऐसा ही और एक नामिल देवल ऊपर है।

## द्रौपदी आम्मेन

### राज हिल।

लगभग ६० वर्षका यह पुराना मंदिर है। वहांके प्रतिष्ठित रईस स्व० मुर्गी नजगाध्यरजीने अपनी ३-४ बीघा भूमि पर इसे बनाया था। उसकी ऊचाई करीब २० फीट है। मुख्य मूर्ति द्रौपदी माताकी है तथा गणेश, सुब्रह्मण्य आदि

मूर्तियां भी विद्यमान हैं। तंजरास्वामीका स्वर्गवास होनेपर मंदिरके लिये बुरे दिन आए और मंदिरकी भूमि साहूकारके हाथमें चली गई। बहुतसा समय व्यतीत हो जानेपर सन १९११ में वहांके धर्मशील धनाढ्य स्व० श्री. सुब्रह्मण्य नाडारने महाजनको (बैरिस्टर जेलेके पिता) १,५०० रुपया देकर मंदिरको छुड़ाया और "हिन्दू तामिलाल बेनिवोलेंट सोसाइटी" नामक संस्था स्थापन करके मंदिरको उसे सौंप दिया। उस समय मंदिर एक कमरेके परिमाणका था और उसको पत्तोंसे छा-या हुआ था। उन्होंने सार्वजनिक चन्देसे १०,००० के करीब रुपया एकत्र करके मंदिरका पुनरुद्धार किया। पक्का मंडप बांधा और उसको अब एक विशाल स्थान बना दिया है। १९१७ में नाडारजीका स्वर्गवास हुआ, तब उनके भतीजे श्री. सुब्रु-वीरें नाडार मंदिर-संस्थाके प्रधान नियुक्त हुए। इनके समयमें पुजारीके लिये कमरा, स्नानगृह उपगृह इत्यादि बने हैं। स्व. श्री. उदहामल गंगाराम ओजमाल्वोने हर एक मूर्तिके पास पानीके नल बिठाए हैं। बिजलीकी रोशनी है: पर मूर्तियोंके पास तेल की टिमटिमिया बत्ती ही बला करती है। देखो ब्रह्मश्री० एग्राम्बर अय्यर २२ सालसे पुजारी है।

सुब्रह्मण्यकी कावडी, मरी अम्मेनका जुलूस और अग्नि-चलन ये तीन प्रमुख उत्सव मनाए जाते हैं। अग्निचलनके उत्सवपर हनुमानकी ध्वजा चढ़ाई जाती है। कावडीके लिये मोरकी और मरी अम्मेनके लिये हंसकी ध्वजाएं चढ़ती हैं।

सदस्योंके लिये मासिक चन्दा नहीं। त्योहारोंपर होनेवाला

खर्च; हर एक जात के मुखिया, अपने बिरादरी वालोंसे चन्दा वसूल कर लाते हैं। कमी अधिक की पूर्त्ति प्रधान नाडार जी से होती है। वार्षिक आय--व्यय हजार रुपयों के करीब है। पुजारीको कोई वेतन नहीं। शिवरात्रि के अवसर पर कांवर्थी गणोंको ठहर कर विश्राम करनेके लिये मंदिरका अच्छा उपयोग होता है।

प्रधान नाडारजीका कथन है कि, नवयुवक लोग मंदिर मे दिल-चसपी नहीं रखते हैं। वे जूता उतारना नहीं चाहते और पतलून मैला होनेका उनको डर रहता है, जिससे वे मंदिरसे मुँह मोड़ लेते है। यह बूढे जवानकी खटपट हमारे विचारमें सर्वत्र चल रही है।

मंदिर के जन्म से आज दिन तक लगभग २०,००० रुपया उसमें लग गया है।

---

# द्रौपदी आम्मेन।

## स्टानले-रांजिल।

तामिल प्रजाका यह एक करीब ७५ वर्षका पुराना मंदिर है। स्व० श्री. किसने मेसत्रीका वह बनाया है। भूमि कोठीकी है। आरम्भ मे वह बहुत छोटा था; पर १६१७ में स्व० वेलकुटी सीनियेके उद्योग से सार्वजनिक चन्दे द्वारा मंडप आदि से मंदिर

विशाल बना और इन्टरप्रेटर निवेडग्रम बंधु आदि के सहयोगसे मंदिरके संचालन के लिये एक संस्था बनाई गई।-श्री. श्री. कानावाडी, एम० कुमुन्तुसामी प्रभृतियों से सहायता पहुंची है।

"क्रिमनेन मेमर्की तामिलाल बेनिवोलेन्ट सोसाइटी" यह उसका नाम है। मंदिरके मूल निर्माणकर्त्ता श्री. क्रिमनेनका नाम सम्था को देकर तामिलों ने वह उनका स्मारक बनाया है। स्व० वेलकुटी के दामाद श्री, व्ही. सभापती कुछ समय तक प्रधान रहे हैं। चार पाच साल से संस्थाके सदस्योंमें मतभेद बढ गया है और वेलकुटी जीकी विधवा पत्नी तथा श्री. सभापती इस समय मंदिरका सचालन कर रहे हैं। मंदिर मे अनेक मूर्तिया है, एक पुजारी भी है।

कावडी और अग्निचलन मुख्य त्यौहार हैं। इसी. मंदिर पर सामाजिक कार्य भी होते हैं। योगिराज, श्री. जैमिनी मेहता तथा डा० लछमय्याका स्वागत यहा हुआ था।

तामिलोंमे जाति पातिके झगडे तीव्र रूप धारण करते है और फलस्वरूप नये मंदिरों की सृष्टि होती है। इसी प्रकार से बन हुए रोजहिलमे और दो मंदिर है, एक है सडक लारेन पर और दूसरा है नदीके उस पार। स्टानले में भी एक ऐसा ही खाली पडा हुआ स्थान है।

कलकतियाओंका एक ७० वर्षका काली-स्थान समीप ही है। वहीं इसाइयोंका भी एक मंदिर है, जो अभी १२--१५ साल
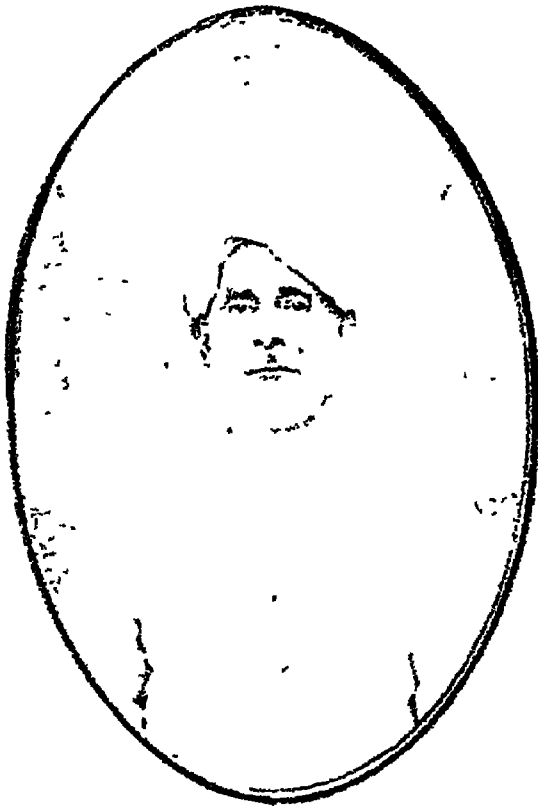
Mr Doorgaprasad Bhagut of Rose Hill, one of the founders and Promoters of Geeta Pracharak Maha Mandal

का बना हुआ है; लेकिन इस नवयुवकका पुरुषार्थ देखकर कविकी बोलीमे योजना हो तो यही कहा जाएगा कि, अपने पड़ोसियोंको वह कह रहा है कि, "हे देवी माता, आप अब वृद्धा हो गई हैं. आपसे अब कष्ट न हो सकेंगे, आप अब आराम कीजिये !! "

जरा ऊपर "किरवल बाबा" का भी एक स्थान है और वहां मुर्गी, बकरीका नैवेद्य चढ़ता है।

स्टानलेके आस पास तीन चार मीलके फासलेमें विंयानो, एवेन, लाशोमिअर, कोतगाडे माउन्टन लालब्रीज, बोबासे पेर लावाल रोड, क्रेसोविल, बो सोन्ज, प्लेजांस, फीनिक्स आदि जगहोंपर तामिलोंके छोटे छोटे देवल स्थान हैं। यहांके कर्त्ताधर्त्ता पुजारी ही होते है। कोई२ स्थान तो बन्द ही रहते हैं। कभी खुल भी जाते हैं। किसीको कुछ प्रेरणा हुई, किसीको दो चार पैसेकी प्राप्ति हुई या किसीकी कुछ मानता पूरी हुई वगैरे अवसरोंपरे कुछ मेला लग जाता है तथा कभी उत्सव भी मनाए जाते हैं।

# हरिहर-मंदिर।

## वासें रोड--कात्रवोर्न।

तारीख १६ मास फरवरी सन १६३३ के दिन उक्त मंदिर में शिव लिंग की बडे समारोह के साथ विधि पूर्वक प्राण प्रतिष्ठा हुई। बाबू धाना महतों की ओरसे दान मिली हुई भूमि पर यह मंदिर बना है। मंदिर का प्रबन्ध 'शिवोपासक संस्था' द्वारा होता है। १६३० में यह सोसाइटी राजमान्य हुई है। उसके प्रधान श्री. बैचू माधो मिसर ने ५०० से अधिक रुपया मंदिर बनवाने के लिये दे कर वहा की प्रजा मे एक चैतन्य उत्पन्न किया। साथ ही साथ श्री. दुर्गा प्रसाद भगत २००, बाबू छेदी सिंह १५०, सम्पत कुटुम्ब १००, काला बाधव १०० तथा अन्य छोटी मोटी रकमे और शेष सर्वसाधारण चन्दसे २,५०० रुपयोंकी लागत का यह शिवाला निर्माण हुआ। भूमिकी कीमत उसमें जोड दी जाय तो यह रकम ३,००० तक पहुँच जायगी। स्त्रियां और अहिन्दुओंसे भी कुछ सहायता पहुंची है।

पं० पं० दौलत राम, राधाकृष्ण, देवदत्त, सूरजप्रसाद आदियों के हाथ से प्राण प्रतिष्ठा हुई है। मंदिर के सामने मंडप है, जिसमें कथा उपदेश, प्रार्थना, भजन आदि होता है। प्रति दिन प्रातः सायं पूजा-पाठ होता है। हर मंगलवार को कात्रवोर्न की सरकारी पाठशाला के हिन्दू विद्यार्थी दो पहरके बाद मंदिर में आकर आधा घंटा प्रार्थना करते हैं और इस प्रकार धर्म-शिक्षा पाते हैं।

हमारे विचार में यह एक बहुत ठीक बात है। अन्यान्य मंदिरोंके संचालकों के लिये यह विचारणीय कार्य है। प्रति रविवार प्रातःकाल से १०॥ बजे तक नर नारियां, बाल बालिकाओं की भीड़ रहती है। पूजापाठके उपरांत धर्मोपदेश होता है। समय समय पर सत्यनारायण की कथा होती हैं। समस्त मुख्य धार्मिक उत्सव मनाये जाते हैं; परन्तु शिवरात्रि के महोत्सवपर अधिक मेला लगता है।

शिवोपासक सोसाइटी के १५० के समीप सदस्य हैं और मासिक चन्दा चार आना है। संस्थाके उद्योगसे तीन हिन्दी पाठशालाएँ चल रही हैं।

मंदिर बनवाने में संस्था के मंत्री बाबू सुकन गया, कोषाध्यक्ष बाबू शिवशंकर सिंह, पंडितद्वय जयशंकर गणेश तथा रामव्यास, बाबू गोपाल सिंह प्रभृति सज्जनों ने अच्छे परिश्रम किये हैं। बाबू घुरनसिंह M. B. E. ने मंदिर के लिये एक घंटा प्रदान किया है और जनता मे समय२ पर व्याख्यान आदि द्वारा जागृति उत्पन्न करके आप धार्मिक कार्योंमें सहयोग देते रहते हैं।

शिक्षा तथा शुद्धि संगठन आदि सामाजिक कार्योंकी ओर भी संस्था का ध्यान है। कानवोनेके समीप एक मध्यवर्ती स्थान पर ऐसे मंदिरकी आवश्यक्ता थी, उसकी पूर्ति अब हो गई है और वहां की हिन्दू जनता को अपना अध्यात्मिक कल्याण साधनेका साधन प्राप्त हुआ है।

# मेरी आम्मेन
## मोर्ताइ कोत दे गार्द।

कालवोनेके समीप यह देवल है। इसकी स्वामिनी, भूत पूर्व आनरेबल नारायणसामी किसटननकी धर्म पत्नी है। आप ही देवलकी देख भाल करती है। प्रति दिनकी पूजाके लिये एक पुजारी है जो वहीं रहते हैं। मुख्य मरी आम्मेनकी मूर्तिके अतिरिक्त और भी देवी देवताओंकी मूर्तियां हैं। उत्सवोंमें प्रधान उत्सव अग्निचलनका है। खर्चेकी कमी अधिककी पूर्ति श्रीमती नारायण स्वामी करती हैं। वहांकी तामिल आबादी घट जानेसे देवल जरा चिंताग्रस्त ही प्रतीत होता है।

---

# शंभुनाथ मंदिर।
## कांफुकरो।

इस मंदिरके जनक स्वर्गस्थ श्री. मदनराम गऊन हैं। आप पुलीस पेन्शनर थे। उन्होंने अपनी आधा बीघा भूमि और ५०० रुपया नकद देकर कार्यारम्भ किया। आप एक श्रद्धालु, उत्साही मनुष्य थे। सन १९१८ में शिवालयका शिलारोपण हुआ। पं० राममनोहरजीकी सलाह उन्हें मिला करती थी। बाबू इन्द्रजीतसिंह तथा पं० मुरली पाण्डे आदियोंके सहयोगसे काम होने लगा तब सार्वत्रिक चन्दा बटोरा गया, जिसमें वकील

श्री. धनपत लाला की तरफ से ४०० रु० प्राप्त हुआ था। महर्षी प्रकाश सोनाजी का १०० रुपया है। पांच साल की मेहनत के बाद शिवालय बन कर तैयार हुआ; तब सन् १९२३ मे शिवलिंग की बड़ी धूमधाम से पं० पं० राधाकृष्ण शास्त्री, मुरली पांडे प्रभृति द्वारा प्राण प्रतिष्ठा हुई। गुम्बजके साथ मंदिर २५ फीट ऊंचा है। दो साल बाद मंदिरके लिये 'श्री. शम्भुनाथ सोसाइटी' नामक अधिकृत संस्था स्थापन हुई। पहिले प्रधान पं० मुरली पांडे थे। एक हिन्दीकी पाठशाला चल रही है। त्यौहार मनाये जाते हैं। एक पुजारी हर रोज की पूजाके लिये है। मंदिरकी बनाई में ५,००० रुपया के समीप व्यय हुआ है। इस समय पं० सहदेव ओझा संस्था के प्रधान है और मंदिर पर हमेशा कुछ न कुछ प्रचार, कथा उपदेश हुआ करता है।

---

# कबीर बाड़ी।

## बाकुआ।

प्रसिद्ध जमीन्दार श्रीमान सेवादास जी ने लगभग २५-३० हजार रुपयों की लागत का यह मंदिर सन १९२२ में बनाया है। साथ बैठका भी है। कबीर बाड़ी में रातो दिन दीपक बला करता है। उसमे कोई मूर्त्ति नहीं।

सेवादास जीका पूर्वाश्रमीय नाम सुकन बुधन है। इनकी आयु इस समय ७३ साल की है। इनके पिता बुधन सिंह बाबू ८० वर्ष पूर्व २० सालकी अवस्था मे मोरिशस पधारे थे। यहां आनेके कुछ दिन उपरांत उनको स्वर्गीय बद्रीदास जी ने कबीर

पंथ की दीक्षा दी, तथा उनका नामाभिधान रामकृष्ण भी हुआ और तबसे वे तारनदास नामसे मशहूर हुए। सेवादासजी को उनके पितासे ही कबीर पंथ की शिक्षा दीक्षा मिली थी। उस समयके एक महन्त स्वर्गीय रामलगन जी ने श्री. सेवादासजी की धर्मश्रद्धा, सादा जीवन तथा नम्र स्वभाव को देख कर अपने जीवनमे ही उनको महन्त के पद पर चढाया और तबसे अर्थात ४० वर्षों से आप उसपर आरूढ हैं। महंत साहब ने आजतक.सौ मनुष्योंको कबीर पंथकी दीक्षा दी है।

यह पन्थ कबीर साहबको अवतार मानता है और उनका जन्म काशी नगरीमे बतलाते हैं। कबीरपन्थियोंका विश्वास है कि, ईश्वर एक है और वह निराकार है। सोलहवीं शताब्दीमे महात्मा कबीरका अवतार हुआ है। जातिपाती तथा छूआछूत को वह नहीं मानते हैं। मास मदिराका सेवन इस धर्ममे वर्ज्य है। दया, क्षमा, शांति आदि नीति तत्वों पर ही इस धर्म की स्थापना हुई है उनके धर्म विधियोंमे हिन्दुओंके समान कर्मकाण्डका निरर्थक झंझट नहीं है।

चौका और आरती ये दो प्रधान विधि हैं और वे बहुत ही सादे हैं. लोगोंसे प्राप्त फल, मेवा, मिठाई, नारियल आदि पदार्थ एक खास स्थानमें रखे जाते हैं. इस स्थानको चौका कहते हैं महंतजी अपनी गद्दीपर स्थानापन्न होते ही पूजाका अरम्भ होता है। सब कार्य समाप्त होने पर उपरोक्त पदार्थ प्रसाद रूपमे उपस्थित जनों को दिये जाते हैं। इसके बाद भण्डारा याने प्रीति भोजन होता है

और उस दिनका कार्य समाप्त हो जाता है। प्रति वर्ष दो उत्सव मनाए जाते है। एक ज्येष्ठमासकी आमावस्या के दिन को होता है और दूसरा माघ मास पौर्णिमा की रात्रिको होता है। ज्येष्ठ मासमें होनेवाले उत्सवको "वर्षाग्रत" कहते है। वह उनका कबीर साहबका जयन्ती–उत्सव ही है।

विवाह, अंत्येष्टि आदि संस्कारोंके लिये कोई खास विधि या निषेध नहीं है। अर्थात, अपनी अपनी रीतिके अनुसार कबीर पंथी आचरण कर सकता है। कबीर साहबके तत्त्वज्ञानसे मालूम होता है कि, हिन्दू-मुसलमानोंको एक सूत्रमें लाकर उन दो महान धर्मोंके अनुयायियोंमे प्रेम और शांति स्थापित करने के हेतुसे ही कबीर साहबने एक नये पंथकी स्थापना की थी।

दम्भ, आडम्बर, मिथ्याचार आदिपरके उनके चाबूक ऐसे लोकप्रिय और हृदयस्पर्शी हैं कि, हिन्दी भाषा बोलने वालों के मुंहमें वे दोहे हमेशा खेलते रहते हैं तथा हिन्दी साहित्य में उनको अच्छा स्थान प्राप्त हुआ है।

उनका सम्मान दर्शक शब्द साहब है और बन्दगी शब्द से कबीर पंथी लोग परस्पर अभिवादन करते हैं। अपने इस अभिवादनवाची शब्दसे कृत्रिम ऊंचे भावको दूर करनेकी कबीर महात्माने चेष्टा की है। धार्मिक दृष्टिसे सब मनुष्य समान हैं, यह उनका सिद्धान्त है। मुसलमान, ईसाई आदि धर्मोंमे ऐसे शब्द हैं। क्या हिंदू धर्मावलम्बी लोग ऐसे ही किसी शब्दकी सृष्टि नहीं कर सकते?

श्री० सेवादासजी कई वर्षोंसे विधुर हैं और पुत्र पौत्र आदिकी अकाल मृत्युके कारण दुखित हैं। अपनी वृद्धावस्था का समय, ध्यान मनन पठनमें एक वानप्रस्थीके समान आप व्यतीत करते हैं। सेवादासजी धनाढ्य सज्जन हैं, जिससे उनका दरवाजा हमेशा खटखटाया जाता है और यथाशक्ति लोगोंको संतुष्ट करते हैं।

कबीर वाड़ीके लिये मासिक व्यय रुपया १५ है और वह स्वयं महन्तजीसे ही होता है। कबीर पंथके धर्म-पुस्तकका नाम "सत्तनाम कबीर" है।

---

## पिची वेरजे-सेंपियेर।

में एक कबीर आश्रम है। स्व० लोकदासका बनाया ४० वर्षका यह पुराना स्थान है। वह ब्राह्मण वंशके थे और आजन्म ब्रह्मचारी थे। सन १९२१ में उनकी मृत्यु हुई। पश्चात कांतुरेलके धनी मानी पं० स्व० श्री० रामावतार हनुमानजी उस स्थानके महन्त नियुक्त हुए। भारतके कबीर पंथियोंके प्रधान महन्तसे 'पंजा' अर्थात्, आज्ञा-पत्र पाकर ही वे उस पदपर आरूढ़ हुए थे। आप एक सत्शील और दानी पुरुष थे। भारतके प्रधान कबीर महन्तको भी आपने अपनी उदारतासे आर्थिक सकट से बचाया था। दो सालसे पं० ज्ञानदासजी यहांके महंत हैं. आश्रमकी सालाना आमदनी ४०० रुपयोंके समीप है. आश्रमीय सपत्तिका मूल्य ५,००० रुपया है.

०
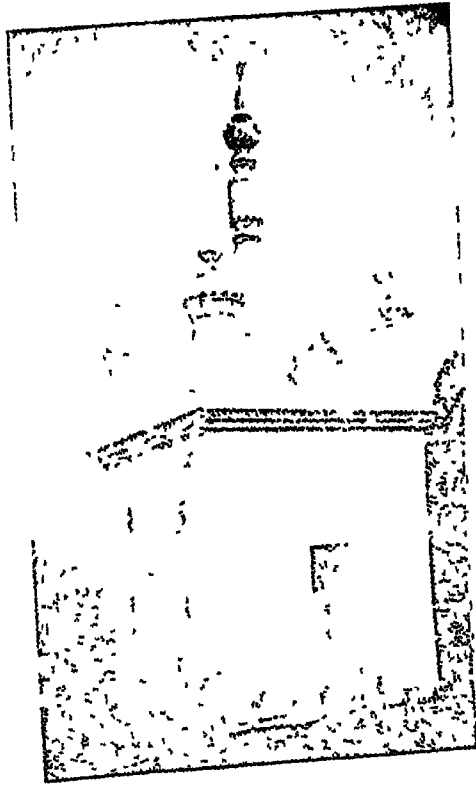
Shiwala of Mountain Ory Photo by the kindness of Mr Rampargass Ramcharun alias Boy of Port Louis

## कबीर धर्म महासभा

उपरोक्त मठ के प्रबंध के लिये पिछले साल यह महासभा अधिकृत रीति से स्थापित हुई है। श्री. श्री. जीयन सोना, रघुनाथ हुकुम सिंह, स्व० पं० रामावतार महाराज तथा महंत ज्ञान दास आदियों के उद्योग से इसका जन्म हुआ है। प्रधान ज्ञान दास और मंत्री पं० शिवप्रसाद है। १००–१२५ करीब उसके सदस्य हैं। श्री. जीयन सोना ने इस सभा को अपनी ३॥ साढेतीन बीघा भूमि प्रदान की है।

---

## हंस कबीर मठ देवल

पायोत-काल्लवोर्न में भी एक कबीर मठ है, जिसकी व्यवस्था उपरोक्त संस्था द्वारा होती है। इसकी रजिष्टरी सन १९२१ में हुई है। महन्त गरीबदास है।

'मुसे अजार' (फ्लाक जिला) में ऐसा ही एक स्थान है जिसे, स्व० महीदास ने स्थापन किया था। वह ५० पचास वर्ष का पुराना है। वहां की बसती घट जाने से अब वह जीर्णावस्थामें है। कबीर पंथके उत्सव तथा विधि आदि के सम्बन्धमें हमने ऊपर लिखा ही है। एक महन्तके हिसाब से मोरिशसमें इस समय कबीर पंथियोंकी संख्या १२०० के करीब है।

---

## बिओवा।

### रेनियों वाकुआ।

करीब चालीस वर्ष पूर्व वहाकी कोठीसे प्राप्त भूमि के एक छोटेसे टुकडे पर वहा के निवासी स्व० श्री. नारायण टिलरे ने लोहे के पत्रों (तोल) का एक छोटासा देव स्थान बनाया। मराठोंका यह पहिला देवल है। उपरात स्व० लक्ष्मण देवकर ने सार्वजनिक चन्दा करके देवलको बढ़ाया। श्री. राणु हयामा (दाजी) १०--१२ साल मंदिरके संचालक रहे हैं। एक सोसायटी के द्वारा मंदिरकी व्यवस्था करने के लिये उन्होंने यत्न किया; परन्तु उपरोक्त देऊळकारके वारिसों ने मंदिरका स्वामित्व छोड़ना स्वीकार नहीं किया। तबसे वहा पक्षापक्षी होने लगी और लोगों ने मंदिर से मुँह मोडना शुरू किया। श्री. राणुके पश्चात् स्व० अर्जुन सुराजी मंदिर की देखभाल करते थे। ७-८ वर्ष पूर्व फिर एक मण्डली द्वारा मंदिर चलानेका आन्दोलन हुआ। ४००--५०० रुपयों का चन्दा भी हुआ। एक नया मण्डप बनाया गया और उसमे दिवस और रात्रिकी पाठशाला भी चलने लगी। श्री. हयामा और रामा बन्धु आदि उसमे शामिल थे। मंदिरके स्वामित्व-सम्बन्ध में पुनः वही बात हुई। और लोग मंदिर को छोडने लगे. पाठशाला बन्द हो गई और उत्साही लोगों के परिश्रम व्यर्थ हुए. आजकल १०-१२ व्यक्तियों द्वारा देवलमे कभी कुछ होता रहता है. देवल एक टेकड़ी पर स्थित है. एक हजार की लागतका होगा. व॰॰से मराठो

की संख्या घट गई है और मंदिरके लिये सुस्थिति प्राप्त होना जरा कठिन ही मालूम होता है। सारे मोरिशस भरमें उनकी संख्या दो तीन हजारसे अधिक नहीं है और वह भी कहीं चार घर, कहीं दस घर, कहीं पांच घर, कहीं एक ही घर; इस प्रकार बिखरी हुई होनेसे दीर्घकाल तक उनके मंदिरको चलती रहना दुशवार ही है.

## महेश्वरनाथ।

### लाकावेर्न पाक्वा।

लगभग ५० वर्ष पूर्व स्व० कालीचरन नामक जंगली जातिके एक व्यक्ति एक छोटासा देवल बनाकर अपने गुरु स्व० नारायणदास भागीरथीको दक्षिणाके रूपमें अर्पण किया। बीस सालके बाद स्व० पं० पं० रामप्रसाद ओझा और नारायणदासके उद्योगसे सन १९०८ में उसी भूमिपर और एक बड़ा शिवाला बना। स्व० स्व० फकीरासिंह तथा हनुमानजी भी सहयोग देते थे। नारायणदासजीका एक छोटा तलाव (बासे) भी वहा बना हुआ है। मंडपके लिये आयरलण्ड फ्रेजर कंपनीसे लोहेके पत्ते मिले थे। और कुछ सामग्री मुरकी निवासी स्व० बालकरामकी ओरसे भी प्राप्त हुई थी। मंदिरके ऊपर का शिखर स्व० हाजी मियांने कुशलता पूर्वक बना दिया था। उस समय हिन्दू मुसलमानके संबंध कैसे प्रेमके थे उसका यह एक प्रतीक है। उत्तरोक्त समाचार, पं० महावीरजीसे हमे प्राप्त हुआ है, जिसके लिये हम उनके आभारी हैं। फिर तेरह साल बाद स्व० फकीरासिंह गजाधरके पुत्र स्व० जदुनन्दनसिंहके धन से हनुमान गढी, लक्ष्मी नारायण आदि स्थान बने हैं। शिव-

शनिके संयोगपर परीतलावका जल लानेवाले कांवरथी गया यहांके मंडपमें विश्राम करते हैं। इस समय यहांकी व्यवस्था तथा व्यय उनके भाई श्री० अमरदयाल गजाधर करते हैं। नित्यके पूजा पाठके लिये एक देशी पुजारी है। मुख्य हिन्दू त्योहार मनाये जाते हैं।

## सुब्रम्हराय।

### रेवियां—वाकवा।

स्व० श्री. मारदे बटलरके उद्योगसे सार्वत्रिक चन्दे द्वारा करीब ७५ वर्ष पूर्व उसकी सृष्टि हुई है। साथ ही मारी आम्मेनका भी एक छोटा मंदिर है। कावडी और जिफे मारसे (अग्निचजन) मुख्य त्योहार है। इस समय श्री. अंगासुतु प्रधान की हैसियतसे मंदिरकी देख भाल करते है। तामिलोंकी आबादी अब वहांसे उठ गई है जिससे मंदिरकी व्यवस्थामें शैथिल्य आ गया है। मंदिरमे पैसे दो पैसेकी चढ़ाईपर तथा इधर उधरसे माग सांगकर पुजारी अपना निर्वाह करता है। बिजली बत्ती, पानी आदिका अच्छा प्रबंध है।

## काली आम्मेन।

### कां कावोल—क्युरपीप।

श्रीमान वीरापे पाराटियन ऊर्फ कालीका निजका बनाया यह छोटासा देवल है। भूमि भी उन्हींकी है. मंदिर बना-

बनाकर उसे पंचोंके हाथ सौंप दिया. लोगोंने उसे कुछ दिन चलाया; पर पारस्परिक झगडोंसे देवलके कार्यमें बाधा आने लगी, तब कालीजी स्वयं ही पुनः मंदिरकी देख भाल करने लगे।

विगत छः वर्षसे यह देवल बना है। तामिल उत्सव कभी२ हुआ करते हैं। देवलमें मुख्य मूर्ति कालीकी है एवं और भी कई मूर्तियां हैं।

श्रीमान कालीजी एक धनीमानी सज्जन है. समाज सुधारके आप प्रेमी है। आप एक शिल्प शास्त्री है। मोरिशसमें जो पाच पच्चीस दानी भारतीय हैं, उनमेंसे कालीजी भी एक है। क्युरपीपके इस भागमें कोई वैसा स्थान नही था; पर जनताकी इच्छाको मान देकर कालीजीने वहां एक मंदिर निर्माण किया। पर जनताने ही अब उससे मुंह मोड़ लिया है। कालीजीकी उदारताका यही फल निकला हैं। बहुतसे स्थानों पर ऐसी ही रुदनकथा सुननेमें आती है। वाकवामें आपकी एक तामिल पाठशाला भी है. उसका प्रबंध यहांकी तामिल संस्था 'तामिल शांदा कौनानन्द सभाय' द्वारा होता है।

---

## श्रीकृष्ण देवल

### कॉकाबाल किरपीप।

पांच साल पूर्व यह मंदिर बना है। पुलिस कर्मचारी श्री रामधारी सिंह के उद्योग से यह निर्माण हुआ है। उनका २५०

रु० और वहां के प्रसिद्ध दानी रईस श्री. कालीपापाचिएनका २५० रु० ये बड़ी रकमें हैं। श्री. बृजमोहनजीकी दान दी हुई भूमि पर यह स्थित है। सुनते हैं कि, दो तीन श्रद्धालु मनुष्यों ने अपनी गाये बेचकर मंदिरकी सहायता की है। मंदिर के लिये एक भागवतकी आय भी मिली है। देवल बन गया था कि, रामू रामधारी सिंह की बदली हो गई। कुछ दिन बाद वकील श्री. धनपत लाला ने बचेसचे काम की पूर्ति की और मंदिर में शिवलिंगकी स्थापना की। इस शिवलिंगकी विशेषता यह है कि, इसे श्री. लाला ने अपने हाथसे बनाया है। मंदिरके भीतर दीवारों पर यहांके चित्रकारोंके बनाये देवी देवताओंके चित्र टंगे हुए हैं। पण्डित महीपत मंदिर के पुजारी हैं। मंदिरके प्रबंधके लिये आपस ही में एक संस्था वहां के लोगों ने बनाई है, जिसका नाम श्रीकृष्ण क्षेत्र मंदिर है। प्रधान लाला जी और मंत्री पं० महीपत हैं। मंदिरकी रचना ऐसी है कि, सब लोग अन्दर बैठ कर पूजा पाठ कर सकते हैं। बरसात, धूपका भय नहीं है। कलकतियाओं का इस ढंगका यह पहिला ही शिवाला है। मंदिरपर करीब २,००० रुपया व्यय हुआ है।

---

# ब्रम्हस्थान

## रोजबेल।

यह देवस्थान करीब ४५ वर्ष पूर्व का बना है। वह कैसे बना यह एक जानने योग्य घटना है। उस समय मुसलमानी त्यौ-

हार ताजियाका बडा प्रचार था और मुख्यतया हिन्दू लोग ही उसमें भाग लेते थे। चन्दा करके लोग पैसा इकट्ठा करते थे और दो तीन दिन खेल तमाशों मे व्यतीत करते थे। इसमे कोई बाघ बनकर कूदना है, कोई परी (पाई) बन कर हुमन हुमन चिल्लाते पुकारते नाचते दौडते हैं। पहलवानों की कुश्तियां होती है। कोई मलीदा चढाता है तो कोई फकीरी लेता है।

अकसर गन्ने की कटनी समाप्त होने पर यह ताजिया बिठाया जाता है। थके हुए मजदूरों को खुश करनेका एक अवसर समझ कर कोठी वाले साहब भी उसमें सहायता देते है। वैसे ही एक ताजिया के चन्दे मे से कुछ रुपया बच गया था, उसी पैसे से स्व० चितामणि आदि सरदारों ने कोठीकी आज्ञा ले कर एक सात आठ फीट ऊचा चबुतरा बनाया और उसे ब्रम्हस्थान कहने लगे। इस सम्बन्धमे एक दंत कथा सुनाई देती है. हरगुण नामक एक ब्राह्मण उस कोठी मे काम करता था, उसके मर जाने पर संयोग ऐसा हुआ कि, मजदूरोंकी झोंपडियों को आग लगने लगीं। कुछ दिन तक बीचर मे ये दुर्घटनायें हुआ ही करती थीं। मजदूर लोग संकटमे पडे हुए थे। तब एक दिन एक मजदूर ने अपने स्वप्न की बात सरदारों से कह सुनाई कि, हरगुण महाराज का क्रिया-कर्म ठीक प्रकार से नहीं हुआ; इस लिये उनकी आत्मा इधर उधर भटक रही है। जिस कारण से मजदूरोंके घर जल रहे है। तब उपरोक्त सरदारों ने हरगुण महाराज की आत्मा को शांति प्रदान करने के हेतु से वह चबुतरा बनवाया और उसको ब्रह्मस्थान यह नाम दिया

परन्तु इस छोटे से चौतरे से लोगों की धर्म-तृष्णा तृप्त नहीं हुई. तब कोठीके मालिक ने सरदारों की अनुमति से अर्ध गोलाकार दो कमरे इस विचारसे बनवाये कि एकमें कलकतिया पूजा करे और दूसरा मद्राजी प्रजाके लिये हो। मंदिर तैयार हो जाने पर मद्राजी लोगों ने देखा कि, आगपर चलने आदि के लिये जगह बस नहीं है। तब उन्होंने कुछ साल बाद खास अपने लिये वहां समीप ही एक दूसरा बडा मंदिर निर्माण किया। उस खाली कमरे मे अब पुजारी रहता है। एक कमरे में अष्ट सिद्धि है, कोई उसको काली भी कहते हैं। काली स्थान के विस्तृत आंगन में कभी २ कथा भागवत भी होता है।

इस समय ब्रह्मस्थान तथा कालीस्थानकी देख भाल श्री. मनोगी सिंह उर्फ महावीर रामनाथ करते हैं। ऐसे बीसों स्थान मोरिशस मे पाये जाते हैं; परन्तु उपर्युक्त ब्रह्मस्थान जैसा उनका कोई रोचक इतिहास न होनेसे उनके वर्णन की आवश्यका हमें प्रतीत नहीं होती है।

---

## मरी आम्मेन।

### रोसबेल।

तामिल प्रजाका यह मंदिर स्व० रंगास्वामी मेस्त्रीके उद्योगका फल है। सार्वत्रिक चन्देसे इसकी सृष्टि हुई है। रोजबेल कोठीकी आधा बीघा जमीनपर यह स्थित है। यह करीब ३०

Mr G Chuttur, President of the Arya Prathınidhı Sabha.

वर्षका पुराना है। ऊंचाई बीस फीट है।

समीपके ब्रह्मस्थानकी जगह बस न होनेसे तामिलोंने यह अपना मंदिर बनाया था। मिडलण्डके श्री कालीमुतु अप्पा-स्वामीजीने पक्का मंडप आदि बनाकर मंदिरको निस्तीर्ण कर दिया है। उनका दो हजार से अधिक रुपया उसमें व्यय हुआ है। श्री० सगीली मुतुसामी २५ वर्षसे पुजारी हैं और अब मालिकसे ही हो गए हैं। ये पुजारी तामिल धार्मिक विधियों के जानकार मनुष्य प्रतीत होते हैं। श्रद्धालु लोगोंसे जो कुछ मिलता है, उसीपर उनका निर्वाह निर्भर है।

कावडी आदि उत्सव होते हैं। श्री अप्पासामी समय२ पर कुछ सहायता देते हैं। मरी आम्मेनकी मुख्य मूर्तिके अ-तिरिक्त और भी मूर्तियां है। बाहर भैरव जी है। ८–१० हजार रुपया उसमें जरूर ही लगा ज्ञात होता है।

---

# शिवालय–रोजबेल

इस शिवालयका भी कुछ पूर्व वृतान्त जानने योग्य है। पवित्र गंगाजीका विशाल पवित्र एवं भव्य रूप सब कोई देखते हैं और उसमे स्नान करनेसे कायेन, वाचेन, मनसा किये हुए पापोंका क्षय होता है, इस श्रद्धासे संतोष मानते हैं; पर हरि-द्वारमें बद्रीनारायणके गंगोत्रीको अर्थात गंगाजीके उद्गम–स्थान को देखनेवाले लोग प्रायः विरला ही। प्रयागराजमें गंगा यमुना

का संगम होते ही गंगाजी विराट काया धारण करती है और वहींसे उसका महात्मय बढ़ता जाता है।

रोजबेल शिवालयकी कथा भी कुछ ऐसी ही है। इसके जन्मदाता स्वर्गस्थ श्री० गौरदास थे। उनके हाते हुए उनकी श्री० दुखी गंगाजीकी पूर्णाहुति द्वारा परि समाप्ति हुई। तब से इस शिवालयने एक प्रचण्ड रूप धारण किया और हिन्दुओंका वह एक प्रसिद्ध मंदिर हो गया है।

गौरदासजी एक निर्धन, पर श्रद्धालु बंगाली अतीथ थे। वे एक विरक्त, शांत, सहनशील और परिश्रमी मनुष्य थे। उनकी दाढ़ी और उनकी जटा उनके साधुपनका द्योतक थी। निजकी थोडिसी भूमिपर एक छोटासा शिवालय बनानेकी इच्छा अपने हित मित्रोंके पास उन्होंने प्रकट की। पहले तो सबोंने उसकी हंसी उडाई पर उनकी दृढेच्छा उनके भाई लक्ष्मणदास जीने मंदिर बनानेकी सामग्री, अपनी बैल गाड़ीसे ढो ले आना स्वीकार किया। जीवनि सरदारने उनका उत्साह बढ़ाया। स्व० श्री० गणपतदासजी यथा शक्ति मजदूरोंको वेतन आदि देनेमें उनको कुछ सहायता करते थे। और लोगों भी उनके साथ अपनी सहानुभूति दर्शाई।

अपनी कोठी परकी नौकरी संभाल कर बाल बच्चोंके पालन पोषण की चिन्तामें फँसे हुए ये गौरदासजी टापू भरमें घूम घूम कर निन्दा शिकायत सुनते हुए मंदिरके लिये याचना करते थे और शिवजी का आलय धीरे२, पर विश्वासके साथ खड़ा करते जाते

थे। स्वर्गवासी खेसारी महाराज ने (रामचरित्र भवानीदीन) अपनी भट्ठी का चूना देकर गौरदासजीका उतना बोझा हलका कर दिया था। सन १६१० के आगे पीछे शिवालयकी नींव डाली गई थी। उस समयके धनपात्र लोगों की उतनी कृपा न होने से मंदिरके तैयार होनेमें करीब पांच साल लगे हैं।

एक विशाल ऊंचे चबूतरे पर यह बना है। शिखरके त्रिशूल तक करीब ६० फीट मंदिर ऊंचा है। सीमेण्ट, रेती, चूना, पत्थर और लोहेसे सब रचना हुई है। अन्दर शिव लिंग विराजमान है और सामने मैदानमें नंदी स्थित है। गौरदास जी स्वयं भारत जाकर शिवलिंग ले आए थे। श्रीमती बोधिनी देवीजी ने जो कि, 'बुधनी' के नामसे रोजबेलमें प्रसिद्ध है। गौरदासजीकी इस यात्रा का खर्च दिया था और शिवलिंग दुखी कल्लानका खरीदा हुआ था. यह एक श्रद्धावती, भावुका और भक्तिशीला देवी है और कुछ न कुछ दान पुन करती रहती है। यहा लौट आने पर गौरदासका देहावसान हो गया और शिवलिंग तीन चार साल तक स्वर्गवासी गयापतदासजीके घरपर वैसा ही पड़ा रहा।

पश्चात् वहाके स्व० पं० रघुनन्दन तिवारी तथा स्व० श्री. गयापतदास आदि सज्जनोंके उद्योग से सन् १६११ में बड़ी धूमधामके साथ शिवलिंगकी प्राणप्रतिष्ठा हुई। पं० दौलतराम चतुर्वेदी आचार्य थे, जिनको २५० रुपया दक्षिणा मिली थी और यह उत्सव चार दिन तक हुआ था। तबसे परितज्ञावका जल शिवरात्रिके दिन यहां भी शिवजीपर चढ़ने लगा। पुजारीकी भी

नियुक्ति हुई और धीरे धीरे पूजापाठका काम चलने लगा. स्व० पं० मोहनलाल लगभग १६ साल शिवालयके पुजारी रहे थे.

मंदिर बनकर उसमें शिवजीकी स्थापना होनेको ग्यारह साल लगे हैं. उस समय लोगों की गरीबी, उनकी धर्मश्रद्धा, उनका उत्साह और परिश्रम पर यह मंदिर अच्छा प्रकाश डालता है.

श्रीशंकरजीके लिये स्थान बन गया था; परन्तु और देवी देवताओं के लिये वहां कुछ प्रबंध नहीं था. भोले महादेव बाबाका निवास कैलास पर्वत के ऊपर और श्मशान जंगलमें. वह कहीं भी रह सकते हैं. पर राधाकृष्ण अथवा लक्ष्मीनारायण जैसे वैकुंठवासी भगवानके लिये सुन्दर स्थानकी आवश्यक्ता है और उसकी सृष्टि करने वाले किसी कुबेर पुरुषकी खोज़ मे रघुनी महाराज लगे हुए थे. समीप ही न्यूग्रोव स्थानके क्षितिजपर श्री. दुखी गंगा रूपी तारेका उदय हो रहा था और उसका कोमल और मंद प्रकाश रोजबेल तक पहुंचकर महादेवके चरणोंको स्पर्श कर रहा था इस प्रकाशका तेज धीरे धीरे इतना बढ़ा कि, रघुनी पंडित और गणपतदासजी बिना टोलते टालते सीधे न्युग्रोव पहुँचे और उस तारेका उन्होने दर्शन किया.

उन दिनों सारे ग्रांपोर जिले में रघुनी महाराज का बड़ा दबदबा था. वह एक प्रभावशाली व्यक्ति थे. उनके शब्दका लोग मान करते थे. हिन्दू समाजमे उनका बडा वजन था

दुखी कप्तान ब्राम्हणों के बडे भक्त, उनकी आज्ञा वे शि-

रसा वंश मानते हैं. उनके घर पर रघुनी महाराजका आगमन उनके लिये एक ईश्वरकी कृपा ही थी हाथ जोडे और सिर झुकाये वे रघुनी महाराजके सामने खडे हो कर उनकी आज्ञाका पालन करनेको सदैव उत्सुक रहते थे.

गणपतदास जी उस समयके यानी लगभग बीस वर्ष पूर्व, इनेगिने साक्षर लोगों में से एक थे और धर्मकार्यों मे बड़ी रुचि रखते थे। वह बडा सुन्दर अक्षर लिखते थे और उनका रामायण आदि ग्रन्थोंका अभ्यास भी अच्छा था. वे भी दुखीजीको सदैव उत्साह दिया करते थे.

इन दोनोंकी प्रेरणा से दुखीजी के धनके प्रवाह की एक धारा शिवालयकी ओर बहने लगी और जंगल में मंगल की कहावत के अनुसार कार्य होने लगा. आप ने मंदिरकी भूमिको चारों तरफ से पत्थरकी चार फूट ऊंची दीवार से घेर कर देवलको एक सुरक्षित और पवित्र स्थान बना दिया। कुछ दिन बाद पार्वती तथा राधाकृष्णके मंदिर बनवाये एवं हनुमानगढ़ी भी बनाई। सन् १६१.७ में पं० दौलतरामजी के हाथ से राधाकृष्णकी युगल मूर्ति बडे उत्सवके साथ स्थापित हुई। कुछ समय बाद मंदिरके पीछे एक पक्का मंडप मंदिरकी भूमि पर ही बनवाया और वहां एक हिंदी पाठशाला खोली। पुजारी तथा पाकशाला आदिके लिये कमरे बनाये। उस समय मंदिर में पूजा-पाठकी धूम रहती थी और टापू भरमें उसका नाम मशहूर हो गया था। भूतपूर्व गवरनर

सर हेसकेथबेल भी एक समय मंदिर पर पधारे थे । देवी देवताओं का उन्होंने दर्शन किया था । उनका उस अवसर पर बड़ा सत्कार किया था; परन्तु फल सिद्धि कुछ हुई नहीं । हेसकेथबेल साहब को ईश-दर्शन से जो लाभ हुआ होगा उतना ही !

कोई सज्जन अपनी खुशीसे मंदिरके लिये जो कुछ प्रदान करते थे, उसका दुखीजी धन्यवाद पूर्वक स्वीकार करते थे और हमेशा यही कहते आये हैं कि, यहसब पंचकी कृपाका फल है । अहंकारका अवलेश भी उनमे नहीं था । श्री. सुमारू कप्तान ने एक पानीका हौज (वासे) बनवाया है तथा और भी कुछ सहायता की है । श्री. मानिकचन्द ने नन्दी बिठाया है एवं स्व० श्री. सज्जन गोसांईजी ने एक घण्टा प्रदान किया है । श्री. शिवशांबा रामा ने शिखरेपर कलश बिठाया है ।

वह समय महंगी का था, उपरोक्त कामोंमें दुखीजीका रुपया खर्च हो गया था और उनका नाम अब मोरिशसके लोगों के कानों में गुनगुनाने लगा था । हम भी अपने 'मोरिशसके इतिहास' के लिये उनके पास पहुँच गये थे ।

और एक अपूर्व घटना का उल्लेख भी यहां करना उचित होगा । दुखीजीके घरपर विवाह, श्राद्ध आदि क्रियाकर्म अब तक ब्राह्मण पुरोहित द्वारा नहीं होते थे; परन्तु उस तेजस्वी निर्भीक ब्राह्मण रघुनी ने इस निषिद्ध मानी हुई बातको तोड दिया और दुखी कुटुम्ब के समस्त धर्मकार्य विरोध या निन्दाकी पर्वाह

न करके ब्राम्हण द्वारा कराने में वह फलीभूत हुए। दुखीगंगा जैसे धर्मप्रिय, श्रद्धावान, उदार, धनाढ्य और साधुवत हिन्दू सज्जनके धर्म कार्योंमे ब्राह्मण--पुरोहितका अभाव, हिन्दू धर्मके लिये एक कलंक ही था, रघुनी महाराज ने उसे मिटा दिया। यह एक उनकी सामाजिक क्रांति ही थी और जिसके लिये वह धन्यवादके पात्र है। आज करीब १६--१७ साल गुजर जाने पर यहाके ब्रह्म वृन्द ने भी अपनी सम्मति की मुहर, ब्राह्मणमहासभा के एक प्रस्तावानुसार; उस क्रांति पर लगा दी है, यह हर्ष की बात है। हिन्दुओंकी प्रगमनशीलताका वह एक प्रमाण है। आर्थिक सुस्थितिका जातपात पर कैसा इष्ट परिणाम होता है उसका भी यह एक ज्वलंत उदाहरण है।

सन १९२० के सालमें चीनीको "न भूतो न भविष्यति" दाम मिलनेसे मोरिशसमें चांदीकी वर्षा हुई थी। टापू भरके शिवालयोंमें भी शिवरात्रिके दिन रुपयोंकी ढेरी लग जाती थी। लोग. चांदीके उन्मादसे पागलसे हो गए थे। प्रवासियोंकी ८५ वर्ष की बूढ़ी आयुमे उन्होंने पहले पहल यह खजाना देखा था। पर वे भूल गये कि, लक्ष्मी चंचल है। दो चार सालके पश्चात उस चांदीकी वर्षाका सारा पानी बह गया और सुखारकी नौबत आ गई। हायकी पुकार निकलने लगी। बचे हुए लोगोंमेंसे श्री० दुखीजी एक थे। उनसे सहायताकी अपेक्षा होने लगी और वह भी अपनी शक्तिके अनुसार सहायता करने लगे। ब्राह्मणोंकी सहायताको तो कृष्णार्पण ही समझना चाहिये। ज्यों२ समय व्यतीत हुआ त्यों त्यों टापूकी आर्थिक दशाने और

भी रुद्र रूप धारण किया। स्वयं दुखीजीको अपना हाथ थोड़ा सिकोडना पडा, जिसका असर शिवालयोंके संचालकों पर भी हुआ।

इस संसारमें लेन देनका व्यवसाय अनादिकालसे चला आता है; पर कतिपय व्यक्तियोंके साथके व्यवहारमें दुखीजीको कुछ और ही अनुभव होने लगा। दुखीजीको हानि ही उठानी पड़ी, तिसपर भी उसे गंगार्पण समझकर उन्होंने न किसीको अदालतमें खींचा न किसीको कुछ बुरा भला ही कहा। उद्देश्य यही कि, मंदिरके काम काजमें कुछ बाधा न आ जाय। जिनका लाखों रुपयोंका काम काज है, उनके लिये अदालत देवलसा हो जाता है; पर दुखीजीको कचित ही किसीने अदालतमें देखा होगा उनका मृदुहृदय मामलेबाजीसे गरीबोंको सताना पसन्द नहीं करता है। कर्ज अदा करना तो दूर रहा; किन्तु उनकी भूख और भी बढ गई। जाति चमरड़ो तो यही समझते थे कि, दुखी के पैसे पर जानो कि उनका हक ही है! अब उनको क्या करना? "रउआं हम लाचार बानी। अब हमारमे ओतना शक्ति नईखे। माफ करे के देवताजी।" दुखीजीकी इस लाचारी से देवता लोगोंका कोप और बढ गया तथा उनकी शिकायत होने लगी। उनसे पैसा लेना और अधिक पैसा न मिलनेपर उनको गालिया भी सुनाना। दबनेवालोंको दुनिया ऐसी ही दबाती है। दुखी कप्तान, हमे आशा है कि, इन बातोंसे जरूर ही कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे। दुखीजी रोसबेल शिवालयके संचालकों मेंसे एक थे। वहां भी उनको उपद्रव पहुंचने लगा। आज

Mr I Sırnam, Secretary A P Sabha

तक उनके किये कामोंपर पानी फिर जानेकी नौबत आ गई। वे अपमानित होने लगे। हट जानेके सिवाय उनके लिये अब दूसरा मार्ग नही था। पर हटनेमें मंदिरकी हानि थी; इस बातका ही उनको बड़ा दुःख था। इसी हालतमें कुछ समय व्यतीत हो गया। मंदिरका खर्च दुखीजी ही चलाते थे; पर उनका तिरस्कार करना और फिर उन्हींसे पैसेकी याचना करना इस को मोरिशसमे 'तूपे' कहते हैं। निखट्टूपनका यह एक नमूना है।

रघुनी महाराज, मंदिरके प्रधान थे। वह बड़ी मुशकिल में आ पड़े। उनकी आर्थिक स्थिति एक दम बिगड़ गई थी। कहींसे कुछ मिलनेकी आशा न थी। परन्तु उनके स्वभावमें कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ था और समयके अनुकूल वह चलना नहीं चाहते थे। परन्तु लोगोंके विचार बदल गए थे। फल स्वरूप, जो नतीजा निकलना चाहिये था, वही निकला। दलबन्दी शुरू हो गई और वाद विवाद चलने लगा। अनेक प्रकारके प्रश्न खड़े हुए। मंदिरका मालिक कौन यह भी एक प्रश्न था। महंत बनना कौन नहीं चाहता है। महन्त बन जानेकी परम्परा तो हिन्दू धर्ममे प्राचीन समयसे चली आती है! परन्तु मोरिशसमें महन्त गिरीकी दाल नहीं गल सकी।

मंदिरके देख भालमें तथा इस खींचातानीके कारण, देवी देवताओंकी पूजामे भी बाधा आने लगी। मान अपमान के भूखे महाशय भी उनमे थे और उनका जाति घमण्ड भी अभी

नहीं छूटा था, जिससे शिवालयकी व्यवस्था और भी बिगडने लगी। पास कवडी नहीं, आय कुछ भी नहीं और याचक बन कर धर्म-सेवा करनेका भाव भी नहीं, तब मन्दिर चले कैसे ? यह दशा देखकर वहाकी जनता भी बड़ी दुःखी हुई, पर क्या कर सकती थी ? भूदेवोंके सामने कौन चूं कर सकता है ?

श्रीमान दुखी गंगाजीने हजारों रुपयोंके मंदिर बनवा दिये थे और बाबाजीके चरणोंपर चांदीकी धारा बहा दी करती थी; पर उनको पूछे कौन ? वह है हरिश्चन्द्रके अवतार ! विश्वामित्रकी लाल लाल आंख देखते ही मुंडी निमा देते हैं ! भारी सभामें उनका अपमान होता है; परन्तु सिर झुकाकर धैर्यके साथ पर नम्रता पूर्वक वे चुप हो जाते हैं। अन्याय का विरोध वे अपनी साधुतासे करते है। शायद ही किसीने उनके मुहसे कोई अपशब्द सुना हो। यह है उनका स्वभाव।

आप लक्षाधिपति हैं; पर धनका दुरुपयोग कभी करते नहीं। सभा, संस्थाएं, मंदिर, पाठशालाएं, दान धर्म आदिमें प्रति वर्ष सहस्रों रुपया आप खर्च करते हैं। यह है उनकी दान शूरता।

प्रति दिन नहा धो कर अपनी पूजा अर्चा और गीता पाठ में उनका प्रातः समय व्यतीत होता है। नित्य सायंकाल रामायण पढा जाता है। प्रति एकादशीको गीता-उपदेश होता है। उनके कुटुम्ब के समस्त आबाल वृद्ध लगभग ११० स्त्री-पुरुष हर रविवार शिवालयमें आकर पूजा प्राथना करते

इतना ही नहीं; किन्तु रोजवेल, न्युग्रोव एवं आसपासके गावों में भी प्रचार, प्रेरणा, प्रभाव, प्रार्थना, लोभ आदि अनेक साधनों से लोगोंमें धर्मका उत्साह उत्पन्न करने की आप चेष्टा करते हैं। उनके नौकर प्रति रविवार प्रभातकालमें घर घर जाकर लोगों को जगाते हैं; ताकि शुद्ध हो कर वे जलदी से शिवालय पर पहुँच जायं! उनका आचार-विचार, खान-पान, रहन-सहन वगैरह एक कर्मनिष्ठ ब्राह्मणके समान है। अपने धर्मके लिये इससे अधिक और कौन क्या कर सकता है। यह है उनकी धर्म परायणता।

यह सब होने पर भी उनको मानता है कौन? दो तीन साल ऐसे ही निकल गये। मंदिरकी दुर्दशा परमावधिको पहुँच गई, तब रोजवेल आदि के ग्रामवासियों ने श्री. दुखी गंगाजीका खुल्लमखुल्ला आवाहन किया और उनसे प्रार्थना की कि, मंदिर के संचालनका भार आप ही उठावें। जनता अब दुखीजीकी ओर हो गई थी। अपने धनके जोरसे, जो चाहे वह कर सकते थे; पर उस मार्गका आपने अवलम्बन नहीं किया।

शिवालय में बावाजी आदियोंका राज्य था और राजाके विरुद्ध बलवा करना एक भयंकर अपराध था; इस बात को भी वे अच्छी प्रकार जानते थे!! इस लिये वह विचार भी उन्होंने छोड दिया। तब क्या करना? मंदिरका सारा हाल उन्होंने मोरिशसकी हिन्दू जनता के सम्मुख रखा। प्रतिष्ठित लोगोंसे सलाह पूछा और उनसे विनय पूर्वक प्रार्थना की कि, आप ही इन बातोंका फैसला करें। दो तीन बार शिवालयपर सभाएँ हुई,

जिसमें टापूके अच्छे २ समझदार और प्रतिष्ठित मनुष्य उप-स्थित थे। अन्तमें यही निर्णय हुआ कि, श्री. दुखी ही मंदिरके संचालन के लिये सर्वथा योग्य पुरुष है और उन्हींको वह कार्य सौंप दिया जाय. मार्के की बात यह है कि, पेतम्हानी साहब के समान महोदय दुखी जी अपनी अनुपस्थिति में प्रधान चुने गये. वाबाजी और साधुजीमे यह युद्ध था और उपरोक्त रीति से वह समाप्त हुआ. इसीको समय परिवर्तन अथवा काल-महिमा कहते हैं.

सारांश, लोगोंका प्रेम और विश्वास, दुखीजीने प्रथम प्राप्त कर लिया और उसीके बलपर उन्हांने विजय पायी। दुखी जी जैसे धनाढ्य और धर्मात्मा पुरुषको एक शुभ और पवित्र कार्य करनेमे और वह भी अपने जेबके रुपयेसे, इतना कष्ट, क्लेश और इतना अपमान उठाना पड़ता है, तब एक साधारण मनुष्य की, बाबाजी–राज्य में क्या दशा रहती होगी, यह को-ई भी पाठक समझ सकता है।

कोई यह शंका कर सकता है कि, स्वार्थ साधनके लिये दुखीजी यह सब बरदास्त करते होंगे। समाधान यह है कि, जब से यानी चार पाच साल से आप मंदिर के संचालक बने हैं, तब से मंदिर के लिये प्रति मास अपने जेब से करीब सौ रु० आप खर्च करते हैं। यही उनका स्वार्थ है। पाप विमोचन और मोक्ष प्राप्ति के लिये मनुष्य, ईश्वरकी शरण लेता है, वह भी एक स्वार्थ ही है न ? ऐसे स्वार्थी मंदिरसमे कितने

है ? मंदिरके प्रधान पद को धारण करते ही मंदिरकी भूमि आ-दि के कतिपय मालिकों को दुखीजी ने अपनी उदारतासे सुखी किया और झगडेकी एक जडको ही काट डाला। देवलमें मेरा अधिक धन लगा है, मैंने अधिक परिश्रम किये हैं, मैंने अधिक चन्दा दिया है और मैं अधिक ऊंचा हूं आदि अनेक लडाई झगडे वाली बातोंको तय कर दिया और घोषणा की कि, शिवालय समस्त हिंदू प्रजा के लिये है। क्या यह भी उनका स्वार्थ है?

दुखीजी के ऊपर ढोलक के समान दोनों तरफसे मार पडती है। नवशिक्षित लोगोंका कथन है कि, दुखी कप्तान यह सब व्यय व्यर्थमें कर रहे हैं, मंदिर फंदिर से क्या लाभ है? ये सब बावाजी लोगोंके पेट भरनेके ढकोसले हैं; क्यों नहीं विद्या पढाते? ब्राह्मणोंको क्यों इतना डरते हैं? इसी से ये लोग सिर पर चढ़ते हैं इत्यादि। अभी तक उनकी ७ हिन्दी पाठशालाएँ चलती थीं और हर साल करीब ३,००० रुपया विद्या दान के लिये वह खर्च करते थे। अब ये महाशय कहते हैं कि, हिन्दी पढने से क्या लाभ? क्या सबको बावाजी बनाना है। पुराने ढाचे वाले थोड़ी आंख चढ़ाकर कहते हैं "हाँ ओकर हीयाँ पैसा बा, ऊ देपॉस करेला; इमें का भइल" अब उनको कोई पूछे कि, मोरिशसमें और भी धनाढ्य मनुष्य हैं न? भला वे क्यों नहीं कुछ करते? इसका वे क्या उत्तर देंगे?

कोई यह भी कह सकता है कि, वे मान के भूखे हैं; इस लिये यह सब कर रहे हैं। हम कहते हैं पवित्र कर्मों के

द्वारा मानकी इच्छा करनेमें कुछ भी खराबी नहीं है। स्वयं परमेश्वर भक्तिका भूखा है; इस लिये क्या उसकी भक्ति नहीं करना और उसको ताना मारना कि, तू तो भक्तिका भूखा है!! परन्तु हम लोग ऐसे कंजूस हैं कि, मुफ्तका मान देने में भी हम संकोच करते हैं। उनकी धनराशि देखकर हमारे मुँह में पानी आ जाता है; पर उनके कर्त्तव्य की प्रशंसा करनेमें मुँह सूख जाता है! न उनपर किसी ने फूल फेंके हैं न किसी ने उनको कोई मानपत्र ही दिया है। सारांश दुखीका मान करके उनको किसी ने सुखी नहीं किया है। वह दुखी के दुखी ही हैं!! मानके बदले अपमान तो उन्होंने अलबत्त पाया है और अभी तक वही हालत है। दुखी गंगाके स्थान पर दूसरा कोई होता तो ऐसी तैसी कह कर कबका, हिन्दू समाजसे मुँह मोड लेता। मगर उन्होंने ऐसा नहीं किया और मैदानमें डटे ही रहे। इस लिये यह कहना उचित होगा कि, दुखीजी अपमान के भूखे हैं न कि मान के!!

स्व० सजीवनलाल महाराज और स्व० गौरदास की भी उनके समयमें यही दशा थी। सजीवनलालजी बडे घमण्डी है, विलासी है, धूर्त है, धोबी है वगैरह बहुत कुछ उनके सम्बन्ध में भी लोग कहा ही करते थे।

शिवरात्रि के दिन परीतलावका जल समारोह से बाजेगाजे के साथ लानेकी परिपाटी के जनक आप ही थे; पर आरंभमें लोग उनका बडा ही उपहास करते थे और कहते थे कि, यह तो एक खेल तमाशा करते हैं और नामके वास्ते मरते हैं।

गौरदासजी भी इसी रास्तेसे गुजरे हैं। उनको भी चोर, लुच्चा कहनेवाले थे। अपनी निर्धनताके कारण अपमान तो उनके ललाटमें ही लिखा हुआ था। शिवाला बांधनेके लिये वह जहां२ याचना करने जाते थे वहांसे कुछ पैसाके साथ बहुत सी गाली निन्दा भी ले आते थे! हमने सुना है कि, एक महाशय तो झाड़ू उठाकर उनको प्रसादी देना चाहते थे!! इर्ष्या (जालूजी) एक ऐसा दुष्ट मनोविकार है कि, वह दूसरों के कामोंमें सदैव दोष देखा करता है।

मतलब यह कि, समकालीन लोग प्राय: ऐसी कुत्सित बातें कहा ही करते हैं। पर धीरोदात्त पुरुष अपने कार्य करते ही जाते हैं। खरा निर्णय भावी पीढी ही देती है। आज सजीवनलाल और गौरदासजीको बुरा भला कहनेवाले चल बसे हैं या चुप हो गये हैं; पर उनका कार्य कायम रह गया है और उनका नाम अब लोग आदरसे लेते हैं। कल दुखीजीका निःसंदेह ऐसा ही आदर होगा और उनके कार्यकी कीर्ति सदैव लोग गाएंगे। आरम्भ हो गया है।

अब सवाल पैदा होता है कि, अपने दोनों गालोंपर थप्पडे खाते हुए दुखीजी क्यों अपना धन बरबाद कर रहे हैं। मंदिर, संस्थाएं, पाठशालाएं, उत्सव, दान, दक्षिणा, कथा भागवत गीता, रामायण, पूजा, सत्कार, चंदा, सहायता, भिक्षा आदि धार्मिक, सामाजिक और शैक्षणिक कामोंमें पिछले २५ वर्षोंमें हमारे अन्दाजसे लाख डेढ लाख रुपया अधिक ख

जरूर ही हुआ होगा। मोरिशसका शायद ही कोई सार्वजनिक कार्य होगा जिसको दुखीजीका हाथ न लगा हो। व्यक्तियोंको उन से जो सहायता पहुंची है, वह केवल लेने देनेवाले ही जानते हैं। बिना धन्यवादका यह सब आप क्यों करते है ? इसी वास्ते कि, कर्म करना ही उनका ध्येय है।

"निंदन्तु नीति निपुणाः यदि वा स्तुवन्तु" अर्थात, कोई निन्दा करें या कोई स्तुति करें, उसकी परवाह न करके तथा गीताकी शिक्षाके अनुसार फल प्राप्ति ईश्वराधीन मानकर कर्म करते रहनेको ही दुखीजी अपना धर्म मानते है। आज कल हमारे पंडित, व्यास, विद्वान व्याख्याता, उपदेशक, लेखक, कवि, भजनिक, साधु आदि सब कोई (उनमे स्त्रिया और विद्यार्थी भी है) एक स्वरसे पुकार रहे है कि, "धर्म संकटमें पडा है उस की रक्षा करो" ऐसी अश्रद्धाके समयपर दाएं बाएं दोनों ओर से कटु शब्दोंके प्रहार सहन करते हुए यह महापुरुष अपनी श्रद्धा भक्ति, कर्मवीरता, निःस्वार्थता एवं उदारताके तेजसे ध्रुवके समान कई वर्षोंसे चमक रहा है, उसको हम धर्ममना की पदवी से अलंकृत करे तो हमारे विचारमें वह अतिशयोक्ति न होगी।

मोरिशसमे बहुतसे ऐसे मंदिर हैं कि, जिनका पूर्वेतिहास ठीक प्रकारसे नहीं ज्ञात होता है। कतिपय मंदिरोंके जन्मदा-ताओंके नाम तक आज लोग नही जानते हैं। जिन धर्मशील पूर्वजोंने कई प्रकारकी कठिनाईयोंका सामना करते हुए भिक्षा मागकर अथवा अपना समस्त धन लगाकर देवालयोंकी सृष्टि

Mr Vallabhbhai G Naik, Merchant

की और हमारे लिये मोक्षके साधन बना रखे, उनका प्राचीन वृत्तान्त सङ्कलित रीति से मालूम होता तो उनके पुण्य स्मरण से हममे भी वैसी धर्म सेवा करने की स्फूर्ति होती और पचासों शिवालयोंमेंसे ईश्वरके गुणानुवाद से यह मोरिशस गूंज उठता।

सञ्जीवनलाल जी, गौरदास जी तथा गोकुला जी प्रभृति वंदनीय पुरुषोंको हम भूल जायँ तो हमें सत्कार्य करने की प्रेरणा कहां से होगी और हमारा आदर्श क्या रहेगा?

इसी कारण रोजवेल शिवालय के विषय में इतना विवेचन करना हमने उचित समझा है। यदि पूछा जाय कि, दुखीगंगा जैसा मोरिशस में दूसरा और कौन मनुष्य है? तो यही कहना होगा कि, उनके जैसे वही अकेले एक है। ऐसे व्यक्ति के साथ हिंदू धर्म और समाजका, जो सम्बन्ध और व्यवहार है, उसको थोड़े विस्तार से निरूपण करना इस पुस्तकका कर्तव्य है। इस हमारी पुस्तक का नाम है। 'हिन्दू मोरिशस' उसका यही विषय है कि, मोरिशसकी धार्मिक और सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालना। रोजवेल शिवालय के वृत्तांत में इस विषय का बहुत मसाला मिलता है। इसी कारण यह लेख कुछ लम्बा हुआ है। पाठक क्षमा करेंगे।

गौरदासजी की गरीबी और दुखीजीकी मालदारी इन दोनों की भेंट होते ही रोजवेलका शिवालय, मोरिशसका एक प्रख्यात तीर्थस्थान कैसे बन गया, इस विषयका सम्यक् ज्ञान सर्वसा-

धारणा को तो होगा ही, पर भावी पीढियां भी उससे लाभ उठायेगी।

कल क्या होगा कौन जान सकता है? पर हमारे बाप दादाओं ने हम के लिये कुछ भी नहीं कर रखा, यह दोष उनपर न आवे; इस लिये उनके कार्योंको जनता के सन्मुख रखना आवश्यक है।

शिवालयके रक्षक एवं अध्यक्षके नातेसे देवलका सारा प्रबंध दुखाजीकी देखभालमें होने लगा, तबसे सबकुछ नियमित रीतिसे चलने लगा; आज नित्य त्रिबार पूजा होती है। प्रति रविवार महापूजा होती है और उस दिन जनताकी अच्छी भीड़ रहती है। दीपावली, कृष्ण जयंती, रामनवमी, हनुमान जयंती आदि धार्मिक त्यौहार धूमधामसे मनाये जाते है। कथा निरूपण; व्याख्यान, उपदेश, भजन इत्यादि से धर्म जागृति की जाती है। शिवरात्रिका उत्सव बड़े समारोह के साथ निष्पन्न होता है। हजारों की संख्यामे स्त्री पुरुष उस पर्वके दिन शिव जी पर जल चढ़ाने आते हैं और मंदिरके लिये कुछ आमदनी भी होती है। विशेष समयपर रामायण, भागवत आदि कथाएँ होती है। बिजली बत्ती, पानी आदिका प्रबंध अच्छा है। मंदिरके लिये कोई निश्चित आय नहीं है। सारा खर्च दुखी जी ही करते है। सामाजिक कार्योंके लिये शिवालाके आसपास काफी भूमि है और समय समय पर वहां सभाएँ लगती है। महाराज कुंवर सिंहका सत्कार वहीं हुआ था।

# द्रौपदी आम्मेन।

## मारदालवेरं।

यह तामिल मंदिर लगभग ६५ सालसे अधिक पुराना है। इसके विधाताओंका नाम स्मरण भी अब विद्यमान संचालकों को नहीं है। सवा बीघा विशाल भूमिपर यह बना है। मंडप के साथ मंदिर की लंबाई ६०, चौड़ाई २५ और ऊंचाई २० फीट है।

मंदिरमें मुख्य मूर्ति द्रौपदी आम्मेनकी है। प्रवेश मार्गके दाएं बाएं हाथ दो उपमंदिर है। एकमे गणेश और सुब्रह्मण्य की मूर्तियां है और दूसरेंमे काली देवीकी है।

सुब्रह्मण्यका यह उपमंदिर ओव्वाके स्व० श्री० काता सरदार बनवा रहे थे कि, दूर्भाग्यसे उनके पुत्रकी मृत्यु हुई। इस मृत्युके साथ उनकी श्रद्धा भी गई और उन्होंने मंदिरको वैसा ही अधूरा छोड दिया। कुछ समय बाद श्री० अप्पासामी कालीमुतु पिलेजीने अपना ५८० रुपया लगाकर उसकी पूर्ति की। श्री. स्व. संद्रागासे कुमुतसामीजीके मंदिरको विशाल बनाने में दो हजार रुपये लगे है।

पिछले १५ सालसे वहाके प्रतिष्ठित रईस श्री० मरदे कातां मिस्त्री मंदिरके प्रमुख संचालक है। उनके प्रधानपदमे ही उपमंदिर आदि बने हैं। श्री० मुतुकरसामी वीरापे प्रभृति लोगों के सहयोगसे मंदिरकी व्यवस्था होती है।

'तिके मारशे' (आगके ऊपर चलना) कावड़ी, सित्रा पर्वा (पर्व) यहाके मुख्य उत्सव है। शिवरात्रि और कालीके उत्सव भी होते हैं। अग्निचलन उत्सवको तामिल याने मद्रासी भाषा में "टिमिदी" कहते हैं। टी शब्दका अर्थ है अग्नि और मिदी का अर्थ है चलना। इस उत्सवसे पूर्व एक मास तक प्रति दिन मंदिरमे महाभारतकी कथाएं सुनाई जाती है। अर्थात्, इस उत्सवका संबंध महाभारतकी कथाके साथ है यह सिद्ध होता है। युद्धमें भयी हत्याके पापका प्रक्षालन करनेके हेतुसे पाण्डवोंने आगके ऊपर चलकर अपनी आत्मशुद्धि और प्रायश्चित कर लिया हो तो इस उत्सवका रहस्य समझमें आ सकता है। तामिल महाभारतमे उस प्रकारकी कोई घटना शायद होगी।

यह भयंकर अग्नि दृश्य देखनेके लिये हजारों मनुष्य उपस्थित होते हैं। १५ फीट लंबी, ४ फीट चौडी और २ फीट के करीब गहरी खाई खोदकर उसे लकड़ियोंमे भर देते है। सारी लकड़ी जलकर चार पाच घंटोंमे जब उसका अंगार बन कर खाई भर जाती है, तब उसे समथर बना देते है। सायंकाल पाच बजे पीत वस्त्र धारण किए हुए भक्तगण एकर करके उस अग्निकी राशि परसे नंगे पाव चलकर सारी लंबाई को पार कर देते है। इसमे क्रिओल लोग भी कभीर चलते है। औरतें भी चलती है।

आगपर चलनेके लिये प्रति भक्तको ढाई रुपया मंदिरको देना पडता है। उस दिन मंदिरकी ओरसे लगभग २०० रु०

व्यय होता है और वह सर्वसाधारण चन्दे द्वारा इकट्ठा किया जाता है।

तामिल भाईयोंका सबसे बडा राष्ट्रीय पर्व कावड़ीका है। उस दिन श्रद्धालुगण पुष्प पल्लवोंसे सुसज्जित कावडियोंमें रखे हुए दूधके लोटे, शीशे आदियोंका बाजे गाजेके साथ बडा जुलूस निकालते हैं और मंदिरमें पहुंचकर सुब्रह्मण्य देवका उस दूधसे अभिषेक करते हैं। यही मुख्य धार्मिक विधि है। सुब्रह्मण्यको हिन्दीमें षडानन अथवा कार्तिक स्वामी कहते हैं। श्री. शंकरके वे एक पुत्र है।

इसके उपरान्त उपस्थित जनोंको प्रसादके रूपमें भोजन दिया जाता है और उत्सवकी समाप्ति होती है। उत्सवके दस दिन पूर्वसे भक्तगण अपने२ घर कावडी रखकर पूजन अर्चन करते हैं। खान पान आदिमें संयम पालते हैं। प्रति कावड़ी को मंदिरके लिये १२ रुपया देना पड़ता है।

शिवरात्रिमें तामिल मंदिरोंमें, कलकतिया प्रजाके समान कांवरका जल नहीं चढ़ता है। केवल पूजन आदि होता है।

"सिवा पर्व" मे भी दूध चढ़ाया जाता है और पश्चात कुछ अन्न समर्पण भी होता है।

काजी उत्सवमे पानीकी गगरियोंका जुलूस निकलता है। पश्चात लोगोंको चावलकी कांजी प्रसादीके तौरपर बांटी जाती है। नित्यकी पूजाके लिये मासिक १०-१५ रुपया खर्च होता

पूजामें नारियल एक आवश्यक वस्तु है। पुजारी कोई वेतन नहीं पाता है। मंदिरमें, जो कुछ कभी पैसा टका चढ़ाया जाता है, उससे और पुरोहितवृत्तिसे उसकी जीविका बन जाती है। मंदिर और मंदिरके अहातेकी सफाई आदि रखना भी उस का काम है। पुजारी और पथिक आदियोंके लिये डाकके घर पास ही बने हुए हैं। नहानेका भी प्रबन्ध है। मंदिरके कोषमें कोई धन नहीं है। उत्सवादि विशेष कार्य, सार्वजनिक चन्देसे होते हैं। बिहारी लोग अच्छा सहयोग देते हैं, जिनमें दुखी गंगा कुटुम्बका नाम उल्लेखनीय है। मंदिरके सामने एक और विस्तृत मंडप बांधा है। दूसरे मंडपकी तैयारी हो रही है। बैठनेका सुभीता अच्छा है।

## शिवालय।

### लमार ताबा।

यहां तामिलोंका एक छोटासा देवल था, जो अब कलकतिया-ओंका शिवाला बन गया है. पं. वासुदेव शिवपूजन और स्व. सुबेसर हिन्नुके उद्योगसे मद्राजियोंसे वह खरीदा गया है। मंदिरपर उत्सव आदि होते हैं और पढाई भी होती है। पं० शिवपूजन ही कर्त्ताधर्त्ता है।

# विश्वनाथ मंदिर।

## प्लेनमायां-आंपार।

वहां के निवासी दो श्रद्धालु व्यक्तियों के मिलाप से इस मंदिर की सृष्टि हुई है. उनके नाम है श्री. महावीर वरन चौबे (असिस्टण्ट रजिस्ट्रार-को-ओपेरेटिव क्रेडिट सोसाइटीज) और श्रीमती लखपतिया देवी. चौबे जी एक बार सख्त बीमार थे, जीने की आशा नहीं थी, तब उन्होंने शिवजीको ही सर्वश्रेष्ठ वैद्य समझ कर उसकी शरण ली और रोगसे मुक्त होकर जो जाय तो शिवालय बनाने की प्रतिज्ञा की शिवबाबा प्रसन्न हुए, चौबे जी उठ बैठे और शिवालय बना कर अपनी मानता की पूर्त्ति करने की चिन्ता में पडे.

आप इस चिन्ता में थे कि, एक बूढी भक्तिन ने आ कर उनसे प्रार्थना की "बाबाजी शिवालाके खातिर थोडा माटी खरीदे के हमार दिल करेला" वह एक विधवा स्त्री है और उन्हींका नाम है श्रीमती लखपतिया। मानों कि उस श्रद्धाशीला वृद्धाके रूपमें विश्वनाथ ने ही चौबेजी की सहायता करके उनकी चिन्ता दूर की। बुढिया ने आधा बीघा भूमि ५०० रु० में खरीद करके वह हिंदू समाजको अर्पण की और ऊपर से और भी २५० रु० प्रदान किया। शर्त्त यह रखी है कि भूमि किसी को भी बेची न जाय"।

जगह मिल जाने पर महावीरजी ने मंदिर खडा करने पर

तत्परता से ध्यान लगाया। उनकी पत्नी ने अपनी संचित माया देकर उनका उत्साह बढ़ाया। दंपतिके बलपर कार्यारंभ हुआ। काम बढ़ जाने पर चन्देके लिये चौबे जी बाहर निकले। जो भी जिससे मिला सहर्ष स्वीकार किया। इस जुटावमें एक आने (दो सउ:) से ले कर १०० रु० तक लोगोंसे दान मिला है. लगभग दो हज़ार रुपयोंके चन्दे से शिवालयकी निर्मिति हुई है. स्व० कोटाप्पाका १०० रुपया है। श्री. घूरन सिंह एम. बी. ई. तथा श्री मोहनसिंह से पत्थर, चूना, आदि सामग्रीके रूपमें अच्छी सहायता मिली है। श्री. श्री. आ० गजाधर तथा गो० लछमन सिंह प्रभृतियों से चौबे जी को सहयोग मिलता है। एक ओर मंडप है जिसमें पाठशाला बनानेका इरादा है। मंदिरमें शिव पंचा-यतन की स्थापना होने वाली है। वह २० फीट ऊंचा है. स-मीपवर्ती चार पांच मील के फासलेमें शिवालय न होनेसे लोगों को जो अड़चन थी, वह अब दूर हो गई है. मंदिर के सामने एक सुन्दर बगीचा है और मंदिर चारों ओर से घिरा हुआ है. श्री. चौबे ही कर्त्ता धर्त्ता है.

---

# सिंहाचलम.

## वोनालों- माईपुर।

तेलगू लोगों का यह मंदिर शिल्प कला और सफाईकी दृष्टि से हिन्दू मंदिरोंमें कुछ ऊंचा स्थान रखता है। चूनेका शुभ्र वस्त्र सदैव धारण करके जनताको वह अपनी पवित्रता का दर्शन निरन्तर देता रहता है। कहते हैं कि, इस नामका मंदिर मद्रास

Shıwala of Rose Belle. Photo by the kindness of Mr N Gungah of New Grove

प्रांत के विजगा पट्टम नगरमें केवल एक ही है। सन् १९२५ में इसका उद्घाटन बडे समारोह के साथ हुआ है। बोवालों कोठी की ओर स भूमि तथा सामान, पैसा टका आदि से मंदिर की सहायता हुई है। उसी कोठीके एक कर्मचारी स्व० श्री० सीताना आपाद्दू मंदिर के प्राण थे, इतना कहनेसे ही उनकी पहचान हो सकती है। सैकड़ों लोगों ने यथा शक्ति दान दिया है, जिनमें श्री. श्री. दुखी गंग्रा तथा कोटापा नरसिमुल्लुके नाम उल्लेखनीय हैं। मंदिरमें लकड़ीका एक सिंहासन सा बना हुआ है और उस पर देवी देवताओंके चित्र रखे हुए हैं। बराह अवतारका भी एक चित्र है। विचारणीय बात यह है कि, किसी भी तेलगु मंदिर मे मूर्ति नहीं पाई जाती। यदि ये लोग निराकार ईश्वरको मानते हैं, तो फिर चित्र क्यों रखते हैं, कुछ समझमे नहीं आता। कदाचित् देखा देखी चली आई हो तो राम जाने।

मंदिरके लिये एक पुजारी है। समीप ही घांसभूसे के दो घर हैं, उसीमे कभी कभी बच्चों को तेलगू पढ़ाते हैं।

व्यंकटेश और दीपावली ये दो दीपोत्सव हैं। तामिल और तेलगू प्रजा मे पीतलकी बत्तियोंकी बडी ही प्रचूरता रहती है तथा वह शोभायमान भी होती है। 'तांत्रों' नामकी एक विशेष प्रकार यह बत्ती होती है। मार्च महीना में एक तैलोत्सव होता है और मंदिरका एक वार्षिक उत्सव भी मनाया

जाता है। उत्सवोंपर मंदिर भरा रहता है। करीब १० हजार रु० उस पर व्यय हुआ है। बूफों-युनिएलवेल, ब्रिटानिया, यु-नियों जिक्के, शेमे-ग्रेय, सेतावोल, मोन्वाम्मीर, आदि स्थानों पर तेलगू लोगोंके पक्के या घांसभूसेके छोटे छोटे देवल हैं। सब जगह चित्र ही देखने में आते हैं। आठ बारह आना किसी लडकेको देकर कहींर कपूर जलाया जाता है और उत्सव करना हो तो कुछ चन्दा करके काम निकाल लेते हैं।

---

# सीतला आम्मेन

## माईपूर

आरंभमें यह एक पर्ण-कुटिका सा स्थान था। लगभग ७५ वर्ष पूर्व स्व० कार्ता पुजारी ने सार्वत्रिक चन्दे से इसको नि-र्माण किया है। मंदिर अपनी आधा बीघा भूमिपर खडा है। गणेशका एक छोटासा उपमंदिर भी साथ ही है। मूर्त्ति स्थान के साथ ही लगे हुए पक्के मंडपसे मंदिर बडा मालूम होता है. उसकी ऊंचाई लगभग ३० फीट हैं. तामिल मदिरोंमे यह एक प्रसिद्ध स्थान है. सुब्रम्हण्य आदि तामिल देवता देवियोंकी मूर्तिया स्थित है. उन पर करीब १०० रुपयोंके जेवर हैं. तामिल मुख्य उत्सवोंके अतिरिक्त गणेश चतुर्थी, शिवरात्रि, दीपावली वगैरे उ-त्सव मनाये जाते है.

श्री० पेंसू ओलफ्रान्गो (बम्बईके व्यापारी) से आज ६ सालसे मंदिरको बिजली बत्ती मिली है। श्री० दुखी गंगाजीने भी दो बत्तियां दी हैं। पुजारीको कोई वेतन नहीं मिलता है।

"हिन्दू कार्पोरेशन" नामक संस्था द्वारा मंदिरका संचालन होता है। इस समय प्रधान श्री कृष्णासामी नाजां पड़ियार्चा हैं।

क्विनी, गिशानो, ग्रांब्वा, लेत्राम्न, देत्रा, लाबारात्र, लोब्ले लेस्कालिये आदि ग्वांपोर जिलेके कई गावोंमे तानिजोंके देवल पाये जाते हैं।

---

## विश्वेश्वरका मन्दिर।

### रिवियेर दे क्रेऑल-माईल्ड्स।

देशी पंडित स्व० विसेमर महाराजने अपनी पाव बीघा भूमिपर इसे बनाया है। सारा काम पत्थर, चूना और सीमेंट में हुआ है और लगभग ३५ साल हो जानेपर भी वह अभी हालका बना प्रतीत होता है। मंदिर चारों ओरसे पथरीली दीवारसे घिरा हुआ है। अन्दर पानीके लिये कुआँ भी है। उच्च स्थानपर श्री० शिवलिंग विराजमान है तथा गणेश, पार्व-ती आदि और भी मूर्तियां है। मंदिर, उसका गुम्बज तथा दीवारका बाहर भीतर एक ही शुभ्रवर्ण देखनेसे शिवजीके नि-वास स्थान कैलास पर्वतके पुराणान्तर्गत दिव्य वर्णन का एक चित्र श्रद्धालु जनताको दीख पड़ता हो तो आश्चर्य ही क्या?

गुंबजके साथ मंदिरकी ऊंचाई करीब ३० फीट है।

सफाई और दृश्यकी दृष्टिसे मोरिशसके कलकतिया हिन्दुओंके शिवालयोंमें इसका स्थान ऊंचा ही रहेगा। संस्कृतज्ञ स्व० देशी पंडित बालकृष्ण शास्त्रीके हाथसे शिवलिंगकी यथा विधि प्राणप्रतिष्ठा हुई है।

प० बिसेसर महाराजका स्वर्गवास हो जानेके उपरान्त उन की धर्मशीला विधवा पत्नीने मंदिरको उत्साह औदार्य एवं भक्ति भाव पूर्वक चलाया और अपने स्व० पतिकी पवित्र आत्माको इस प्रकार सदैव संतुष्ट रखा। हमारे विचारमें यही पातिव्रत्य धर्म है। उस देवीका देहावसान हुआ, तब उनके पुत्र पंडित भागवतप्रसादजी अपनी पैतृक पवित्र शिवालय-रूपी सम्पत्ति के मालिक बने।

चालीस वर्ष पूर्वकी स्थिति अब नहीं है। जमाना बदल गया है। लोगोंमें बुद्धि भेद हुआ है। ऐसे अश्रद्धाके समय में भी श्री. भागवतप्रसादजीने अपने माता पिताकी कीर्तिमें किंचित भी न्यून नहीं आने दिया है और उनकी उज्वल परम्परा को बराबर चलाते जा रहे है। हम समझते है कि, यही उनका माता पिताका सच्चा श्राद्ध है।

पुजारी आदिके लिये मंदिरका मासिक खर्च रु० २५ है। शिवरात्रि, जन्माष्टमी, रामनवमी, होली, दीपावली प्रभृति मुख्य त्योहार मनाए जाते है। यह सब व्यय श्री० भागवतप्रसादजी ही करते हैं।

यह ध्यान रखनेकी बात है कि, यह मंदिर श्री. बिसेसर पंडितका अकेलेका बनाया हुआ है और उनके पुत्र भी उसी प्रकार स्वयं सब खर्च करते हैं।

माता पिता तथा पुत्रकी यह ३५ वर्षकी त्रिगुणात्मक धर्म-सेवा अथवा शिवजीके प्रिय बिल्व पत्रेके समान वह त्रिदल-रूपी शिव-पूजा इस टापूके हिन्दुओंके धार्मिक इतिहासमें एक संस्मरणीय घटना बनी रहेगी, इसमें कोई संदेह नहीं।

प्रसिद्ध श्री. अमर पंडित तथा उनके पुत्र एवं अन्य सज्जनोंके सहयोगसे मंदिरके समस्त कार्योंका संचालन उचित रीतिसे हो रहा है। भूमि समेत शिवालयमें लगभग ५००० रुपया व्यय हुआ है।

---

## मरी आम्मेन।

### सेंतोवें।

यह लगभग ६० वर्षका पुराना मंदिर है। सामने एक लंबा मंडप है। मंदिरमें हमने १७ मूर्तियोंकी गिनती की है, जिनके नाम भी वहांके पुजारी ठीक २ नहीं बता सकते थे। पुजारीको कोठीकी ओरसे दाना पानी मिलता है। मंदिर अपनी ही एक भूमिपर बना है। तामिलोंके उत्सव मनाए जाते हैं। कावड़ी और जिफे मारसे (अग्निचलन) बडे त्यौहार हैं। आमदनी कुछ नहीं।

विशेष अवसरोंपर चन्दा द्वारा कार्य निष्पन्न होते हैं। को-

ठीके एक कर्मचारी श्री. पोजाया रामदू मांदिरकी देख भाल करते हैं। रविवारके दिन कुछ लोग जमा होते हैं और कुछ पूजा पाठ होता है।

सवाना, का जाउन, रिशब्वा, वेनारेश, बेलेग, रियर-दे-जार्गा ब्रिटानिया, तेरामीन, सुरीनाम, रियावेज, बेलोम, ल्वाजो, सेन-विल, लेनियों आदि सावान जिलेमे अनेक स्थानो पर तामिल देवल मिलते हैं।

---

# शिवालय--

## सुरीनाम-सुइयाक।

यह मंदिर ग्यारह वर्ष पूर्वका बना हुआ है। श्रीमान लखन साव नामक ओडिया सज्जन की दान दी हुई भूमि मे एक ऊंचे चबुतरे पर यह देवल स्थित है। सावजी को लोग साधु के नाम से पुकारते हैं। वह विचारे कुछ समय से अन्धे हो गये हैं। उनकी आर्थिक स्थिति भी बिगड़ी हुई है। मंदिर में एक ही शिवलिंग की मूर्त्ति है। 'रविउदय विद्या समाज' नामक संस्था के द्वारा मंदिरका संचालन होता है। इस समय संस्थाके प्रधान श्री. महावीर बरन चौबे हैं। मंदिर मार्वत्रिक चन्देसे बना है, जिसमे सामुनीके प्रसिद्ध रामा भाईयों से अच्छी सहायता प्राप्त हुई है। मंदिर बनानेमें पं० इन्द्रदत्तजी ने अच्छे परिश्रम किये हैं। सारा प्रबन्ध भी उन्हींकी देखभालके नीचे है। त्यौहार

मनाते हैं और समय२ पर हिन्दीकी पढ़ाई भी होती है। सावान जिले मे कलकनियाओंका यही एक देवल है।

दुआसेरीमे एक छोटासा दूसरा देवल बन गया है, पर उसमें अभी मूर्तिकी प्राणप्रतिष्ठा नहीं हुई है। इस देवलके सम्बन्धमें पं० रामचरित्र शर्मा, श्री. लच्मण सरदार आदियों के नाम उल्लेखनीय हैं।

---

# शिव सुब्रम्हरायर

## शीमें-ग्रीयें।

पोर्टलुइसके रईस और व्यापारी स्व० आडिन्ना चेटी चेलाडी ने इस मंदिरको बनाया है। मंदिरके इन्तजामके लिये गन्ने की कुछ भूमि और एक मकानके किराया से होनेवाली आय है. चेलाडीजी ने १९१६ मे यह मंदिर बनाया और उसके लिये उपरोक्त लगभग ४०० रु० वार्षिक आयका पक्का प्रबंध कर रखा. यह सब एक ही उदार व्यक्ति का कार्य है. उनके भाई श्री. तिरकाम चेटी, चार पाच सालसे मंदिरकी देख भाली करते है. उनका कथन है कि. प्रतिवर्ष करीब १,००० रुपया मंदिर पर खर्च होता है. अधिक व्यय की पूर्ति स्व० चेलाडीकी पत्नी करती है. पुजारी को प्रति सप्ताह ५ रु० वेतन भी मिलता है मंदिरमे कार्तिक स्वामी की दो मूर्तिया हैं और एक गणेशकी है. कावड़ी और कार्तिका तीवम ये दो उत्सव मनाये जाते हैं

तिरकाम चेटीजी का कहना है कि, मंदिरमें कितना खर्च हुआ है, वह बताना नहीं चाहिये क्योंकि उसमें घमंडकी बू आती है. हमारा अन्दाज ८--१० हजारका है. गुंबजके साथ मंदिरकी ऊंचाई ३०--३५ फीट होगी.

कुछ ही दूर पर वहां ४०--५० सालका और एक मद्राजी देवल है; परन्तु वह गरीब है. मद्राजियोंकी आबादी घट जानेसे श्रद्धा भक्ति के नाते से दोनों मंदिर गरीबी चाल चलते हैं.

---

## हरिहरका मंदिर—
## कास्कावेल—ब्लाक रीवर ।

३० सालका पुराना मराठोंका मोरिशसमें यह दूसरा मंदिर है। वहांके मान्यवर रईस स्व० श्री० लक्ष्मण गराणूके परिश्रम से तथा स्व० श्री० राघु दाजी (बोशामेंके श्री० लक्ष्मणराव पवार के पिता) प्रभृतिके सहयोगसे सार्वजनिक चन्दे द्वारा मंदिरकी सृष्टि हुई है। बॅरिस्टर मणिलालजीका एक उत्सव पर यहां भाषण हुआ था। सात आठ साल मंदिर ठीक रीतिसे चला। प्रधान लक्ष्मण गराणू की मृत्युके बाद श्री. लक्ष्मणराव पवारने मंदिरका भार अपने सिरपर लिया। पश्चात उनकी आर्थिक स्थिति वह न गई और मंदिरका संचालन उनसे न हो सका। दश वर्ष उसी हालतमें बीते लक्ष्मणरावजीको यह बात खटक रही थी कि, उनकी पूजा अर्चाका भंग हो गया था; परन्तु अब ८--१० वर्षोंसे वह स्थान

लक्ष्मण रावजीके पुरुषार्थ से मोरिशस का एक सुन्दर मंदिर बन गया है।

आपका भाग्योदय फिर हुआ और १९२५ में आप ने नये सिरसे मंदिरका जीर्णोद्धार आरंभ किया। मंदिरका पक्का शोभायमान मंडप मोरिशस के हिन्दू मंदिरोंमें वही एक है साथ एक धर्मशाला, सभा भवन तथा पाठशाला भी बनी है।

भारत से शंकर—पार्वतीकी युगल मूर्त्ति मंगा कर बड़े समारोह पूर्वक आप ने प्राणप्रतिष्ठा उत्सव किया। टापूमें घूम घूम कर स्वजातियोंमें जागृति उत्पन्न की। शिवाजी, लक्ष्मीबाई जैसे ऐतिहासिक वीर स्त्री पुरुषकी पुस्तकें अपने पैसे से छपवा कर मुफ्त वितीर्ण करके हिन्दू जाति मे चैतन्य निर्माण करनेकी चेष्टा की। प्रार्थना पुस्तक लिखवा कर तथा पं० आत्मारामके समवेत सर्वत्र जाकर व्याख्यान, उपदेशसे धर्म शिक्षाका प्रचार किया।

यह सब हो जाने पर 'मराठी प्रेमवर्धक मंडली' नामक एक अधिकृत संस्था बना कर आपने यह समस्त सम्पत्ति १९२९ में उसको समर्पण कर दी। उपरान्त श्री. श्री. दुर्गाप्रसाद भगत देवी माष्टर तथा बुलाकीके सहयोग से एक इंग्लिश--फ्रेंचकी पाठशाला खोलकर कुछ मास आप ने उसको चलाया। इस समय भी अल्प प्रमाण मे वैसी ही एक पाठशाला चल रही है।

आपकी पत्नी सौभाग्यवती भागीरथी देवी ने मंदिरकी भूमि

अब इस संस्था द्वारा ही होता है। मोताईओरी और आस-पासकी बस्तीयोंसे २० रुपयोंके करीब मदिरके लिये मासिक आय हो जाती है और उतना ही व्यय होता है। पांच हजार के करीब मंदिरकी बनाईमें लग जानेका हमारा अन्दाज है। इस सबंधमें स्वयं मालिक कुछ कहना नहीं चाहते हैं। वे कहते हैं कि, वैसा करनेमें आत्मश्लाघा होती है। सत्य कथन भी आत्मश्लाघा !!

---

# शिव सुब्रम्हराय।

## मोंतांइ ओरी।

इस मंदिरके जन्मदाता स्व० श्री० जी० नायकेर तथा श्री. श्री. एस. सुब्रिया और नायडू हैं। श्री. व्ही. रामूकी दान दी हुई आधा बाघा भूमिपर यह बना है। पहले यह पत्ताच्छादित था, पर मोकाके निवासी उक्त श्री. सुब्रिया प्रभृतिके उद्योगसे सन १६३१ मे सार्वजनिक चन्दे द्वारा इसकी मिर्तिति हुई है। अब वह शीशा और सिमेण्टका बना हुआ है। गुम्बज के साथ ऊंचाई करीब २० फीट है और लोहेके पत्रोंका बरण्डा है। मुख्य मूर्ति सुब्रम्हणयकी है। और मुख्य उत्सव कावडी हैं। मंदिरकी बनाईमें पैसा और सामग्री मिलकर ३,००० के लगभग व्यय हुआ है। कावडी उत्सवपर प्रतिसाल २०० रुपयांकी आय हो जाती है। कास, सू की चढाईसे मासिक चार रुपया आ जाता है। दैनिक पूजाके लिये एक पुजारी हैं। श्री.

उपरोक्त संस्था को देन दी है। मंदिर मे समस्त त्यौहार मनाये जाते है, जिनमें व्याख्यान, उपदेश, भजन, पोथी पुराण आदि कार्यक्रम रहता है। नित्य पूजा पाठ के लिये एक पुजारी है, जो एक सच्चा श्रद्धावान् मनुष्य है। कोषमे रु० २५० जमा है। मंत्री श्री. रामायंसू इदर तथा कोषाध्यक्ष रामचन्द्र भिकू और श्री. दाजी प्रभृति अन्यान्य उत्साही सज्जनोंके सहयोगसे मंदिर का संचालन उचित रीतिसे-हो रहा है। श्री. श्री. परशराम हरि एवं श्री. भागोजी सन्तु जैसे प्रतिष्ठित मनुष्य मंदिके संबंध मे बहुत ध्यान रखते है और कुछ न कुछ प्रचार कार्य करते रहते है। इस समय मदिरमे होने वाले व्यय के लिये मंदिरके अहातेमें ही एक स्थान बन रहा है। आशा की जाती है कि, उसकी आमदनीसे मंदिरकी आर्थिक स्थिति दृढ़ हो जायगी तथा और कुछ लोकोपयोगी कार्य हो सकेगा।

ब्लेकरिवर जिलेमे हिदुओंका यही एक अच्छा मंदिर है.

मद्राजियोंके टूटे फूटे दो चार स्थान हैं और पिचिरिवियेरमे कलकतियाओंका एक देवल है। इस जिलेका हवापानी भी अच्छा नही और जनसंख्या भी बहुत अल्प है। उपरोक्त हरि-हरके मंदिर मे आजतक पाच दस मनुष्योंकी शुद्धि करा कर उन्हें हिंदू धर्ममें पुनः सम्मिलित किया गया है। जामल्वीज-कासबोर्न के शिवालय मे भी ऐसी शुद्धियां हुई है। हिन्दू समाजकी जयिष्णु प्रवृत्तिका वह एक द्योतक है।

माननीय श्री. गजाधर तथा श्री. दुर्वी गंगाजीकी मोटी रकमे हैं। ६-७ हजार रुपया सार्वत्रिक चंदे द्वारा मंदिरकी सृष्टि हुई है। प्राणप्रतिष्ठा दिनका वार्षिक उत्सव ही बडा त्यौहार है तथा दीपावली, पेरटासी (उपोषण व्रत) आदि उत्सव भी मनाए जाते है। उनका खर्च चंदेसे होता है। कभी अधिक की पूर्ति श्री. जगन्ना तथा उनके मित्रोंसे होती है। अनियमित रीतिसे १०–१५ रुपया मासिक मिल जाता है तथा पूजा और पुजारीमे वह व्यय हो जाता है।

मंदिरमें कोई मूर्ति नहीं केवल कृष्ण भगवान का एक अर्ध देही तैल चित्र पूजा स्थानके मध्य मे स्थित है। खास कहने लायक बात यह है कि, वह चित्र श्रीमती देवी सोगनेके सुन्दर नाजुक और गौर कर कमलोंसे बना हुआ है. इतना समय हो जाने पर भी चित्र बिलकुल ताजा मालूम देता है. चित्र कला मे मदाम साहिबाका अच्छा कौशल्य प्रतीत होता है. पति पत्नीका यह हिन्दू-धर्म प्रेम क्या सराहनीय नहीं है ?

चार साल बाद याने १९२७ के सालमे मंदिर की व्यवस्था देखने के लिये "आध्र जनानन्द सभाय संघम" नाम की एक संस्था अधिकृत रीति से स्थापित हुई जिसके प्रधान श्री. अपालसामी के पुत्र श्री. भालचंद्र जगन्ना है। मंत्री श्री. वेंकटासामी आपाडू और कोषाध्यक्ष श्री नारायणसामी लक्ष्मी नारायडू है। इस संस्था के ६० सदस्य हैं। मंदिर सचालनके साथ साथ सामाजिक कार्य भी यह संस्था करती रहती है।

प्राणप्रतिष्ठा के आचार्य थे. मोका के स्व० अनत महाराज का अच्छा सहयोग था. एक व्यक्ति के २० साल के उद्योगके बाद मोंताई ओर्गी के निवासियोंको शिवबाबा का दर्शन हुआ. मंदिर के साथ एक पाठशाला भी है जिसमें बाल बालिकायें हिन्दीकी शिक्षा पाती हैं।

नित्यकी पूजा अर्चाके लिये एक पुजारी हैं। शिवरात्रिके दिन अच्छी भीड़ रहती है। अन्य हिन्दू त्यौहार मनाये जाते हैं। इस प्रकार १०-१२ वर्ष मंदिरको चलाकर सुदूधू सरदार ने वहांकी नव स्थापित "ॐ क्लेश हारिणी समाज सोसायटी" नामक संस्थाको अपना मंदिर पिछले सालके जून मासमें अर्पण कर दिया। यह समर्पण उनकी धर्म पत्नी देवी धनमनिया राम-सरनके नामसे हुआ है। अर्थात, यह मंदिर अब सर्वसाधारण हिन्दू जनताका हो गया है। कतिपय लोग मंदिरको निजी सम्पत्ति मानकर मनमाना काम करते हैं, जिससे झगड़े पैदा होते हैं और मंदिरका बहिष्कार हो जाता है। मानों कि ईश्वर को मंदिरके मालिकने कैदकर रखा है!! मोरिशसमें कई जगह यह दृश्य नजर आता है। सदूधू सरदारने यह नहीं होने दिया तथा पैसा मेरा और मंदिर मेरा इस अहंकारमें न फंसकर शिवालय हिन्दू जनताके हाथ सौंप दिया। उनके इस उदार भावके लिये वहांकी हिन्दू जनता सुदूधू सरदारको धन्यवाद ही देगी.

"क्लेश हारिणी सोसायटी" के प्रधान श्री० रघुपतसिंह अ-लागरूसिंह हैं। मन्त्री वहांके उत्साही पं० शिव प्रसाद शर्मा और कोषाध्यक्ष श्री० सुखदेव झगडू हैं। मंदिरका संचालन

एम. नारायने (बाबू) और श्री० बी० ओभिगाडू प्रधान और उपप्रधानकी हैसियतसे मंदिरका संचालन करते हैं। श्री. सुचिया की सलाहसे सब काम उचित रीतिसे होता रहता है।

समीपकी बोनेर कोठीमें तामिलोंकी आबादी उठ जानेसे वहां का देवल सुन पड़ा है। ऐसा और भी आसपासके भागोंमें मंदिर बने पड़े हैं। मोका जिलेमें मिनेर्सी,, कोतदोर, सेंपियर वेरदें, सांतने, और एलवेशियाके तामिल देवल कुछ ठीक हालतमें हैं।

## विष्णु मंदिर।

### सिरकोंसतांस—मोका।

सेंपीयरके नामी सरदार श्री. आपाजमामी चयन्नाके परिश्रमसे सन १९२३ में यह तेलगू मंदिर बना है। मों देजोर कोठीके श्री. लुई दे सोरने साहबकी इसमें सबसे अधिक मदद हुई है। सोरने साहब भारतियोंके मित्रसे प्रतीत होते हैं। संपीयरमें एक स्मशान भूमि बनाकर आपने उनके कष्ट निवारण किये हैं और आप हमेशा उन की सहायता करते रहते हैं। दस साल पूर्व यहां आये हुए भारत सरकारके प्रतिनिधि श्री. कुँवर महाराजसिंहने सोरने साहबको पत्र लिखकर उन का गौरव किया है। हम पूछते हैं कि भारतियोंने कभी उन का गौरव किया है?

# विश्वेश्वरनाथ।

## मेदीन-कां दे मास।

स्व० प्रतापसावने भूमि अर्पिया की और उनके भाई श्री. कपूरचंद सावने उसपर देवल खडा किया। मंदिरमें शिवलिंग की मूर्ति है। मंदिर लगभग ४० सालका पुराना है। तीन साल पूर्व पं० मीतलप्रसाद तथा श्री. श्री. राजकुमार साव, गणेश महतों प्रभृति जनों द्वारा मंदिरका जीर्णोद्धार हुआ। आप ही मंदिर की देख भाल करते हैं।

---

# शिवालय।

## मोतांई ब्लांश।

सन १९२० से १९२५ तकमें, जबकी भारतीय लोग आर्थिक दास्यसे मुक्त हो गए थे और धार्मिक तथा राष्ट्रीय भावोंकी जागृति उनमे आ गई थी मोरिशसमें, जो बहुतसे शिवालय और संस्थाएं निर्माण हुई थी; उनमेंसे उपरोक्त भी एक है। लोगों के हाथमे पैसा था और शिवाला बनाना एक पुण्यप्रद कार्य समझा जाता था। धन और धर्मका संयोग हुआ और मंदिर बनने लगे उन दिनोंमें पैसेकी कमी न होनेसे शिवालयके लिये चंदा इकट्ठा करना उतना कठिन कार्य नहीं था। किन्तु आज की गिरी दशामे भी शिवालयका नाम लोगोंमें उदारताका भाव पैदा कर देता है।

# विश्वनाथ मंदिर–

## दागांचियेर–वेरदें।

वहां के धर्मिष्ठ जमीनदार श्री. लछमण सिंह बालगोविन्द ने अपनी एक एकड भूमि और ५०० रुपया नकद दे कर मंदिर का शिलारोपण किया। वहां के दूसरे प्रतिष्ठित रईस पाव-कुल बंधु, स्व० रामभजन सिंह और श्री. रामभजन सिंह का ५०० रुपया तथा अन्यान्य छोटी मोटी रकमों से साल १९२१ में मंदिर की सृष्टि हुई। श्री. लछमण सिंह जी के प्रधानत्व में मंदिर पर उत्सवादि जोरशोर से होते थे। कथाओं की प्रचुरता थी। बादमें श्री. रामभजन सिंह भी कुछ समय तक मंदिर के प्रधान संचालक रहे हैं। स्व० महदेव सिंह ने भी वह कार्य किया है। विद्यमान प्रधान श्री बलराम राजकुमार है। पहले कुछ समय एक हिन्दी पाठशाला भी चलती थी। मंदिरमें शिवलिंग की मूर्ति है और सामने नंदी है. मुख्य त्यौहार मनाये जाते हैं. पुजारी द्वारा दैनिक पूजन होता है. साथ एक कुआं भी है. मंदिर बैठका आदि के लिये उस समयकी महंगी के कारण आठ-दस हजार रुपया खर्च हुआ है. जनता का वह उत्साह आज नहीं है.

में से बहने लगा है और उनके पिताके निर्मित देवस्थानकी मूर्तियां, आज सात आठ वर्षों से परिवर्तनशील संसार की गतिको देखती हुई "कालाय तस्मै नमः" कह कर स्मित हास्यसे अपना शेष वैराग्यमय जीवन विचारी काट रही हैं।

---

## ठाकुरबाड़ी

### बोशां-फ्लाक।

वहाके प्रसिद्ध तथा प्रतिष्ठित बाबू साहब स्व. श्री. रामलालसिंह नवराबकी धर्मिष्ठता और उदारताके फल स्वरूप सन १९१७ में इस ठाकुरबाड़ीकी निर्मिति हुई है। कुछ चंदा भी हुआ था। भूमि कोठीकी है। श्री. रामजोगी सरदारकी अच्छी सहायता हुई है। अन्त समय याने पिछले १७ साल तक बाबूजीने ही प्रधान संचालककी हैसियतसे धर्म-सेवा की है। समीप ही बैठका और मंडप बनाया हुआ है, जिसमे समय२ पर व्याख्यान, उपदेश, भजन आदि सत्संग होता है और धर्म जागृति की जाती है। रामलालसिंहजी पुराने विचारके मनुष्य थे और अपने ही पुरुषार्थसे आप सुस्थितिको पहुँचे थे। ब्राह्मणों प्रति आपका बडा ही पूज्य भाव होता था। सभा सोसायटीको आप यथा शक्ति दान देते थे।

बोशां कोठीमें तामिल कलकतिया, तेलगू, मराठा आदि हिन्दुओंकी बैठका हैं। बोशांमें रामलालसिंहजीका करीब ४१

Shree Sewadas Mahant of Union Vale the religious head of Kabeer Panth

रुपया व्यय किया है, वह उनकी पुत्र वत्सलताका दर्शक जरूर ही है; परन्तु स्वार्थी पाठककी यही आशा रहेगी कि, स्व० पिताका ऋण, अपने देश-जातिकी भलाईमें उनके पुत्रसे अदा होगा।

इस समय बाबूजी के द्वितीय पुत्र श्री. रामनारायण सिंह अपने पिता की परम्परा चला रहे हैं तथा रामजोगी जी उनसें सहयोग करते हैं। कृष्ण जन्म, रामनवमी, दीपावली आदि उत्सव मनाये जाते है। रोजकी पूजा अर्चा उनके कुटुंबियोंसे ही होती है।

---

## विष्णु मंदिर।

यहांका यह दूसरा पुराना मंदिर, एक आश्रम जैसा रम्य स्थान है। भीतर शिवलिंग है तथा तेलगू प्रजा के पेरमाल (विष्णु) आदि के चित्र भी हैं। तेलगू पुजारी तथा पीतल की बत्ती आदि से मालूम होता है कि, यहां कलकतिया--तेलगू प्रजा के देवी देवताओं का संगठन सा हो गया है। स्व० रामलाल सिंह ही यहां देखभाल करते थे। अब उनके पुत्र रामनारायण सिंहजी तथा रामजोगीजी की जोड़ी ही मंदिर का प्रबंध करती है। शिवरात्रि, फागवादि कलकतिया त्यौहारोंके सिवाय तेलगू उत्सव भी होते हैं।

---

मोंतांई ब्लांशके दो गुसाईं भाई श्री. श्री. क्रिसुनदत्त और रामगोविन्दके उद्योगसे सार्वत्रिक चंदे द्वारा यह मंदिर बना है। गुसाईं भाई मालदार मनुष्य नहीं है, पर उन्होंने अपनी भूमि मंदिरके लिये देन दी है। यह देवस्थान करीब २८ फीट ऊंचा है। वह एक छोटेसे कमरेके परिमाणका, पत्थरोंकी गोलाकार दीवार और ऊपर लोहेके नालेदार पत्रोंके छप्परका बना हुआ है। चारों ओर छोटासा बाड़ा है। लगभग ३,००० रुपया उसमें लगा है। मान० गजाधर और श्रीयुत दुखी गंगाजीकी अच्छी सहायता हुई है। पं० राधाकृष्ण शास्त्री एवं पं० सुन्दर सकल-दीपका सहयोग रहा है। राधाकृष्ण शास्त्रीजीके हाथमे ही मंदिर मे शिवलिंगकी प्राणप्रतिष्ठा हुई है। बाहर नन्दी है। एक ओर एक चबुतरा, हनुमान गढी नामसे बना हुआ है। पुजारी का कार्य गुसांई बांधव ही करते हैं। मंदिरकी कोई आमदनी नहीं है। प्रति रविवारको बाजारमे लोटा घुमाया जाता है और उसी प्रकारके अन्य ढंगसे मंदिरके लिये कुछ मिल जाता है। शिवरात्रिके दिन मंदिरपर भीड रहती है और उत्सव भी कभी२ मनाए जाते है।

---

## शिवालय—

### लालमाटी फ्लाक।

सन १९२२ मे इस मंदिरकी सृष्टि हुई है। अधिक ध और परिश्रम स्व० श्री० देवीदीन रिटूके है। यह सार्वजनि चन्देसे बना है। १९२० के सालमे मोरिशसमे चान्दीकी बा

Mr Bhagawandas G Kala, noted social worker and founder and promoter of Geeta Pracharak Maha Mandal

# शिवालय-

## रीशमार-फ्लाक ।

स्व० श्री. बलखंडीकी रहन् से उनको 'भगत' की पदवी प्राप्त हुई थी। लगभग २५ वर्ष पूर्व उन्होंने उपरोक्त स्थानमें सर्वत्र चन्दा करके एक छोटासा शिवालय बनाया। वह एक 'नागा संप्रदाय' के मनुष्य थे और कहते है कि, गांजा की भरदम ... भक्तिभाव मे तल्लीन हो जाते थे। स्व० श्री. कोटय्याजी ने अपनी भूमि मंदिरको अर्पण कर दी है। गणेश, पार्वती आदि मूर्त्तियां है। समयर पर उत्सव होते है। पं० रामचंद्र पांडे, पं० रामशरन आदि मंदिरकी देखभाल करते है। पं० रामचंद्र अब स्वर्गवासी है।

आमदनी कुछ नहीं, विशेष कार्य तात्कालिक चन्दे से किये जाते हैं।

---

# शिवालय-

## कांगारो-फ्लाक ।

करीब ५० सालका यह एक पुराना देवल है। फ्लाकके प्रसिद्ध रईस श्रीमान् हनुमान बिसेसरजीके श्रद्धालु पिता का अपनी भूमि पर बनाया हुआ है। उनकी मृत्युके बाद कई वर्ष बिसेसर जी, शिवालयको यथा पूर्व चलाते रहे, परन्तु दस बारह सालसे श्रि० हनुमानजी की श्रद्धा और धनका प्रवाह एक नये नाले

है, मालूम नहीं।

हमने यह भी सुना है कि, उन्होंने अपनी एक सात बीघा जमीनके लिये ऐसी शर्त्त रखी है कि, उसमें सुअर आदि जानवर नहीं पोसे जायँ। जो भी कोई उसके मालिक बने उसे उस शर्त्तका पालन करना चाहिये। बातीजे वाला आदमी ऐसी शर्त्त रखेगा?

घडी भर के लिये मान लिया कि, वह विकट परिस्थिति में या साहबको खुशी करनेके लिये बातीजे हो गये थे, तो भी क्या? जिसने अपनी श्रद्धाके अनुसार हिन्दू धर्म और जाति की इतनी सेवा की, क्या वह नामधारी हिंदूसे श्रेष्ठ नहीं? कठिन समयका सामना करना पुरुषार्थका लक्षण है। ऐसे पुरुष वंदनीय हैं। थोडेसे पानीका छिडकाव दृढ़ हिन्दू पर क्या असर कर सकता है? हमारे पंचामृत में थोडी शक्ति है?

त्रिओले शिवालय के निर्माण कर्त्ता सजीवनलाल महाराज की खरी योग्यता उसीमें है कि, हिंदुओंकी दृष्टि में (वास्तव मे नहीं) हलके समझे जाने वाले धंधे मे अपनी बुद्धि चला कर उन्होंने कुछ पैसा कमाया और उसी कमाई के आधार पर किये हुए जमीनके व्यवहारमें हजारों रुपया पैदा किया और समस्त धन, ईश सेवा को अर्पण किया।

आज एक लखपति कुर्सीपर बैठे २ कुछ कार्य के लिये हजार पाच सो का मांदा (बंक का चेक) काट देता है तो हम

सालसे निवास था। अपने शुद्ध आचरण और व्यवहारसे बाबूजीकी मानमर्यादा स्थित हो गई थी और पिछले बीस सालसे उपरोक्त बैठकाओंके आप सर्वोपरि अध्यक्ष थे। कोठीवाले भी उनकी इज्जत करते थे। सब प्रकारके सामाजिक तथा धार्मिक प्रश्नोंका आप पक्षपात रहित निपटारा करते थे। वहांकी जनताका उनपर बडा ही विश्वास था। भरसक उनका यत्न रहा है कि, अदालतोंमें व्यर्थका व्यय न किया जाय। उनकी स्मशान यात्रापर सैकडोंकी संख्यामें उपस्थित रहकर जनताने उनके प्रति अपना कृतज्ञता-भाव प्रकट किया था। उनकी विधवा धर्म-पत्नीने अपने पतिके स्मारकमें एक छोटीसी हनुमान गढी हाल ही में बनाई है, जिसमें प्राणप्रतिष्ठा-उत्सव विगत फरवरी मासमें बडे समारोहके साथ निष्पन्न हुआ था।

हमारी रायमें उनका उत्तम स्मारक अपने पुत्र श्री. जयनारायण रायको भारतीय ज्ञान और संस्कृतिसे विभूषित कराने में है। श्री. रायने भारतीय विश्वविद्यालय (Allahabad University) की अन्तिम परीक्षा उत्तीर्ण की है और आप एम० ए० एल० एल० बी० हुए है। इस ऊची उपाधिको प्राप्त करके सचमुच "विद्वान" की पदवीको पहुँचनेवाले मोरिशसके आप पहिले हिन्दू युवक है। मोरिशस वासियोंके सुज्ञात वेरिस्टर मणिलालजीकी ऐसी ही उपाधि थी। राय एक तेजस्वी प्रकृतिके तरुण है। भारतके वायु मंडलमें दस वर्ष रहकर देश-जाति प्रति उनके विचार और भी उन्नत हुए हैं, यह बात उनके पत्रोंसे हमे ज्ञात है। उनके पिताने उनके लिये, जो हजारों

# रामेश्वरनाथका मंदिर।

## रिविएर जी रांपार।

पिछले वर्ष इसकी बनाईका आरम्भ हुआ है। इसके जन्म-दाता एक सरकारी पाठशालाके मुख्याध्यापक पं० गोकर्ण राम-गुलाम एवं बाबू वासुदेवसिंह फुलेनासिंह हैं। श्रीमान शिवगो-विन्द प्रयागने अपनी लगभग २०० रुपया कीमतकी आधा बीघा भूमि मंदिर निर्मितिके लिये दान दी है। सार्वजनिक चंदे द्वारा मंदिर बना है, जिसमें माननीय बाबू राजकुमार गजाधरजीकी ओरसे करीब ५०० रुपयोंकी मंदिर बनाईकी सामग्री प्राप्त हुई है। सब व्यय अन्दाज ३,००० रुपया होगा। पिछले साल बड़े समारोहके साथ मंदिरमे शिवलिंगकी प्राणप्रतिष्ठा हुई थी। आचार्य देशी पं० राजेंद्रनाथ शर्मा थे।

---

# पियात और लावांचीर।

उपरोक्त स्थानोंपर भी छोटे देवल हैं। रिवर जी रांपार जिलेमें और आस पास मद्राजियोंके अनेक देवल हैं। लेलवी, बो-सेजूर, रोशन्वार, लामूरी, लाबुरदोने, बोनेसप्वार, ह्वाकल, सेतात-वेन, फोरबाक, आजार, ग्रां साजाल, पिची राफे, गुडलेण्ड, बोनाके, फ्लाक आदि स्थानोंपर तामिलोंके मंदिर पाये जाते हैं। तेलगू भजाके भी कतिपय मंदिर हैं। छूटे टूटे देवल भी कई पड़े हुए हैं।

## सुब्रह्मण्य और द्रौपदी आम्मेन।

मोरिशस में एक ही भूमि पर ये दो तामिलों के मंदिर हैं। वे बहुत पुराने हैं। कावडी और अग्नि चलन मुख्य त्योहार हैं। फलाक जिले में १५--२० स्थानों पर हमने तामिल मंदिर देखे हैं, जो मरी आम्मेन, द्रौपदी आम्मेन या सुब्रह्मण्यके नामसे मशहूर हैं। उनमें फ्लेमाशिश्रा का मंदिर बहुत पुराना है।

## शिवालय—

### गोकुला—रिवियेर जिरांपार।

बिहारी हिन्दुओंका स्व० श्री. गोकुलाजीका बनाया यह एक प्राचीन शिवालय है। उनकी मृत्युको ही आज ५४ वर्ष हो गये है. उन दिनों वहां पानी का बडा कष्ट था. आप ने एक कुआ भी खुदवाया. हिन्दुओंमे मंदिर बांधना, कुआ खोदना आदि पुण्य कार्य समझे जाते हैं. गोकुला जी एक धनी सरदार थे। उनके दान पुण्य के कारण वह स्थान इतना मशहूर हो गया कि, उसका नाम ही 'गोकुला' हो गया. वहां अब नलका पानी आ गया और कुआ बंद हो गया है. शिवालय का घर भी कालान्तर मे जा कर टूट फूट जायगा। उनके वंशजों का भी पता न चलेगा, पर उनका जीता जागता नाम, वह गोकुला का देहात लोगोंको सदैव उनका स्मरण कराता रहेगा. बहुत थोडांके भाग्यमे ऐसी कीर्ति होती है.

किंवदन्ती है कि, कोठीके कोई साहबने उनको किसी समयमे बातीजे (ईसाई धर्म दीक्षा) किया था यह बात कहां तक सच

काफी आय नहीं होती थी और बादमें उसके लिये सरकार दरबार भी हुआ।

इस समय "दि मोरिशस हिन्दू कांग्रेगेशन" नामक संस्था द्वारा मंदिरकी व्यवस्था देखी जाती है। वहां एक पुजारी रहता है, जो अन्य पुजारियोंके समान अपना निर्वाह करता है। मंदिरमें अनेक मूर्तियां हैं, उपमन्दिर भी हैं। 'कोई त्यौहार अब वहां नहीं होते हैं। उपरोक्त संस्था, मीनाक्षी और द्रौपदी आम्मेन दोनों मंदिरोंकी देख भाली करती है। कमखर्चीके हेतुसे सब धार्मिक विधि और उत्सव मीनाक्षी मंदिरमें ही होते हैं।

शुद्ध हवा, निर्मल स्थान और आबादीसे दूर यह सब स्वास्थ्यके लिये बहुत अच्छा है; परन्तु मंदिरके लिये ऐसे स्थान लाभकारी सिद्ध नहीं होते हैं। शहरसे तीन मील चलकर अथवा वाहनोंमें खर्चकर कितने आदमी देव दर्शन करेंगे? बरस भरमें दो तीन उत्सवोंपर, जो कोई आते होंगे, वही। सालके बाकी ३६२ दिन तो भगवानका घर सूना ही समझो। जिस पुण्यात्माने १५–२० हजार, मंदिर और भूमिमें खर्च किया वह सब १५–२० सालके बाद ही व्यर्थसा हो गया। वहांकी मूर्तिको ही दूसरे मंदिरकी शरण लेनी पड़ी! ईसाई और मुसलमान मंदिरोंके समान हम समझते हैं कि, हमारे मंदिर भी आबादीके बीचमें होने चाहिये तब ही वे कुछ चल सकते हैं।

बोप्लां, मोरुसें, ओसं, मोंताई लोंग, क्रेवकेर आदि स्थानों पर मद्राजियोंके छोटे छोटे देवल हैं। पांप्लेमुस जिलेमें तामिलोंका यही बड़ा मंदिर है।

जाते हैं. कुछ दिन पाठशाला भी एक थी. 'नीलकंठ सोसायटी' नाम की संस्था मंदिर के संचालन के लिये बन रही है कहते हैं कि, मतभेदके कारण वह जोश अब नहीं है।

## विश्वनाथ शिवालय—

### केवंकेर।

उपरोक्त स्थान के पहाड़ी गांवमें यह स्थित है। स्व० देशी पंडित देवी मिसरके संयोग से इसकी निर्मिति हुई है। यह साठ सालसे अधिक पुराना है। देवी पंडितके पौत्र पं० वेनीमाधव मिसर इस समय शिवालय की देखभाल करते हैं।

## महेश्वरनाथ शिवालय—

### तेररूज पांप्लेमुस।

करीब ७० सालका यह एक पुराना स्थान है। स्व० श्री. नायक नाम के एक व्यक्ति के परिश्रम से वह बना हुआ था। वकील रामलालजी के दादा कुछ समय पुजारी थे। चंद साल बाद स्व० ईसरी सिंह ने उसी भूमि पर और एक पूजा स्थान खड़ाकर दिया। उस समय वहां की बाड़ी अच्छी थी और भजनभावमें तेजी थी।

श्री. नन्दुचन्द अब वहां रहने आ गये थे। सावजी की पदवी से आप पहचाने जाते हैं। आप एक चुस्त सनातनी

उसको स्वर्ग को पहुंचा देते हैं। परन्तु जिन्होंने कष्टमय स्थिति में आपत्तियोंका मुकाबला करते हुए अपने पसीने की सारी कमाई—बाप दादाकी नहीं—धर्मकार्यमे लगा दी, उनको हम कहां पहुंचावें ? उनके लिये स्वर्गसे भी ऊपर वैकुंठ ही एक स्थान है।

जरा विस्तारसे इस लिये लिखा है कि, देशकाल के अनुसार वरतनेसे निज गौरव के साथ अपने धर्म जातिकी सेवा भी कैसी हो सकती है, यह उचित रीति से समझमे आजाय।

लकीर के फकीर बनने वालोंसे समाजको क्या लाभ पहुंच सकता है ?

भारत से आये हुए श्री. कुंवर महाराज सिंह वालीजे तो क्या जन्म से ही वह ईसाई थे; परन्तु वेद मंत्रों द्वारा हमारे आचार्यों ने--आर्यसमाजी और सनातनी—उनकी विदायगी के अवसर पर उनपर फूल चढाये थे। कारण यह कि, भारतियों के आप हितैषी थे।

मंदिर २५ फूट ऊंचा है, अन्दर एक ही शिव लिंग है। एक पुजारी भी है। त्यौहार कभीर मनाये जाते हैं। मृत्युके समय गोकुला जी की उम्र ६४ सालकी थी। समीप के खेतमे उनके भस्मीभूत देह पर एक छोटीसी मढी बनी हुई है, जिसपर उनका मृत्यु लेख भी खुदा हुआ है। उसको सुस्थिति मे रखने की आवश्यक्ता है। उनके वंशज अथवा अन्य पूर्वज प्रेमी धनवानोंको चाहिये कि, वे उस पर ध्यान दे।

# द्रौपदी आम्मेन।

## तेररूज।

मोरिशसमें यह तामिल मंदिर सबसे प्राचीन है। लगभग ८० वर्ष पूर्वका यह बना हुआ है। रोजहिल निवासी डाक्टर सीनातांम्बूके दादा स्व० व्यंगटासा मंनातांबू चेटियारने उस की निर्मिति की थी। उन दिनों पोर्ट लुइसके आप एक बड़े व्यापारी थे। मंदिर बनाकर उसकी व्यवस्थाके लिये आपने १०–१२ बीघा भूमि भी मंदिरके लिये प्रदान की थी। पहिले यहां अग्निचलनका उत्सव बड़े जोर शोरसे हुआ करता था। द्रौपदी आम्मेनकी रथ यात्रा निकलती थी। रथके पय्ये अभी तक मंदिरके अहातेमें पड़े हुए हैं। ये इतने बड़े हैं कि, एक आदमी उसको उठा नहीं सकता है। उस समय पूजा, उत्सव आदि असल मद्राजी रिवाजके अनुसार होता था और लोग बहुत खर्च करते थे। रथ यात्रामें देवदासियोंका नाच होता था। ये देवदासियां भारतसे लायी जाती थी और उनके लिये बहुत व्यय करना पड़ता था। लोगोंमें कितनी श्रद्धा और उत्साह था, उसका इस बातसे पता लगता है। पांच दस सालके बाद ही पोर्ट लुइस शहरमें मीनाक्षी आम्मेनका मंदिर बना। तबसे शहर निवासियोंको वह समीप होनेसे लोग वहीं जुटने लगे और द्रौपदी आम्मेन प्रति उत्साह कम हुआ। तेररूजके मद्राजियोंकी आबादी भी कम हुई। कहते है कि, वहांकी मूर्ति शहरके मीनाक्षी मंदिरमें लायी गई है। उत्सवोंके दिन ही मंदिर पर लोगोंकी जरा भीड़ रहती थी। दान दी हुई जमीनसे भी कुछ

इसी साल में श्री. नंदुचन्द्र सावजी ने लगभग ३,००० रु० मोरिशसके कतिपय मंदिरोंको स्वेच्छा से प्रदान किया है और उपरोक्त तेररूज शिवालय के निर्वाह का एक दस्तावेज द्वारा पक्का प्रबंध कर रखा है।

---

## देवल—
## मोंगु—पांप्लेमुस।

एक ऊंचे चबूतरे पर यह बना हुआ है। स्व० श्री. नन्दलाल चोवा सिंह ने अपना पैसा तथा चन्दे द्वारा मंदिरको सन् १६२२ में निर्माण किया और खूब जोर शोरसे उसे चलाया. कुछ दिन बाद उन्होंने उस भूमि पर महाजनसे पैसा निकाला। उनके भाग्य ने पलटा खाया, फ़िर मुकदमा चला और काम बिगड़ा। देवलमें शिवलिंग आदि कोई मूर्त्ति नहीं है।

कहते हैं कि, जल चढाना अथवा और कुछ करना हो तो उस समय के लिये कुछ रख कर काम चला लेते हैं। हाल ही मे एक सोसाइटी द्वारा इस स्थानका जीर्णोद्धार करने के लिये मोरिशसकी हिंदू जनताको अपील हुई है। इस संस्थाका नाम 'शिवशंकरनाथ सोसाइटी' है, जो साल १६३२ में राजमान्य संस्था घोषित हुई है। इसके प्रधान श्री. आर० चोवा सिंह तथा मंत्री श्री. बृजमोहन सिंह जी है। व्यवस्थापक पं० बालकराय पांडे जी है और उनकी सलाह से कार्य होता है। अब कुछ

# नीलकंठ शिवालय

## मोताई लोंग।

मंदिरकी नींव साल १६२४ में डाली गई और पांच वर्ष के उपरान्त वह बनकर तैयार हुआ। मंदिर बहुत ऊंचा नहीं पर ऊपरका गुंबज विशाल है। वहांके प्रसिद्ध जमींदार श्री. प्राणपत चौधरीजीने अपनी एक एकड भूमि दान की तथा ऊपरसे सामान, पैसा आदिमें ३,००० रुपया और प्रदान किया श्री. प्राणपतजीने बेरिस्टर मणिलालजीकी कैसी सहायता की थी, यह हमारे पाठक जानते ही होंगे।

श्री. श्री. मंगर भगत तथा स्व० रामलगन महतोंने प्रति एक हजार रुपया दिया हैं। स्व० पं० रामचरित्र पांडे जीने १,५०० रुपया दान किया है। श्री. घूरनसिंह एम० बी० ई० का भी १०० रुपया है। और भी ऐसी ही छोटी मोटी रकमों से मंदिरकी सृष्टि हुई। लगभग १३,००० रुपया उसमें लगा है और यह सब पैसा वहींका है।

तारीख १०. २. १६२६ को पं० पं० दौलतराम, अमर, राधाकृष्ण अंबी आदियोंके हाथसे बडे जुलुस द्वारा समारोहके साथ शिवजीकी मंदिरमें प्राणप्रतिष्ठा हुई। भारतके विद्वान पं० रामगोविन्द शास्त्री भी सम्मिलित थे। मंदिरमें और भी मूर्तियां हैं। स्व० रामचरित्र पांडेजीके निरिक्षणमे मंदिर बना है। उनके पश्चात उनके पुत्र पं० दामोदरजी देख भाल करते रहे। अब दो तीन सालमें पं. बोलाराम प्रधानकी हैसियतसे कार्य करते हैं. पूजा आरती नित्य हुआ करती है और त्योहार भी मनाए

लक्ष्मी नारायण, काली तथा हनुमान गढ़ी आदि उपमंदिर भी सजीवनलाल महाराजके ही बनाए हुए है.

इन मंदिरोंके इस आदि पुरुषका वृत्तांत यहां संक्षेपसे देना हमारे विचारमें अनुचित न होगा। उनका जन्म भारतके ओरिसा प्रांतमें हुआ था। युवावस्थामें अपनी भाग्य परीक्षा करने के हेतुसे वह मोरिशसमें पधारे। कुछ साल सरकारी 'पब्लीक वर्क्स डिपार्टमेण्ट' के रास्ता विभागमें काम किया। गिरमिटिया अवधि समाप्त होनेपर वह स्वतंत्रता पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने लगे। वे ब्राह्मण कुलोत्पन्न थे। ५०-६० साल पहिले यहां ब्रह्मणोंकी बहुत कमी थी। और उनके प्रति लोगोंकी बड़ी श्रद्धा रहती थी। पंडिताईमें उन्हें अच्छी कमाई होती थी। एक ब्रह्मण एक रातमें कारियोलमें चढकर दो तीन स्थानोंपर कथा बांच लेता था। ब्राह्मणोंमेंसे बहुत धनाढ्य जमींदार तो थे ही, पर एक दो चीनीका कारखाना भी चलाते थे। परन्तु सजीवनलालने पंडिताईके पेशेको पसंद नही किया और अपनी जीविकाका एक नया ही पेशा ढूंढ निकाला। वे दलाली भी जानते थे। पैसा आने लगा। धनतृष्णाके साथ उनकी पुरुषार्थ की लालसा भी बढ़ने लगी। दैव योगसे उस समयके धनाढ्य लांगुलवा साहबसे उनका परिचय हुआ। वियोलेमें उनकी कोठी (चीनीका कारखाना) थी। उसको उन्होंने तोड दिया था और गन्ने आदिकी सारी जमीन वे बेचना चाहते थे। सजीवनलाल महाराज एक व्यवसाय चतुर और साहसिक पुरुष थे। उत्तम खेती मध्यम व्यापार इस कहावतसे प्रेरित होकर हिम्मत करके उन्होंने अपना सारा धन लगाकर

हैं। मोरिशसमें आ कर ५३ वर्ष हो जाने पर भी आप ने अपना लम्बा कोट (पाजतों) अबतक नहीं छोड़ा है। अपने ज्येष्ठ पुत्रकी प्रेत-यात्रा मे उन्होंने भूख निवारणार्थ अथवा गरीब गु- रुआओं को दान दे कर तद्द्वारा पाप क्षालनार्थ, तांबा चांदी की न्यौछावर की थी। लगभग ४० वर्षसे उपरोक्त देवस्थानसे उनका संबंध है। मंदिर, सभा, सोसायटी, ब्राह्मण आदि को उनसे हमेशा सहायता मिला करती है. श्री. लक्ष्मीप्रसाद नंदुचंद, जो कि एक सुशील वकील (Attorney) है, आपके एकलौते पुत्र है।

१९१४ मे शिवालयके लिये एक चन्दा हुआ था, जिसमें ज्योतिर्विद् पं० रणछोडलाल शास्त्री ने अपनी भागवतकी आ- धी आय दे दी थी। कहते हैं कि, इकट्ठा किया हुआ चंदा तथा सामग्री (लकड़ी, सीमेंट, चूना आदि) कोई पहलवान म- हाराज के हाथ सौंप दी थी। पर वह मंदिर तक पहुंच न- हीं सकी।

चारपांच साल बाद फिर स्व० देशी पं० कन्हैयालाल तथा श्री. नन्दुचन्द के परिश्रमसे सार्वत्रिक चंदा द्वारा करीब दो हजार रुपया एकत्र हुआ और वहीं और एक देवल खड़ा किया तथा एक छो- टा सा मंडप भी बनाया। अब शिवजी पर उचित रीति से जल चढ़ता है तथा समय२ पर उत्सव भी होते हैं। पुजारी को कोई वेतन नहीं मिलता। मासिक दस सपट भी लोग देना नहीं चाहते! आबादी भी अब घट गई है। तेल-बत्ती, कपूर आदि दैनिक खर्च साबजी किया करते हैं और विशेष प्रसंगों पर भी उनसे सहायता पहुंचती है. आरंभसे लेकर आज दिन तक ७-८ ह- जार रुपया मंदिरो मे अवश्य ही लगा होगा।

धनसे उपरोक्त शिवालय तथा अन्य उपमन्दिरों को उन्होंने निर्माण किया। उनके बनाने में तीन साल लगे हैं। सन १८६५ में याने ठीक ४० वर्ष पूर्व मंदिरमें शिवलिंग की प्राणप्रतिष्ठा हुई थी। टापूके अनेक ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि समस्त वर्णों के लोग उपस्थित थे। पंडित दौलतराम चतुर्वेदी आचार्य थे। सजीवनलालजी ने आचार्य को दक्षिणा मे दो बीघा जमीन, ५०० रुपया नकद, एक घोडा, एक बग्घी, एक गौ और वस्त्र आदि दिये थे। अन्यान्य ब्राम्हणों का भी सत्कार हुआ था।

मोरिशसमें उस समय और भी धनपात्र हिन्दू थे; पर वशिष्ठ ऋषि के समान अपने ब्रम्ह तेजसे शिवालय रूपी कामधेनु की सृष्टि करने वाले सजीवनलाल महाराज एक ही थे।

रामलीला और रासलीला के वह बडे शौकीन थे और उनपर सैकड़ों रुपया प्रति वर्ष खर्च करते थे। पं० दौलतराम जी भी उनमें बडे चाव से भाग लेते थे। आजकल उन उत्सवोंका लोप सा हो गया है। सजीवनलालजी की उदारता उन दिनों मशहूर थी। गिरमिटमें आये हुए ब्राम्हणोंको छुडा कर उनको अपने पास रख लेते थे अथवा किसी काम में लगा देते थे। उनकी पाकशाला में पूडी हमेशा छानी जाती थी और अतिथियों को सुग्रास भोजन मिलता था, यह तो बिना कहे ही हमारे पाठक समझ लेंगे।

जिस स्थान पर मंदिर खडा है, वहीं टूटे हुए शकर के कारखाने का ऊंचा धूम्र द्वार ( लछमनिया ) था। पंडितजी ने
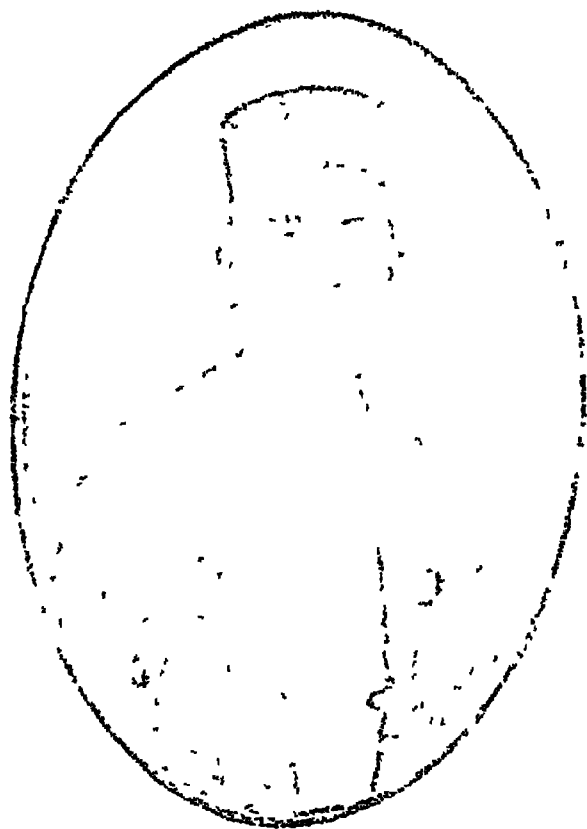
Mr. Nathoobhai K. Desai. Merchant and President of the Hindoo Cremation Society

पत्नी भी समीप ही चिर निद्रामे स्थित है हमारे विचारमे उनके स्मारकके रूपमे उनकी समाधि बांधना अनुचित नहीं होगा।

सजीवनलाल महाराज की मृत्युके बाद मंदिरके कारोबारमें शिथिलता होने लगी और विवाद भी उठ खड़ा हुआ। मंदिर का मालिक कौन, यही पहला प्रश्न था। कोई कागज पत्र नहीं था. इस दशामे चार पांच साल निकल गए. स्व० बाबू रामरत्नासिंहने कुछ दिन देख भाल की थी. तब स्व० शिवप्रसाद रामलाल तिवारीके उद्योगसे तथा स्व० नन्दुलाल लाला वकील और स्व० जाक लेबिये नोटरी के सहयोगसे 'महेश्वरनाथ इन्स्टिट्यूट नामकी एक संस्था मंदिरके संचलनके लिये सन १९११ मे सरकारी नियमानुसार स्थापित हुई। इस संस्था की स्थापनाके पूर्व मन्दिरपर एक वृहती सभा हुई थी, जिसमे बेरिस्टर मणिलालजी तथा अन्य मान्य गण उपस्थित थे.

पहिले प्रधान रामलालजी ही थे और वे (life president) अर्थात जीवन पर्यंतके थे। मंदिर और उसकी जायदादका प्रबंध इस संस्थाके द्वारा अब उचित ढंगसे होने लगा और सजीवनलालजीकी इच्छाके अनुकूल शिवालय सदैवके लिये हिन्दू जनताका हो गया।

रामलालजी एक बुद्धिमान, उत्साही, स्वाभिमानी और उद्योगी पुरुष थे। ब्राह्मण जातिका उन्हे बडा गर्व रहता था। हिन्दू धर्मपर की हुई टीका टिप्पणी को वह सहन नहीं कर

रुपया जमा हो गया है और अल्पावधि में मंदिर सुस्थिति को प्राप्त कर लेगा।

श्री. श्री. रघुवीर राउत, फाजचन अजियाग, रामबरन गुलजार, शि. रंगमोहन पांडे, प्रयाग चोधरी, क० थाजापा प्रभृतियों से अच्छा सहयोग मिलता है। एक हिन्दी पाठशाला चल रही है और यही उनका एक उत्तम कार्य है।

---

## महेश्वरनाथ—
### त्रिओले।

यह सुप्रसिद्ध मंदिर ४०वर्षपूर्व बना है उसके जनक देशी पंडित स्व० सजीवनलाल महाराज थे। कलकतिया हिंदुओंका इतना प्राचीन, ऊंचा और भव्य शिवालय मोरिशस मे यह पहला और एक ही है। एक लंबे चौडे, ऊंचे चबूतरे पर यह खडा है। कुछ सीढ़ियां चढ़ कर मंदिरमे जाना होता है। सारा काम पत्थर, रेती, चूना, सीमेण्ट और लोहे का है। गुम्बज परके त्रिशूल तक उसकी उंचाई ६० फीट के करीब है। मंदिर के मध्य में शिवलिंग विराजमान है और सामने नंदी है। चौकोनों में गणपति, भैरव, षडानन, और पार्वतीकी मूर्तियां हैं। मंदिर मे खडे हो कर ऊपर की ओर ताको तो गुम्बजके भीतरका नील रंगी छत देख कर यही प्रतीत होता है कि, मानों निरभ्र आकाश ही छाते के रूप मे शिवजी पर सदैव के लिये खडा है। आबादीसे किंचित् दूर नैमिष अरण्य जैसे एकान्त स्थल मे ऋषि के आश्रम के समान यह शिवालय प्रतीत होता है। राधाकृष्ण,

Mr Coomarsamy Mardaynaigum, president of the O M P G T Sadhoo Sangum at prayer in his Temple

४० रुपया एकड़के हिसाबसे लगभग १५० एकड भूमि उपरोक्त साहबसे खरीद ली और धीरे२ दूने और उससे भी अधिक दाममें उसको बेच दिया। इसीको यहां "मोरसेममां" याने खंड पद्धति कहते हैं। इस व्यापारमें उनको उनकी अपेक्षासे बहुत अधिक लाभ हुआ। वह चाहते तो उसी पैसेसे एकाध दूसरी कोठी खरीद करके कोठीवालोंकी नामावलीमें अवश्य ही विराजमान हो जाते। पर " अति तृष्णा न कर्तव्या " इस सुभाषितको ध्यानमें रखकर उन्होंने वहीं लगाम खींचा। लक्ष्मी चंचल है और इस चोलेका भरोसा नहीं है, इसलिये कुछ कीर्ति करते मरो इस विचारसे उस धर्मशील पुरुषका हृदय भर उठा. परिणाममें वियोले कोठीकी जमीनके व्यवहार मे मिले हुए धनको ईश्वरकी कृपा मानकर वह सारा पैसा उन्होंने शिवजीके चरणोंमे अर्पण कर दिया और मोरिशसकी हिन्दू जनताके धार्मिक इतिहास में अपना नाम अजरामर कर रखा.

मोरिशसमे उस समय कलकतियाओं का कोई भी सुयोग्य मंदिर नहीं था. पन्द्रह या बीस फीट ऊंचा, गुम्बजके आकार एक कमरा बनाकर उसमें किसी मूर्तिको स्थापना करके अपनी धर्मक्षुधाकी शान्ति करनेके स्थान कहीं२ देखनेमें आते थे। परन्तु हिन्दू जाति और हिन्दू धर्मके गौरवका साक्षी देनेवाला शिवालय, सजीवनलालके समय तक कोई नहीं था। आपने मंदिर के खर्चके लिये निजकी दस बीघा जमीन दान देकर उसके योगक्षेमका सदैवके लिये पक्का प्रबंध कर रखा। अपने ही

बिदेसी बराराज, श्री० भवनाथ त्रिफौडी आदि मंदिरकी देख भाल करते थे। सन १६२३ सालके मंदिरके चुनावमें कीरपीपके प्रतिष्ठित रईस बाबू मोहन प्रसादसिंह प्रधान चुने गए और आज दिन तक आप उस पदपर आरूढ है और यह एक बात ही उनकी लोकप्रियताका दर्शक है। फुलवाडी, बैठका, पानी का हौज आदि उपयोगी चीजें उनके समयमें बनी है। जगन्नाथ तथा कालीका एक नया मंदिर बना है। मंदिर आदि व्यय के लिये उनकी एक आयकी निश्चित योजना ठीक प्रकारसे काम दे रही हैं। समस्त मुख्य त्यौहार मनाए जाते हैं। प्रति दिनकी पूजा आदिके लिये एक पुजारी हैं। पाठशालाका प्रबंध हो रहा है। इस समय मंदिर, उपमंदिर, मूर्तियां तथा अन्य मकान आदि समस्त सम्पत्ति लगभग ३०;००० रुपये हैं। पं० दौलतराम, पं० रामखिलावन, श्री. श्री. नंदलाल, ओझा-गौर, चंदनसिंह, धनी महतों, रामउगर पांडे, रामनारायण स-जीवन और पं० पूरन प्रभृतियोंके सहयोगसे मंदिरका प्रबंध होता है।

---

# पिचि राफे के तीन देवल।

## १ ला महावीर स्वामी।

वहा के धनी रईस बाबू हितनारायण सिंह गौरी सिंहजी का निजका बनाया यह स्थान है। इसमें हनुमान जी की भव्य मूर्त्ति धवलगिरि पर्वत को कंधे पर उठा कर वायुवेग से उडान करती स्थिति में खड़ी है। बाबूजी प्रति दिन इसकी पूजा करते हैं।

उसे गिरा दिया और उसी स्थानको मंदिरकी नींव बनाई। इस सम्बन्ध में कानूनका भंग करनेके अभियोग में उनको कुछ दौड़-धूप करनी पड़ी थी। आपने दो तीन बार भारत की यात्रा की थी और हर समय मंदिर के लिये मूर्त्ति आदि कुछ न कुछ ले आते थे।

हिंदू पूजा में संगठन द्वारा सामुदायिक उत्साह उत्पन्न करने के उद्देश्य से उन्होंने ही पहिले पहल परीतलावका जल ला कर शिवरात्रि के दिन शिवजीपर जल चढाने की पृथा जारी की। धीरे २ इस पृथा ने मोरिशसमें ऐसी जड पकड ली कि, यह पर्व विहारी हिन्दुओंका अब एक राष्ट्रीय धार्मिक उत्सव हो गया है। सरकार ने भी शिवरात्रि का महत्व जान कर कलकतिया-ओं के लिये उस दिन की छुट्टी हाल ही में पृदान की है। कुछ समय तक नित्यका पूजा पाठ स्वयं सजीवनलाल जी ही किया करते थे; परन्तु कार्यका व्याप अधिक हो जाने पर पुजारी की नियुक्ति करनी पडी। मंदिरके सामने उन्होंने और एक ऊंचा चबुतरा बना रखा था। उस पर एक छोटासा मंदिर बना कर अपनी काशीनाथ की मूर्त्ति उसमें स्थापन करनेकी उनकी अभिलाषा थी, पर ईश्वरेच्छा कुछ और ही थी। सन १९०७ में ६३ वर्ष की आयुमें उनका स्वर्गवास हुआ। इसके कई साल बाद श्री. आदनाथ चिकौडी ने उनकी वह इच्छा तृप्त की।

इसी पृकार हनुमानगढ़ी पर चढने के लिये श्री. रामधनी सिराज ने एक दूसरी सीढी बनाई. सजीवनलालजी का मृत शरीर मंदिरकी पवित्र भूमि में ही विश्राम करता है. उनकी

# संस्थाओंका इतिहास।

जो संस्थाएं मंदिरोंकी व्यवस्थाके लिये ही बनी हैं, उन का हाल, मंदिरोंके वर्णनमें हमने दिया ही है। इस प्रकरण में मुख्यतः सामाजिक कार्य करनेवाली शेष संस्थाओं का इतिहास दिया है। अधिकतर संस्थाएं पोर्ट लुइस शहरमें हैं और शिक्षा, सुधार, सगठन, स्नेह संवर्द्धन आदिके लिये वे निर्माण हुई हैं। यहां हम यह भी कहना चाहते हैं कि, संस्थाओंका इतिहास देते हुए हमने हमारे विचार भी कहीं२ प्रकट किये हैं।

पं० आत्माराम
ग्रंथकर्त्ता

सकते थे। आरम्भके कतिपय नूतन, ज्वलंत आर्य समाजियों का आप बराबर सामना करते थे। उन संबंधमे उनको कभी न्यायालयका दरवाजा भी खटकाना पडता है। भविष्यपर नजर रखकर उन्होंने "महेश्वरनाथ इन्स्टिट्यूट" के चार्टर (अधिकार पत्र) में यह शर्त रखी है कि, उस सोसायटीका अध्यक्ष सदैवके लिये कोई ब्राह्मण ही होना चाहिये। "ओरियन्टल गाजट" नामक पहला सनातनीय समाचार पत्र निकालकर उन्होंने जाति सेवा की है। सरकारी सेवा निवृत्त होकर ढलती उमरमें उन्होंने वकील पुत्रके पास सीखकर वकीली (Attorney at law) की परीक्षा सन १९१९ मे उत्तीर्ण की पर बाप बेटा अदालत में कभी द्वंद्व युद्ध करते थे या नहीं हम नहीं कह सकते हैं!! त्रियोलेकी "महेश्वरनाथ पाठशाला" उन्हींके यत्नसे बनी है। मोरिशसमे किसानी बंकोंका प्रचार करनेमें आपने अच्छे परिश्रम किये हैं। भारतमे तीर्थ यात्रा करते हुए अपने देहको उन्होंने सन १९२३ में गंगाजीक तटपर समर्पण कर दिया। बहुत थोडे लोग स्व० रामलाल महाराजके नाना विध कार्यको कद्र करते हैं। मोरिशसवासी हिन्दुओंके इतिहासमें उनका नाम घर करके रहेगा। धार्मिक सामाजिक तथा शिक्षा विषयक बातोंमे उस समय आप ही हिन्दुओंके एक मात्र नेता थे। आर्य समाजपर के लेखमें श्री. खेमलालके संबंधमें हमनें जो लिखा है, वहा श्री. रामलालके विषयमें भी लागू हैं। इतना कहनेसे ही उनकी योग्यता का ज्ञान हमारे पाठकोंको हो सकेगा। हम लोग गुणवानके गुणोंकी कदर करना कब सीखेंगे, राम जाने।

उनकी अनुपस्थितिमे स्व० पं० सूरजप्रसाद सुखनन्दन, श्री०

# आर्यसमाज मोरिशस।

अब हम एक ऐसे विषय को छू रहे हैं कि, जिसने पिछले २५-३० वर्षों से अपनी गर्जना और आक्रोश से मोरिशस के हिन्दुओं की धार्मिक एवं सामाजिक भावनाओं को जबरदस्त धक्का दे रखा है। अंतर्जातीय शरीर सम्बन्ध से खानपान, छुआछूत आदि बंधन ढीले तो थे ही; पर उन्हें आपत् धर्म समझ कर लोग लाचारी से अथवा कर्मोंका फर्ज मान कर येन केन प्रकारेण उसमें समाधान पा लेते थे। दूसरा महत्वका हिन्दू धर्मका अंग है, मूर्त्ति पूजा। २५--३० साल पूर्व मोरिशस भरमें सात आठ से अधिक कलकतियाओं के शिवाला नहीं थे। यह स्थिति होने पर भी हिन्दुओं के धार्मिक विचार और भाव मरे नहीं थे। किन्तु समय आते ही वे जागृत हो जाते थे और अपने बच्चों के विवाह में जातिपातीकी खोज तथा गौरी-गनेश का पूजन अवश्य किया करते थे। तमाम उपनिवेशोंमें सर्वत्र कमी अधिक प्रमाण में यही दशा पाई जाती है। परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि, जो मूर्त्ति-पूजा नहीं करता है, अथव जाति बंधन को जिसने तोड दिया है, उसे यदि कहा जाय कि, जाति पातीको नहीं मानों और मूर्त्ति-पूजा न करो, तो वह तुम पर गुस्सा करेगा और तुम्हें बुरा भला कहने लगेगा! ऐसी ही बातोंका आर्यसमाज ने प्रचार किया और इसी वास्ते हिन्दू लोग उससे नाराज हैं। वास्तव में इसमे आश्चर्य की कोई बात नहीं है। क्योंकि रूढ़ियोंके संस्कारसेउनके भाव इतने दृढ़ हो गये हैं कि, चाहे उनका आचरण कैसा धर्मबाह्य क्यों

आर्य समाजके मौलिक सिद्धान्तोंका ज्ञान उस समय किस को था राम जाने ? परन्तु हमारे विचारमें सत्यार्थ प्रकाशके खंडन मंडन की बातें पढ़कर अपने पांडित्यका प्रदर्शन करनेके हेतुसे ही इधर उधर जनेवास, कथा, स्मशान यात्रा, ब्रह्मभोज आदि अवसरोंपर श्राद्ध मूर्ति पूजा वगैरे विषयों पर छेड़खानी हुआ करती थी। कहते हैं कि, पं० जगन्नाथ उन दिनों निज-को सबसे निराला समझकर 'मोदेत' नमस्ते कहकर पंडितोंको ललकारा करते थे! उनको नहीं मालूम था कि, यह सांपका बच्चा एक दिन बिना काटे नहीं छोड़ेगा! पं० जगन्नाथ हुए बड़के बाबाजी, उनको कौन पूछ सकता था ? पर खेमलाल जीकी वैसी बात नहीं थी। वे थे कायस्थ, बाबूजी, बाबाजी उनकी कब सुननेवाले थे ? खेमलालजी भी ऐसे अड़ल टट्टू थे कि, अपनी विद्या विश्वास और सामाजिक दर्जेके बलपर जहां तहां कुछ न कुछ कह ही बैठते थे। उनका उपहास होता था, वह गाली भी सुनते थे और उपद्रव भी सहते थे। इसी विरोधके कारण उनका स्वाभिमान भी जागृत हुआ और अ-धिक जोशसे वे प्रचार करने लगे।

## श्री० खेमलाल लाला

संसारकी सनसनीदार घटनोंके जनक विशेषकर मध्यम वर्ग के मनुष्य ही होते हैं। यह वर्ग, ऊपरके और नीचेके दोनों वर्गों को जोड़नेवाली एक कड़ी है। खेमलालजी उसी वर्गके एक व्यक्ति थे। केवल आर्य समाजकी पुस्तकें पढ़कर वह इतने प्रभावित हो गए थे कि, बड़ो बड़ों का सामना करनेमें वह जरा भी

देवल दस साल पूर्वका बना है और करीब एक हज़ार रुपया उसमें लगा होगा।

---

## २ रा काली स्थान।

यह सार्वत्रिक चन्दे से बना है। उसमें आठ छोटी२ कृष्ण शिलाएँ हैं, जो एक ऊंचे चबुतरे पर बिठाई हैं। बाबू हित-नारायण सिंह की अच्छी सहायता हुई है।

---

## ३ रा शिवालय।

यह करीब १५--२० फ़ीट ऊंचा है। सीमेण्ट और शिला का वह बना है। स्व० देशी पंडित रामचन्द्र तिवारी जी के उद्योगसे सन् १६११मे उसकी सृष्टि हुई है। मंदिरकी अपनी आधा बीघा भूमि है। उसके मालिक श्री. गोकुल सिंह ने वह भूमि मंदिरको अर्पण की है। पुजारी द्वारा प्रति दिन पूजा होती है। उत्सवों पर व्याख्यान, भजन, उपदेश आदि के लिये एक पक्का मण्डप अब बन गया है। श्री. हितनारायण सिंह शिवाला के प्रधान है और उनकी सलाह, सहायता से शिवाला की व्यवस्था होती है।

हुए उन्होंने लगभग २० साल तक प्रचंड हिन्दू समाज का मुकाबिला किया है। वही कठोर तपस्या है. उनकी इस तपस्याने औरोंको प्रभावित किया और इस समयके लोगोंको समाजकी ओर झुकाया। इस तपस्वीका किसी ईसाई कुलमे जन्म होता तो वह एक दिन अवश्य ही साधु (से) पदवीको प्राप्त कर लेता। यदि आर्य कच्चे दिलके होते तथा औरोंके सदृश्य पीठ घुमा देते तो कदाचित आर्य समाजकी विद्यमान प्रगतिमें जरा विलंब ही लगता। देखना चाहिये आर्य समाज उनका स्मारक किस तरह करेगा? इस समय तो उनका चित्र भी हम कहीं नहीं देखते हैं।

सन १६०५ में स्व. वकील रामलालके यहां एक कथा थी। खेमलालजीने वहीं शास्त्रार्थ छेड दिया। वहांपर पंडितों का अड्डा था। बाबूजी लोग मूंछपर ताव देते रहते थे। लेकिन कुछ परवाह नहीं। उनकी दृढताके कारण उनको अब साथी मिलने लग गए थे और समाजकी चर्चा टापूमें अन्यान्य स्थानोंपर फैलने लगी थी। 'सनातन धर्मके' के संपादक श्री. नरसिंहदास का उन दिनों शहरमें एक भोजनालय था। उसीमे स्व० स्व० रामजीलाल, केरसिंह, सीतल प्रसादसिंह, नागेपर मिसर तथा श्री. गुरुप्रसाद दलजीत प्रभृति जनोंने एक मंडली बांधकर वे सभा आदि करने लगे। बाहरी उद्देश्य हिन्दी पढाईका था। वहां केवल बातें होती थीं। पर उसने गडबड़ी मचा दी थी। व्यापारी भी जाग उठे। स्व० बिहारी महाराजने सत्यार्थ प्रकाश की कुछ प्रतियां मंगाकर अपनी दूकानमें रखी थीं और वहीं सड़ रही थी।

न हो, अपनी परम्परा के विरुद्ध वह बिलकुल सुनना नहीं चाहता है। मैं पतित हूं; पर मेरा धर्म ऊंचा है, यही सर्वसाधारणकी भावना रहती है। एक मुसलमान कितना ही धर्मभ्रष्ट क्यों न हो कुरान उनके लिये पूज्य ही है और महमद उसका प्यारा है। यही मनोवृत्ति एक हिन्दू की भी है।

## कुछ पुरानी बातें।

आज से ३८ वर्ष पूर्व याने सन् १८९७ मे मोरिशसमे एक हिंदू पलटन का निवास था। जिसमे सब पुर्विया ब्राम्हण थे। हवलदार भोलानाथ तिवारी आर्यसमाजके विचारों के मनुष्य थे। उनके पास कुछ सामाजिक पुस्तके भी थीं। यहा से चले जाते समय उनके एक मित्र वाकुआके स्वर्गीय पं० रामप्रसाद ओझा को उन्होंने वह पुस्तके दे दी। पश्चात् स्व० पं० मेघवर्ण के पास वह पुस्तके चली आई। मोरिशसमे आर्यसमाज के आद्य प्रवर्तक स्व० श्री. खेमलाल लाला (तोता लाला) का भी वाकुआ में उपरोक्त हवलदार से सत्संग हुआ करता था।

छः साल बाद अर्थात १९०३ मे आर्यसमाजी पं० रामफल शर्मा का भारत से यहां आगमन हुआ था। उन दिनोंके ब्राम्हण आर्यसमाजी, हिन्दुओं से पृथक नहीं रहते थे। अपनी दक्षिणा का दावा वे बराबर करते थे। (पं० कन्हैयालाल मिश्र के समान) पंडितजी ने अपना साहित्य पं० जगन्नाथ को दे दिया और आप यहां से रवाना हुए। तेररूज के श्री नन्दुचंद उनके अच्छे मित्र थे।

पुत्र औरों के समान नौकरी ढूंढ़ता है, खेती करता है, कपड़ा सीता है, मोटर हांकता है, भजिया बेचता है और झिंगा भी पकड़ता है। कितने ब्राह्मणों ने अपने बेटोंको वेदाभ्यास के लिये भारत भेजा है? यही दशा अन्य जातियोंकी है। अर्थात जब परम्परा नहीं तब धर्म कहां से? केवल नाम रह गया और इसी अर्थशून्य नामके वास्ते हिन्दू लोग वंध्या परिश्रम कर रहे हैं।

पढाना शेक्सपीयर और बनाना व्यासके समान; हिन्दुओंकी स्थिति हो गई है। स्व० रामलाल जी, हिन्दू धर्म-गुणगान खूब करते थे; पर सुधार या परिवर्तन का नाम नहीं लेते थे। उन-की परम्परा, हिन्दू नेता आज दिन तक, बराबर चलाते आये हैं। और, इनके 'ओरियण्टल गाजेट' की नीति आजके 'सनातन धर्मार्क' ने पकड़ी है। उन दोनों को सफलता न प्राप्त होने के कारण यही कि, उन्होंने मरी परम्परा को जीवित करना चाहा और परिस्थितिका बिलकुल विचार नहीं किया। जो हो रामलालजी ने अपना विश्वास और विचार के अनुसार, जो हिंदू धर्मकी सेवा की है, वह इतिहासमें दर्ज रहेगी।

सन १९०७ में ही बेरिष्टर मणिलालजी का यहां आगमन हुआ। हिन्दुओं के लिये 'हिन्दू बेरिष्टर' एक अपूर्व वस्तु थी। लोग कुतूहल से उन्हें देखने आते थे। आते ही उन्होंने लोगों को देश जाति का गर्व करनेका पाठ देना शुरू किया। 'हि-न्दुस्थानी' समाचार-पत्र आपने १९०८ में निकाल कर मोरिशस

नहीं झिचकते थे। न उनके पास मनुष्य बल ही था। न धन बल ही तनहा अकेले मैदानमें उत्तर आते थे। एक ही घटना उनकी वीर मनोवृत्तिपर प्रकाश डाल देती है ३१ वर्ष की बात है। उनके पिता श्री. गोराचन्द लालाका षोड्शी श्राद्ध था। क्रिपीपमें नदी किनारे यह विधि हो रही थी, जो कि हिन्दू धर्मानुसार था। स्व० रामटहल जैसे सर्वमान्य पंडित और स्व० श्री. फकीरसिंह गजाधर जैसे प्रतिष्ठित मनुष्य उस मे उपस्थित थे। नदीके उस पार खडे होकर खेमलालजी पिण्ड तर्पण देख रहे थे; परन्तु हजार कहनेपर भी न तो वह उसमें शामिल हुए न उन्होंने मूंछ ही मुडाई!! किन्तु घूरो घूरी आंखोंसे बाबाजीको ताका करते थे और बुरी भली गुनगुनाते वहीं डटे रहे थे।

पितृ प्रेम, पितृ श्रद्धा, लोक लज्जा, बड़ोंकी इज्जत, प्रिय जनोंका अदब, बाबाजीकी मान मर्यादा आदि समस्त रूढ तथा मान्य बातोंको, केवल अपने विश्वासोंके साथ ईमानदार रहनेके लिये उन्होंने ठुकरा दिया था। यह एक साधारण घटना नहीं है। सारा हिन्दू जगत एक तरफ और मर्द खेमलाल अकेला दूसरी तरफ। मोरिशसके वह एक अभिमन्यु ही थे। कूपूत, नीच, बेईमान आदि चुनी चुनाई गालिया, सर्वत्र छी थू और धिक्कारकी आवाजके सिवाय उनको और क्या सुनाई देता होगा? उनके मित्र और साथियोंने धीरे धीरे कदम हटाये। परन्तु खेम-लालजी अन्तिम समय तक मैदानसे खसे नहीं और हिन्दू समाजके साथ लडते भिड़ते एक योद्धाके समान उनकी मृत्यु हुई। दुनियाकी लानत, अपमान, निन्दा, उपद्रव और कष्ट सहते

तौरपर ठट्ठाके एक प्रकारका हम यहां उल्लेख करते हैं। रोज-हिलमें पंजाबी वार्डर सहीरामका एक धोबीकी कन्याके साथ आ० समाजकी पद्धतिसे विवाह हुआ। सिपाहियोंकी बरियात में किसकी मजाल थी कि, कोई उपद्रव मचावें। परन्तु विवाहने भारी हलचल मचा दी। लोग तो कुछ नहीं कर सके; पर आ० समाजियोंकी हँसी करके वह अपना दिल ठण्डा कर लेते थे। उन दिनों नचनियोंके नाचकी प्रथा जोरमें थी। उक्त विवाहपर एक गाना बनाकर मजलिसको खूब हँसा देते थे। गाना यह है।

"सुन भाई अरिया कैसन पंथ निकल लेवा,
छत्रीके बेटा धोवीकी बेटी, दोनोंके सादी करव लेवा।
जूता पहनके चौकामें जाके कुण्येरसे होम करवलेवा,
सुन भाई अरिया।

इसपर खूब दौनतजादा होना था और खूब गम्मत होती थी। ऐसी मशखरीसे समाजको कितनी हानि पहुंची होगी, हम नहीं कह सकते; पर उन नचनियों द्वारा आ० समाजके विचारोंका प्रचार अवश्य ही हुआ होगा। पहले चार पांच साल आ० समाजकी बागडोर सिपाही पेशेवालोंके हाथमें होने से अत्याचार न हो सके और आ० समाजके प्रचारमें कोई उतनी बाधा नहीं होती थी, इस बातको विशेष रूपसे ध्यानमें रखना चाहिये।

श्री० मणिलालजीकी अनुमतिसे सन १९१२ के आरम्भ में स्व० डा० भारद्वाज और श्री० मंगलानन्द पुरी भारतसे
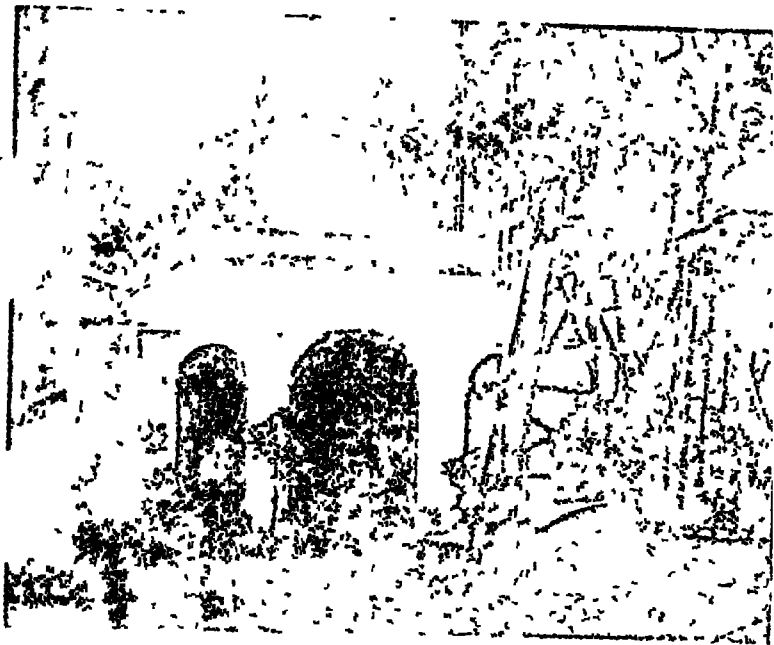
Droupadee Ammen temple of Mare d' Albert

स्व० माधोलाल हरिबंस और श्री. बी. सीसन (अब नोदेरी) सामाजिक कामकाज को अब लेखबद्ध रीति से नियम पूर्वक कर रहे थे। वाकुआ के स्व० रामेसर पनारू, भोला माप्टर तथा श्री. मोती माष्टर प्रभृति महाशयोंका अब समाज में प्रवेश हो चुका था। डाक्टर जी संस्कृत के ज्ञाता थे और जाति से ब्राम्हण होने से हिन्दुओं पर उनका स्वभाविक प्रभाव पड जाता था। उनकी पत्नी भी सभा मे भाषण करती थी, जो कि यहा के वास्ते एक अद्भुत बात थी।

उस समय के स्त्रियों के कामका भी संक्षिप्त उल्लेख करना यहा अनुचित नहीं होगा। सन १६१२ के अन्त मे महात्मा गांधी का सत्याग्रह दक्षिण अफ्रिका मे बडे जोर में था। उस समय भारतके सर्वश्रेष्ठ नेता स्व० माननीय गोपालकृष्ण गोखले ने सत्याग्रही लोगों के वास्ते हिन्दुस्थान और उपनिवेशों के हिन्दुस्थानियो से आर्थिक सहायता की अपील की थी। लेखक की मेहनत से शहरके थियेटरमे सार्वजनिक सभा में १२०० रु० इकट्ठा हुआ था. श्री रामजीलालजीकी पत्नी दुलारी देवी, बाबू गयासिंहकी प्रथम पत्नी भाग्यवती देवी तथा श्री. नारायण दिलजोरकी पत्नी सीता देवी प्रभृतियोंके परिश्रमसे शहरकी हिन्दू स्त्रियोंसे २००रु० जमा हुआ था. यह सारी रकम श्री. गोखले जीके नाम भारत भेज दी गई थी। भाग्यवती और दुलारी देवी प्रचार कार्यमे भाग लेती थी। स्व० डा० भारद्वाज की पत्नीका उदाहरण उनके सामने था।

डाक्टर जी ने अपनी कडी टीका और तीव्र बचनों से

भावी संकटको पहचानने वाले स्व० रामलालजी तिवारी ने उदयोन्मुख आर्य समाज के विरुद्ध कमर कसी और सन १९०७ में एक बृहती सभा बुलाकर उसमें सनातन धर्मकी खूब पुष्टि की। सभामें व्याख्यान द्वारा धर्म प्रचारका वह नया ही ढंग था। स्व० फकीरासिंह जैसे मनुष्य उसमें उपस्थित थे। लोग पूछने लगे कि, आर्य समाज क्या चीज है और वह कहां है? सत्यार्थ प्रकाशकी प्रतियां बिक गईं! कुछ साल बाद आर्योंका बढ़ता प्रचार देखकर उनकी आर्य पत्रिकाके मुकाबिलेमें रामलालजीने 'ओरियएटल गाजेट' सन १९१२ में निकाला और सब प्रकारसे वह १५ वर्ष तक आर्य समाजके साथ बराबर टकराते रहे थे। आप पुलीस विभागमें काम करते थे, जिस से उनका विरोध पीछे रह कर होता था। उनके जैसे स्वाभिमानी दस पांच सनातनी प्रतिष्ठित मनुष्य उनके साथ सहयोग देते तो शायद आर्य समाजी बालकको दूध मिलना जरा कठिन ही हो जाता!

बाप दादोंने जैसा किया वैसा ही बेटेको करना इसका नाम हो गया है, हिन्दू धर्म। इसका अर्थ है अपरिवर्तनता। देश कालके अनुसार आचारोंमें हेर फेर, विधर्मियोंके आक्रमणसे बचाव, दिन प्रति दिन घटती हुई हिन्दुओंकी संख्याके कारणोंकी चिकित्सा, स्वधर्मकी रक्षा (वृद्धिका तो नाम ही नहीं लो) आदि विषयोंपर हिन्दू पंडित या नेता कभी विचार नहीं करते हैं। परम्पराका पालन करते रहना यही यदि धर्मका लक्षण हो तो चलो वही सही। परन्तु वह भी नहीं है. पढना पढाना (वेदादि) ब्राह्मणोंका कर्त्तव्य है. पर हम देखते हैं कि, ब्राह्मण

Mr R. Shahajada of Bon accueil, a self-sacrificing worker of A P Sabha.

में खलबली पैदा कर दी । सरकार और गोरों के कान खड़े हुए । अन्यान्य संस्थाओंकी आप ने स्थापना की । आप संस्कृतज्ञ थे, जिससे ब्राह्मणोंपर भी उनका सिक्का जम गया था । आ-र्यसमाजियों ने भी उन्हें घेरा । समाज-सुधार के आप कट्टर भक्त होनेके कारण हिन्दुओंकी अपेक्षा ये लोग उन्हें अधिक प्रिय थे । बेरिस्टर जैसा सर्वमान्य विद्वान मददगार मिलते ही आ-र्यसमाजी लोग विश्वास पूर्वक और भी वेग से दौड़ने लगे । बेरिष्टर के नाम के प्रभाव से समाज के अनुयायी भी बढ़ने लगे । उनके घरके एक कमरे में ही उनकी बैठकें होने लगी । पहले उपदेशक पं० जगन्नाथ थे । सन १९०९ मे सब मसला तैयार होकर १९१० मे विधि पूर्वक प्रधान खेमलाल और मंत्री गु-रुजीत लाल आदियों की नियुक्तिके साथ आर्यसमाज की पो-र्टलुइस में पूर्ण प्रतिष्ठा हुई । कहते हैं, उसमें १७ मनुष्य थे । श्री. मणिलालजीका उस पर कृपा छत्र था । स्व० रामजीलाल और स्व० केरसिंह आदि अब निडरता से कदम उठाते थे । कुछ समय बाद श्री. गयासिंह भी आ मिले. श्री. श्री. पंचुप्रसाद. दुर्गाप्रसाद भगत भी उसमे शामिल हुए. आ० समाजका व्याप इस प्रकार धीरे २ वृद्धिगत होता जाता था.

आर्यसमाज की स्थापनाके बाद कुछ दिन तक "गरीबकी जोरू सबकी भाबी" के समान उसकी दशा रही है । कोई भी उसकी पूंछी पकड़ कर खींचता था । लोगों के उपहास का वह एक विषय हो गया था ।

भरी मजलिस मे उसकी दिल्लगी उड़ाते थे । उदाहरणके

कर रहे थे।

सन १६१६ में पं० काशीनाथ जो कि सन १६११ में अध्ययन के लिये भारत गये हुए थे, वापस आये और आ. समाज के प्रधान उपदेशक नियत हुए। अब तक आर्यसमाज की शाखाएं आठ दस से अधिक नहीं थीं। स्वामी स्वतंत्रानंद और पं० काशीनाथ के उद्योगसे शाखाएं अन्यान्य स्थानोंपर स्थापित होने लगी और बढते कार्य के लिये मकान को बढानेका विचार हुआ। सन १६२० मे सार्वजनिक चन्दा बटोरना आरंभ हुआ और १६२५ मे याने स्वामी दयानंदकी जन्म शताब्दी के अवसर पर दयानंद धर्मशाला के नाम से भवन की परिपूर्त्ति हुई। इस धर्मशाला की निर्मिति मे बाबू गयासिंह (अब पंडित) ने बहुत परिश्रम किया है, मानों कि उनकी गर्दन पर दयानंद ही सवार हुए थे। उन्होंने ५ संट तक लोगों से लिया है; श्री. श्री. चो० सोसग्न, रघुनाथ राय, पं० आत्माराम आदियों ने टापूभर मे चक्कर लगाये है। कुमारी नारायणा किशोर (अब श्रीमती वी० एन० लाला) जो कि मोरिशसकी पहिली सोनियर हिन्दू स्त्री है, उपरोक्त महाशयों के साथ चंदेकी दौड में शामिल थी। हिन्दुओं के लिये यह भी एक नवीन दृश्य था। गौरांग युवतियां प्रति साल कोई विशेष अवसरों पर घर२ घूम कर दस बारह हजार रुपया इकट्ठा कर लाती है, यह हमारे पाठक जानते ही होंगे। क्यों नहीं हम उनका अनुकरण करे? कोम लागीं के सामने कठिनांग कैसे पिघल जाते है, यह हम कब समझेंगे? धर्मशालाकी सृष्टिमे श्री. दुखीगंगा जैसे धनिकों से

यहां पधारे थे। पर उन दोनोंमे बनी नहीं और सन्यासी मंगलानन्द, जो कि एक हंसमुख और मिलनसार तबियतके मनुष्य थे कुछ मास बाद खिन्न चित्तसे भारत लौट गए।

अब तक शास्त्रार्थ या खंडन मंडनमें उतनी लिज्जत नहीं थी। पर डा० भारद्वाजजीका पेशा था चीरफाड़। लल्लुपत्तु, कुचु कुचु उनको पसंद नहीं था। 'मारो काफरोंको' की मनोवृतिके आप थे 'रगड़ो बझनवको' यह उनका महा मंत्र था। स्व० पं० रामअवध जो कि बुद्धिमान और होनहार युवक थे, अब भारतसे लौट आए थे। भारद्वाजजीके साथ आपने कुछ समय तक कार्य किया. कुछ दिन 'हिन्दुस्थानी' समाचार पत्र भी चलाया और उपरान्त वे आ. समाजसे पृथक हुए। कहते हैं कि, पहला सामाजिक हवन लाबुर्दोनेमें हुआ था, बाद रोजहिलमें। इस पुस्तकके लेखकने भी श्री० मणिलालजीके यहा से चले जानेपर एक अवधि तक उक्त समाचारपत्रका संचालन किया था और समाजमे भी लेकचरबाजी की थी। कभीर 'वन्दे मातरम' का राष्ट्रीय गान सुनकर हमे उन दिनोंका स्मरण हो आता है।

पं० पं० जगन्नाथ, बलदेवप्रसाद, मेघवर्ण आदि जो आर्या समाजके प्रचारमें भाग लेते थे, उनका यही विश्वास रहा होगा कि, अपना राज्य यहां भी ऐसा ही रहेगा जैसा कि, हिन्दुओंमें था। परन्तु डा० भारद्वाजके उग्र व्याख्यानोंसे उनका भ्रम दूर हो गया और वे भी आ० समाजसे दूर हो गए!

आया नहीं है। उनके अंग्रेजी व्याख्यानों से ईसाईयों के कान भी जरा खडे हो गये थे। उनके पश्चात् सन् १९२६ में संन्यासी विज्ञानानन्द आर्यसमाज के रंगभूमि पर उतरे। आप निर्लोभी, सादे; पर चाणाक्यनीति के उपासक थे। उनका उत्साह तो भयंकर ही था। असंतुष्ट लोगों ने उनको घेरा और कर्मचारियों पर आक्षेप होने लगा कि, वे आर्यसमाज को निजी सम्पत्ति मान बैठे हैं। पं० काशीनाथ दोषी ठहराये गये और इसी खींचातानी में श्री. श्री. छत्तर मास्टर, मुन्वियन, टलजीत, गयासिंह, प्रभृति आ. समाजके रथी महारथी सभा से पृथक हुए और कुछ समय बाद उन्होंने एक दूसरी संस्था "आर्यप्रतिनिधि सभा" के नाम से निरूपण की। म० गाधीका भारत की राष्ट्र सभा का कब्जा लेने के समान ही यह कार्य था। स्वामी विज्ञानानंद सदीप व्याख्यानोपदेश करते थे। नगरकीर्तन प्रथा उन्होंने ही जारी की। उनके समयमें समाजकी जायदाद भी बढ़ी। आ. समाज की दो पृथक सभा हो जानेके कारण उनपर भारी जवाबदारी आ पडी थी; पर अहर्निश दौडधूप करके उन्होंने उसको अच्छी प्रकार संभाला। सन १९३१ में आपका अस्त हुआ याने आप भारत विदा हुए। पश्चात् भारत के नवयुवक पं० नारायणदत्त ने भी दो साल यहां प्रचार कार्य किया और सन १९३३ में वे भी चले गये।

श्री. अध्यापक रामशरण मोती कई वर्षों से आर्यपरोपकारिणी सभाके प्रधान पद पर आरूढ़ हैं। उसीमें उनकी योग्यताका परिचय मिल जाता है। सभा की बहुत सी विशेष घटनाएं उनके

हिन्दू जनता में खलबली मचा रखी थी। उनको आप जबरन आ० समाजके सिद्धान्तोंकी ओर खींचा करते थे। हिला कर नहीं किन्तु धक्का मार कर जगाव यही उनकी नीति थी। मालूम होता है कि, हिंदुओं की देवी देवताएं उनपर रुष्ट हुए और उनको यहां से बिदा करके ही वे सन्तुष्ट हुए।

## आर्यपरोपकारिणी सभा।

परन्तु डा० साहब भी कुछ कम नहीं थे। आपने भी सन १९१३ में "आर्य परोपकारिणी सभा" की स्थापना द्वारा जानों कि हिंदू देवताओं की गर्दन पर सदैव के लिये तलवार टांग कर ही यहां से चल दिया! आ० परोपकारिणी सभा ने शांदेमार्स में एक छोटा सा मकान भी अपने लिये खरीदा जिसके चंदे में स्व० रणछोड़जी देसाई का पहला नाम है। उसी साल डाक्टरजी की उपस्थिति में ही स्वामी स्वतंत्रानंद का आगमन हुआ. उन दोनोंमें जमीन आसमानका फरक था। एक विश्वामित्र के अवतार थे तो दूसरे वशिष्ठ के। सादाई, सच्चाई, निराभिमान, श्रद्धा शांति, निर्लोभता, प्रेम तथा कर्मण्यता के आप मूर्ति थे। ये गेरुवे वस्त्रधारी व्यक्ति भी यहां के लिये एक नवीनता ही थी। श्री. श्री. रघुनाथ इंदर, रमई बंधु आदि उनके समयमें ही समाजमें प्रविष्ट हुए। कई जगहों पर उन्होंने समाज स्थापना की। एक सच्चे मिशनरीके ढंगसे आप कार्य करते थे। हिंदी भाषाकी पढाई पर आपने ध्यान पहुंचाया था। आंख की बीमारी के कारण उनका गमन हुआ। पं० पं० जगनंदन, शंकर आदि अब उपदेशक की हैसियत से प्रचार कार्य

में एक स्त्री भी है। पं० वेणीमाधव मुख्योपदेशक है और आप ही आर्य पत्रिकाका सम्पादन करते हैं। सभाके प्रमुख कर्मचारी श्री. दीपनारायण पदारथ है, जो अपनी मृदुबोली और मीठे व्यवहारसे सबको संतोष देते हैं। आप प्रेस और अनाथालयके मैनेजर भी हैं। आ० समाजने पिछले पाव शतकके परिश्रमसे कुछ शक्ति कमा ली है; पर शक्ति-संग्रहका दुरुपयोग होनेका खतरा रहता है, इस बातको सदैव ध्यानमें रखना चाहिये। दलबन्दी करके निजकी रक्षा करना और मौका मिले तो आक्रमण करना इस नीतिसे शक्ति बढ़ानेकी अपेक्षा वह क्षीण हो जाती है और अन्तमें वह केवल संप्रदाय या पंथ बना रहता है। बाप दादाकी कमाईपर मजा लूटना यह जो हिन्दुओंकी परम्परा है, उसीसे हिन्दू सदैव अधोगामी रहते हैं। बापकी कमाईमें बेटा भरती नहीं करता है। अपने निजके पुरुषार्थकी आवश्यकता उसे प्रतीत नहीं होती है और आलस्य अकर्मण्यता, बेपरवाही और घमण्ड आदि दुर्गुणोंका शिकार बन कर बापको और निजको दोनोंको वह हानि पहुंचाता है। आर्य समाजका वह मन्तव्य नहीं है। हिन्दुओंकी बिखरी हुई शक्तिको बटोरकर उसे प्रचण्ड और प्रभावशाली बनाना यही उसका प्रधान उद्देश्य होना चाहिये। इसी हेतुसे ही आर्य समाजको स्वामी दयानंदने प्रतिनिधिक रूप दिया है, परन्तु यह भी जब बपौती हो जाती है, तब वह निर्जीव और निकम्मा हो जाता है। मोरिशसमें आर्य समाजके सिवाय सामाजिक संशोधन और सुधार करनेवाली और कोई संस्था नहीं है, इस बातको उचित प्रकारसे समझकर अपने उत्तरदायित्वको पूरा करनेका भार उसी

भारत वर्ष की विख्यात 'हिन्दू महासभा' में अधिकतर सदस्य आर्यसमाजी ही हैं, इतना कहने से हिन्दू संसारमें आर्यसमाजका क्या मूल्य है, उसका पता लग जाता है। हिन्दुओंके Advanced Guard अर्थात, पुरोगामी सैनिक इस सम्मान दर्शक नामसे आर्यसमाजको विभूषित किया जाता है।

भारतमें मुसलमानों के हाथ बलिदान होने वाले भद्र पुरुषों में आर्यसमाजियों के सिवाय और कौन है? मोरिशसमें भले ही अनभिज्ञ लोगों से उसका विरोध हो, पर यह भी स्मरण रहे कि, ऐसे विरोधमें से उसका तेज प्रकट होता है। आर्यसमाज की आलोचना से सनातनी लोग भी आत्म संशोधन करने लगे हैं और उनके धार्मिक तथा सामाजिक जीवन पर आर्यसमाज की छाया पड गई है। ब्राह्मण-पुरोहितों की गिरती आर्थिक दशा, भिन्न जातियों में विवाह, हिन्दी-शिक्षा प्रचार, वेद मंत्रोंका सर्वत्र उच्चारण, कुरीतियों का धिक्कार आदि उसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। यह एक आठवाँ और भारी उपकार है। परन्तु यह नहीं समझना चाहिये कि, आर्यसमाज सब कुछ कर चुका है, अभी तो सिपाहियों की पलटनें बनाई जा रही है। प्रति साल औसत सौ सिपाहियों की भरती होती है। युद्धमें उतरना तथा विजय पाना दूर की बातें है और 'कृण्वन्तोविश्वम् आर्यम्' अर्थात् सारे संसारको आर्य बनाने की घोषणा तो अभी स्वप्नवत् ही है!! मोरिशस में सर्वव्यापी युरोपियन सभ्यता के साथ टक्कर देनी है; इस लिये आ. समाजका कार्यक्रम भी ऐसा ही मोहक और ऊंचा होना चाहिये ताकि हमारे नवयुवक हमसे डगने नहीं पावें। बूढों के लिये अथवा रामायणी लोगों के

अच्छी सहायता प्राप्त हुई है। उन दिनों आर्यसमाज में मतभेद नहीं था, जिससे समाजकी प्रगति वेग गतिसे होती रही। १९१६ से १९२६ तक का दस वर्षका समय, (आठ वर्ष तक भारतका कोई प्रचारक नहीं था।) भवन, पाठशालाए, समाजें, प्रचार, धन, समाचार पत्र, सख्या और सार्वजनिक सहानुभूति आदि सब तरह से आर्यसमाज की वृद्धि का था।

वाकुआ की अंग्रेजी पाठशाला "आर्यन वैदिक स्कूल" को सन १९२२ से सरकारी सहायता (grant in aid) मिलने लगी। जिससे आ. समाजका बोझा हलका हुआ और उनका कोप भारी होने लगा। अपनी बाल्यावस्था मे ही सोई हुई 'आर्य पत्रिका' पुनः जागी और श्री. मुक्षियेनजी के उद्योग से वह सन १९२४ मे खड़ी हुई। श्री. श्री. दिलचंद, सदल, रामदयाल, महेशसरदार, भागीरथी, आदिकों से ५००-६०० रुपयोंका चन्दा भी हुआ था। यह सब हुआ; पर असंतोषका बीज भी साथही साथ बोये जा रहे थे! आरंभ श्री. श्री. रघुनाथराय, सिसरन रमई बंधु आदियों से हुआ और वे समाज से अलग हो गये। पर सन १९२५ में श्री. मेहता जैमिनि के आगमन के कारण यह आग अधिक धधकी नहीं; क्योंकि लोगों का ध्यान तब दयानंद जन्म शताब्दी पर लगा हुआ था। बड़ी धूमधाम से यह उत्सव मनाया गया। उपदेशकों को सोने के पदक मिले तथा हमको १५ रुपयोंका, लेख-परीक्षा मे दूसरे नंबर का इनाम शंकास्पद स्थितिमें मिला हुआ होनेके कारण हमने उसका स्वीकार किया नहीं. श्री. जैमिनि जैसा उत्साही व्याख्याता आज दिन तक मोरिशसमें

समय में बीती है। समाजकी बुरी भली बातोंका उत्तरदायित्व भी अंशत: उनपर ही आता है। आप एक मितभाषी, ठंडे और गंभीर मनुष्य हैं और सभाका संचालन उसी ढंगसे करते हैं। श्री. इमरित रतनाम ने आज ५ साल से अपने मंत्री पद को, अपनी दक्षता, महत्वाकांक्षा, बुद्धिमत्ता और नीति के बलपर बराबर टिका रखा है। उन्होंने 'आर्य दिन' जारी करके समाज समाजके लिये प्रति साल कुछ आमदनी करनेका एक उपाय ढूंढ निकाला। अनाथालयकी स्थापनाकी कामना उनके ही सिर मेंसे निकली है। आर्य समाजके गौरव और वैभवका साक्षी भव्य तथा विशाल मातृ भवनकी धुन उनकी खोपडीमें ही छिपी बैठी थी। श्री. श्री. बोनोमली, मनसासिंह, भागिरथी प्रभृति धनपात्र और उद्योगी महाशयोंका सहयोग मिलते ही वह फूट निकली और जो कुछ दर्शनी भाग इस समय बना हुआ है उसोसे होनेवाले आलीशान मकानकी कल्पना कोई भी कर सकता है। श्री० बोनोमली कोषाध्यक्ष हैं और बाक्वा विद्यालयके मेनेजर हैं। आर्य परोपकारिणी सभाका दूसरा महोत्सव सन १९३३ के सालमें दयानंद निर्वाण अर्ध शताब्दीके उपलक्षमे था। उस संबंधके कार्यक्रममें हमारे विचारमें प्रभावशाली कार्य नगर कीर्तन था। राजधानी पोर्ट लुइसकी स्थापनाको इस साल २०० वर्ष हो गए हैं। शायद ही पोर्टलुईसमें किसीने भारतीयोंका इतना बडा जुलूस देखा हो। वह अपूर्व था।

परोपकारिणी सभा, ५०–६० हजार रुपया मूल्यकी संपत्तिकी स्वामिनी है। सभामे नौ उपदेशक काम करते हैं, जिन

से संस्था लोगों के आदरपात्र हो रही थी। और दो ही साल याने सन १६१५ में संस्थाका एक निजी मकान हो गया। उसी में अब संस्थाकी तामिल पाठशाला भी आ गई। धीरे २ इंगलिश और फ्रेंच की पढाई भी होने लगी। १६१७ में संस्थाकी ७ वीं जयन्ती बड़ी धूमधाम से मनाई गई थी, जिसके सभापतिका स्थान, नियोजित सभापति श्री. हरिप्रसाद, एस. भगत की आकस्मिक मृत्यु के कारण; पं० आत्मारामको स्वीकारना पडा था।

तामिल पाठशाला मे छात्रोंकी संख्या बढती जाती थी और खर्च भी अधिक होता था, इस लिये सरकारी ओरसे सहायता (grant in aid) मांगने की चेष्टाएं शुरू हुई। चार साल के बाद संस्था के परिश्रम को यश मिला। विधर्मियों का विरोध तो होगा ही; किन्तु कतिपय स्वजातियों ने संस्था के मार्गमे रोडे पसारने में बाकी नहीं रखा था! पर उस समय संस्था के सूत्रधार श्री. नडराजन सिवरामेन भी कुछ कम नहीं थे।

सन १६२१ के आरंभमे कावडी महोत्सव के अवसर पर कैलासों (मीनाक्षी) मंदिर के मैदान में गवरनर सर हेसकेतबेल साहब को जो मानपत्र अर्पण किया गया था, उस विषय मे भाषण करते हुए श्री. नडराजन ने अपनी पाठशाला का भी गवरनर को स्मरण दिलाया था। उत्तर देते हुए गवरनर साहब ने कह दिया कि, मुझसे जो कुछ होगा, मै अवश्य करूंगा। श्री. कुमारसामी मारदेनायगम्, स्व० श्री. एस. मुत्तुसामी, ए० नयनार, नडराजन ने गवरनर तथा उस समयके कॉलॉनीके मंत्री डेनहम

पर है। हिन्दुओंको हमेशा बुरा भला सुनाते रहनेसे और उन की सहानुभूति खो बैठनेपर आर्य समाजके लिये काम करनेका क्षेत्र ही नहीं रहता है और तब ही उसमें संकुचित वृत्ति आ जाती है और फल स्वरूप आपस ही में तेरी मेरी चल पड़ती है। इन बातोंकी ओर आर्य समाजके सूत्रधारोंका ध्यान हम इस अवसरपर खींचना चाहते हैं। उपरोक्त विवेचन परोपकारिणी सभाके लिये नहीं है, किन्तु आर्य समाजके लिये है।

## आर्य समाजने किया क्या ?

अब यह देखना चाहिये कि, २५—३० वर्षके समयमें आर्य समाजने मोरिशसकी हिन्दू जातिका क्या उपकार किया है ?

१ ला उपकार यह है कि उसने अपने प्रचार और समाचार-पत्र द्वारा लोगोंकी भाषा सुधारी।

२ रा उपकार यह है कि, अंधश्रद्धा और अंध परम्पराके स्थान बुद्धि और तर्ककी स्थापना की।

३ रा उपकार यह है कि, प्राचीन सभ्यता प्रति अभिमान का भाव उत्पन्न किया।

४ था उपकार यह है कि, बिखरी अतएव निर्माल्य धर्मश्रद्धाको इकट्ठी अतएव प्रभावी बनाया।

५ वा उपकार है एक जातीयताके भावोंकी सृष्टि और उसके द्वारा संघ शक्तिकी निर्मिति।

६ ठा उपकार है धार्मिक आक्रमण और बचावका ज्ञान।

७ वा उपकार है शुद्धि।

# मोरिशस हिन्दू हिम सोसाइटी।

## (मॉरिशस हिन्दू भजन मंडली)

## पोर्ट लुईस

यह सन १९१३ में स्थापना हुई है। पहिले प्रधान स्व० श्री० सुक्रमणय थे, इस समय श्री०. वीरामुत्तु हैं। इसके नाम से ही पता लगता है कि, वह एक धार्मिक संस्था है। सदस्य २६ हैं और मासिक चंदा आठ आना है तथा प्रवेश फी एक रुपया। पोर्ट लुइस नगरमें तामिलोंकी ५,००० संख्या हो तो उनमेंसे धार्मिक संस्थाके लिये सैकड़ा आधा टका सदस्योंका मिलना कठिन हो जाता है, यह एक विचारणीय घटना है। लगभग पाव शतक लौट जानेपर भी मंडलीका अपना मकान नहीं है।

प्रति साल तीन उत्सव मनाए जाते हैं, जिनमें 'गोविन्दन' को अधिक महत्त्व है। उत्सवोंपर गरीबोंको अन्न-दान दिया जाता है। मूर्तियोंके शृंगारमें तामिल पूजा अधिक पैसा खर्च करती है। उत्सव आदि विशेष अवसरोंपर चंदेसे पैसा इकट्ठा करके व्ययका प्रबंध किया जाता है। यह एक अर्ध धार्मिक संस्था है। मोरिशसमें तामिलोंकी ऐसी १५–२० संस्थाएं हैं. नमूनेके तौरपर उपरोक्त संस्था हमने पेश किया है.

लिये पुरानी चाले ठीक हैं, पर आंग्ल विद्या संपन्न युवकों के लिये क्या किया जाय, यह दिन प्रति दिन कठिन समस्या बनती जा रही है। सुलझाने का यत्न कीजियेगा।

इस समय बाबू मुनसा सिंह प्रधान हैं। श्री. श्री. मो. फोकीर, बा. फनाई, रा. गुमानी, ज. रामनाथ और प्रयाग सरदार आदि अन्तरंग सभा के सदस्य हैं।

उपरोक्त लेखमें आये हुए पंडितों के अतिरिक्त पं० पं० बलराम, ना० संजीवी. रंगासामी, देवसरन, रामकिसुन, धुरंधर. तथा हरिप्रसाद उपदेशक है। पार्वती देवी उपदेशिका है।

## यंगमेन हिन्दू असोसिएशन।

### ( हिन्दू युवक संघ )

### पोर्टलुइस।

मोरिशस के सुपरिचित देशभक्त बेरिष्टर मणिलाल एम० ए० एल० एल० बी० की प्रेरणा से सन १९१० मे इस संघ की स्थापना हुई है। उसके प्रथम प्रधान श्री. के. परशुरामेन तथा कार्यवाह स्व. श्री. एम. रामस्वामी सिरदार थे। सन १९१३ मे इसकी रजिस्टरी हो कर वह राजमान्य संस्था बनी। मोरिशस मे हिन्दुओं की यही पहिली सामाजिक संस्था है। प्रधान स्व० श्री. पी. एस. एस. मुडलियर और कार्यवाह रामसामी के उद्योग

इस प्रश्नसे कुछ देरके लिये सब चुप हो गये और एक दूसरेका मुंह ताकने लगे। किसीसे कुछ कहते न बना। उसी विरणया मानसिक दशामें वे अपने२ घर लौट आए; परन्तु उपरोक्त प्रश्नने उनका पिण्ड नहीं छोडा था।

एक सप्ताह बाद वे फिर जुटे और उस अधूरे विषयको पुनः किसीने छेड़ दिया। बहुतसी चर्चा होनेके बाद नवयुवकोंने यह निश्चित कर दिया कि, अपने समाजमें 'गति' उत्पन्न करने के लिये अथवा उसमें नवचैतन्य डालनेके लिये एक संस्था निर्माण की जाए। क्या विलंब था ? जवानोंके उत्साहकी बाधा बूढोंको भी लगी! धन, अनुभव और जोशका संयोग होते ही 'श्री काठियावाड सोसायटी' नामक संस्थाका जन्म हुआ याने १९२३ में वह राजमान्य (Registered) हो गई उसके प्रथम अध्यक्ष श्री. तुलजाशंकर त्रिवेदी (जो अब भारतमें है) थे। सेठ काला बंधुओंने अपने एक मकानका विभाग संस्थाको अर्पण किया है, जिसमें संस्थाके अधिवेशन आदि कार्य हुआ करते हैं। किसीसे कुर्सियां, किसीसे पुस्तकें, किसीसे धन, कहींसे बत्ती तो कहींसे घड़ी आदि 'दसकी लकडी एकका बोझा' की कहावत के अनुसार संस्थाका शृंगार हुआ।

संस्थाके कृपा-छत्रके तले अच्छे२ काम होते हैं। (Debating Club) (डिबेटिंग क्लब) द्वारा संस्थाके सदस्य भिन्न२ विषयोंकी चर्चा करते है। ज्ञान प्राप्तिके साथ सभामें खडे होकर निर्भयतासे बोलनेका अभ्यास उनको हो जाय, तो वह साधारण लाभ नहीं। परन्तु मालूम होता है कि, उनका चर

Mr. R Moti, President Arya Paropakarini Sabha.

ऊंचे स्वरसे दूर तक पहुंचाये जाते हैं। ऐसे ओसों जगह होने वाले उत्सवोंसे "काठियावड सोसायटी" का एकदम अपने ही ढंगका यह एक निराला उत्सव है। जिसका खाना उसका गाना यह मामला यहां नहीं। ( Free Platform ) अर्थात स्वतंत्र व्यासपीठ यह इस उत्सवकी विशेषता है। वक्ताओंको ईश्वर में सन्देह से लेकर "अहं ब्रह्मास्मि" तक किसी प्रकारके; पर समाज पोषक विचार प्रकट करनेका पूर्ण स्वातंत्र्य है।

सोसाइटी ने २ हजारका एक मकान खरीद किया है, जिसका ३० रु० के करीब किराया मिलता है। आरंभ में सदस्य का मासिक चंदा दो रुपया था, बादमें आठ आना हुआ और अब चार आना है। कोई भी हिन्दू संस्थाका सदस्य हो सकता है। प्रतिवर्ष कार्यकारिणी (Managing Committee) समितिका चुनाव होता है, जिसमे नौ सदस्य रहते हैं, श्री श्री भीमभाई नारदान हरिलाल कृ. त्रिवेदी, भगवानदास काला, बिहारीलाल हीरालाल, नारायणदास काला, पुरुषोत्तमदास देवास, प्रभृति सज्जनों ने संस्थाके अध्यक्ष पदको भूषित किया है। इस समय उस पद पर विगत दो सालसे प्रसिद्ध देसाई कंपनीके साझेदार श्री. मगनलाल रतनजी देसाई आरुढ है। अध्यक्ष पदकी नियुक्तिमे कार्यकर्तृत्व, योग्यता, मान, धन आदि गुणोंमेंसे सब अथवा कोई एक अलग कारण ही होना है। हमारे विचारमें प्रधान हेतु मानका होता है। सेक्रेटरी याने मंत्रीकी बात वैसी नहीं। संस्था के संचालनका भार उन्हींपर रहता है। अध्यक्ष आये और गये; परन्तु विद्यमान मंत्री श्री. भीमभाई काला अपना आसन

की भेट करके सरकारका सारा भ्रम दूर किया और पोर्टलुइस शहरमें हिन्दुओंका एक स्कूल होने की आवश्यका सरकारको बता दी। और जयहाँ पर दौड़ना पड़ा है वह तो अलग।

श्री. कु. मारदेनायगम से अच्छी आर्थिक सहायता समय समय पर मिलती रही है। इतने परिश्रम हुए तब कहीं जाकर महा मुशकिलीसे पाठशालाको सन १९२१ के अन्तमें सहायता मिलने लगी लगभग दस वर्ष पाठशाला चलाकर और ८-१० हजार रुपया खर्च करके सरकारकी खातरी करने पर वह सहायता मिली है, इस बातको ध्यानमें रखना चाहिये।

सन १९२९ में संस्था ने एक विशाल जायदाद खरीद की। उसी मे अब पाठशाला चलती है और वही सभाका भवन है। पाठशाला में इस समय ५५० बाल-बालिकाएं शिक्षा पाती है और तामिल भाषाकी पढ़ाई पर अधिक ध्यान दिया जाता है। मातृ भाषाके साथ धर्मका कितना सम्बन्ध है, यह कोई भी समझ सकता है। एक रात्रि पाशाला भी चलती है।

पोर्टलुइस शहरके हिन्दुओंकी आगेवानी स्वीकार कर इस संस्था ने श्री. कुंवर महाराजसिंहको साल १९२५ में मानपत्र अर्पण किया था।

इस ससय प्रधान श्री. नडराजन सिवरामेन है, जिन्होंने पिछले आठ दस सालसे सेक्रेटरी याने कार्यवाहकी हैसियतसे संस्थाकी सेवा करके उसको वर्तमान सुस्थिति को पहुंचाया है। आप एक सामाजिक कार्यकर्त्ता हैं।

Telagoo Vishnoo temple of St Piere.

# श्री० काठियावाड सोसाइटी।

## पोर्ट लुईस।

वसन्त ऋतुके दिन थे। हिन्दी महासागरके तटपर संध्या समय सहल करते हुए और शीतल वायुके सेवनसे कुछ नवयुवक मन्द गतिसे चले जा रहे थे। Pleasure Ground—प्लेजर ग्राउण्ड—पर समुद्रकी उछलती लहरें उनके स्वागतके लिये उनके चरणोंको मानो स्पर्श करना चाहती थीं। नवयुवक वहीं खड़े हुए और अपनी लहरों द्वारा समुद्रकी यह निरन्तर हटने और बढनेकी लीलाको देखने लगे।

उनमेंसे एकने कहा "जानते हो, हर एक वस्तु गतिमान है। इतना बड़ा गंभीर महासागर भी हिल डोल रहा है। इसमें गति है।" दूसरेने कहा "Yes a law of Physics" (अलबत्त प्रकृतिका यह एक नियम है)

जरा मुसकुराते तीसरेने पूछा "यह सब ठीक; पर यह तो बताओ कि, मानव-समाजको भी यह नियम लागू है?" चौथेने उत्तर दिया 'इंग्लण्ड और फ्रान्सका इतिहास आप जानते ही हो, एक समयकी वह जंगली और असभ्य जातियां आज उन्नति और संस्कृतिके शिखरपर चढी है, यह भी आप देखते हो। मानव-समाज प्रकृतिके समान ही गतिमान है, उसके ये देश उदाहरण ही है।"

पांचवां कहता है "अब मैं पूछता हूं कि, हमारे समाजकी क्या गति है?"

होता है कि, उन्होंने कोई मांग या आन्दोलन नहीं किया था। उन दिनों मुर्दा जलानेके वास्ते बहुत कष्ट और खर्च होता था और वह सब बरदाश्त करनेकी उनमें शक्ति भी नहीं थी; परन्तु दृढ़ श्रद्धा वाले मनुष्यकी गतिको कोई भी विघ्न रोक नहीं सकता है। ऐसे ही एक व्यक्ति श्री. शिवधारी भगत थे और उनके शव का दहन, हमारे ख्यालसे मोरिशसमे पहले पहल सन १८८२ में हुआ था। इस घटनाको आज ५४ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इसके बाद श्री श्री गंगासिंह, गोरखचंद लाला, कन्हाई महाराज, पं० मुक्ताराम प्रभृतियोंका अग्नि संस्कार हुआ है।

पिछले २५ वर्षोंसे उच्च वर्णोंमें दहन क्रिया ने जग जड पकड ली है, जिसमें आर्यसमाजके प्रचार ने भी सहायता पहुंचाई है। यहसब हुआ; पर राजधानी पोर्टलुईसमें आजसे लगभग ४० वर्ष पूर्व कोई दहन-विधि नहीं हुई थी। ईसवी सन १८६७ में कहते हैं कि, बंगालके इन्फेन्ट्रीके सिपाही यहां थे। उनमे अधिकतर ब्राम्हण थे। उनमेसे एक सिपाहीकी मृत्यु हुई। उसकी दहन क्रिया बा-ले-दे प्रेत में हुई थी। जिस स्थानपर मुर्दा जलाया था, वह 'सि-पाही बूर्ले' (सिपाही-दहन) के नामसे मशहूर हुआ। पोर्टलुइस के इतिहासमे यह शव-दहन प्रथम बार ही हुआ था।

इस दहनमे जो अडचनें आई थीं, उनको उस समयके स्व० श्री. मायाराम आनंदजीने अपनी आंखों देखा था। भारतसे मो-रिशसमे आ कर सोनारकी दुकान खोलने वाले आप प्रथम काठियावाड़ी सुनार थे। सन १८५०--६० के बीच में आपका

जोश अब नहीं रहा है।

बलवानके सामने निर्बलको सिर झुकाना ही पड़ता है। कसरत या व्यायाम ही उस अपमानास्पद स्थितिसे बचने का एक उपाय है। इस विचारसे सदस्य संस्थाके भवनमें व्यायाम भी सिखते थे। इस समय इसमें भी शिथिलताने घर कर लिया है।

सन १९२६ में संस्थाकी ओरसे एक गीता-वर्ग खोला गया; जिसके अध्यापक कर्मनिष्ठ ब्राह्मण गिरजाशंकर दुवे थे। (आप एक व्यापारी थे और अब भारतमें हैं) उनके पश्चात श्री० हरिप्रसाद जे० दुवे पढ़ाया करते थे। उन्हींके उद्योगसे सन १९२८ में एक गुजराती रात्रि पाठशालाका उद्घाटन हुआ जिसमें हिन्दी तथा गीताकी शिक्षा भी दी जाती है। लगभग ५० बालबालिकाएं इस पाठशालासे लाभ उठाती हैं।

Library अर्थात, वाचनालयमें इस समय ५०० के करीब पुस्तकें हैं। हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी समाचार-पत्र वाचनालयमें आते हैं। पिछले वर्ष भारत-भूकंप-पीडितोंके सहायतार्थ यहांके गवरनर महोदयके खोले हुए फण्डको संस्थाने १०० रु० दिया है। पिछले दो तीन साल यहांके रायल कालेजके अभ्यासके लिये एक विद्यार्थीको मासिक शिष्यवृत्ति (Scholarship) संस्थाकी ओरसे दी गई थी।

दीपावलीके अवसरपर नूतन वर्षके उपलक्षमें संस्थाका वार्षिक उत्सव बडे ठाठ माठसे मनाया जाता है, जिसमें 'रेडियो तथा "लाऊड स्पीकर' (ध्वनि क्षेपक) बिठाकर पूर्व पश्चिमके गायन-वादन श्रोतृगण को सुनाए जाते हैं और वक्ताओंके भाषण

लोगों के लिये इतने समय तक बैठने ठहरनेके लिये कोई स्थान नहीं था। धूप, बरसातसे बडी तकलीफ होती थी। स्मशान भी खुला जंगलसा पड़ा हुआ था। उसे घेरनेकी आवश्यकता थी। इन सब कामोंके वास्ते काठियावाडी और गुजराती (मायाराम और मेहता) आदियोंकी एक मंडली बनी और उसने आपस में चन्दा करके उपरोक्त त्रुटियोंकी पूर्ति की। एक पक्की ऊंची दीवारसे दहन भूमिको घेर कर उसे सुरक्षित बनाया और पत्रोंके छप्पर बना कर बैठनेका भी सुभीता किया। इनमें ४-५ हजार रुपये खर्च हुए हे। एतद्देशीय हिन्दुओं ने भी इसमें सहयोग दिया है। श्री. श्री. झाला और काला आदियों ने उन सुधार-वृद्धिमें अच्छी मेहनत की है। आगे चलकर उपरोक्त मंडलीका रूपान्तर हुआ और हिन्दू क्रिमेशन सोसायटी के नामसे अधिकृत रीति से वह सन १९२६ मे राजमान्य सस्था घोषित हुई।

स्व० मायारामके पुत्र पौत्रों ने स्मशान भूमि और कुएका स्वामित्व संस्थाको सौंप दिया है। स्मशानकी देखभाल तबसे इसी संस्था से होती है। इसके प्रधान शहरके प्रसिद्ध व्यापारी सेठ नत्थुभाई कुंवरजी देसाई है। देसाई कंपनीके संस्थापक स्व० श्री. रणछोड जी देसाईकी उदार परम्परा आप बराबर चलाया करते हैं। मुर्दा जल जाने पर आग बुझानेके वास्ते कुएमे उतरकर ऊपर पानी ले आने में बडे कष्ट होते थे और कुआ कभी सूख जाता है तब तो और भी तकलीफ होती थी। पिछले साल श्री खंडु भाई ल. देसाई ने अपने चाचा स्व० गोविंद भाईकी यादगार में वहां पानीका नल बिठाकर वह कष्ट भी दूर किये हैं।

कई वर्षों से जमाये ही बैठे हैं। परम्परागत पद्धतिसे संस्थाका काम करते जाना यह तो मंत्रीका कर्तव्य ही है; पर उसमें कुछ नवीनता उत्पन्न करके उस ओर लोगोंका ध्यान आकृष्ट करने की श्री. भीमभाई चेष्टा करते रहते हैं। यही उनका विशेष गुण है। श्री. हरिप्रसाद दवेजीकी निष्काम सेवा भी प्रशंसनीय है। यह संस्था १३ वर्षकी आयुको टप गई है और नवयौवनमें अब प्रवेश करनेकी तैयारीमें है। देखें उसकी जवानीमें क्या गुल खिलता है।

इस वर्षके लिये सेठ नत्थुभाई कु. देसाई प्रधान, श्री. हरिप्रसाद दवे मंत्री और भीमभाई काला कोषाध्यक्ष हैं।

---

# हिन्दू क्रिमेशन सोसाइटी।

## पोर्ट लुईस

---

इस पुस्तकके निचोडमें मोरिशसमें भारतियोंकी शताब्दी–निवासके कालको हमने तीन भागोंमें बांटा है। वे हैं अंधेरी रात, उषाकाल और सूर्योदय। भारतियोंकी अर्ध शताब्दी धार्मिक और सामाजिक दृष्टिसे अंधेरी रातमें रेंगती, टटोलती ही व्यतीत हुई है। उसका एक प्रमाण सन १८८२ तक हिन्दुओंके शवोंको यहां जलाया नहीं जाता था, इस बातमें मिल जाता है। मृत देहको अग्नि संस्कार करना यह एक हिन्दुओंकी मुख्य धार्मिक क्रिया है, जिसे अंत्येष्टि कहते हैं। मोरिशसमें उस समय भी बहुत द्विज रहते थे; परन्तु शव दहनके लिये मालूम

सहानुभूति कुछ भी नहीं था। अपनी धोती लेकर वे बाहर निकले। परन्तु बुद्धि, उत्साह, ज्ञान, अनुभव, श्रद्धा और पुरुषार्थ उनके साथी थे और उनकी सबसे बड़ी साथी थी, उनके हृदयमें रात दिन जलनेवाली स्वाभिमान की ज्योति। उनके उद्योगसे सन १९२८ में उन की संस्था राजमान्य घोषित हुई और कुछ मास बाद उसी सालमें सभाका मुख्य पत्र "आर्य वीर" भी अवतीर्ण हुआ। इस पत्रके निकालनेमें श्री. मूचिएं जीका सहयोग और पं० काशीनाथका उद्योग कारणीभूत हुआ है; पर फलाक निवासी दानशूर श्रीमान विसेसर हनुमानजीकी पतको, जो उदार सहायता मिली है, उसका भी यहां उल्लेख करना चाहिये। कुछ चंदा भी हुआ था।

इसके बाद बाबू गयासिंहने 'श्रद्धानन्द आश्रम' बनानेमें अपनी सारी शक्ति लगाई और चार सालकी मेहनतके बाद, बीचमें एक बार तौफानसे भवन टूट पडनेपर भी फिर साहस करके और 'भिक्षां देही' पद्धतिसे निधि इकट्ठा करके पिछले साल उसको खड़ा करके ही आपने आराम लिया। आश्रमके लिये बाबूजीने अपनी भूमि दान दी है। इस भवनके निर्माण में श्री० हनुमानजीसे खासी मदद मिली है। श्री. श्री. महेश सादार, मोहनलाल मोहित जैसे संपन्न महाशयों की सहायता तथा अन्योंके परिश्रम आश्रममें लगे ही है, पर यह कहनेमें हमे कोई संकोच नहीं कि, 'श्रद्धानन्द आश्रम' निर्माण करनेका भार बाबू गयासिंहने ही उठाया था, और खासकर उनके उद्योगसे ही काम परिपूर्ण हुआ है। एक श्रद्धावान और उत्सा-

में कुछ दिन प्रचार कार्य किया था। काशीके एक विद्यालय के लिये आपको वहांसे तीन चार हजार रुपया प्राप्त हुआ था।

मोरिशसकी हिन्दुस्थानी प्रजा खेती पेशा करनेवाली है। ये लोग गतानुगतिक रूढ़ियोंके इतने पाबन्द होते हैं कि, कोई भी सुधार, परिवर्त्तन या नवीनताको वे धर्मबाह्य घटना समझ कर उससे मुंह मोड़ लेते हैं। उनमें प्रचार करके उनको सुधारना बड़ा ही कठिन कार्य है। पिछले २५–३० वर्षोंमें आर्य समाजने इन लोगोंमें ही प्रचार किया है और निःसंदेह बहुत जागृति हुई है। कुछ संगठन भी हुआ है और आ. समाजने कुछ बल संवर्धन भी किया है। लेकिन संगठन शक्ति या जागृति साध्य नहीं हैं, ये तो केवल साधन हैं। रस्सी और लोटा हो तो कुएंमेंसे पानी खींचकर पी सकोगे। अर्थात्, इतनी तैयारी अब होती जा रही है। लोगोंको अपनी स्थिति का कुछ ज्ञान होने लगा है। अब साध्यकी ओर प्रतिनिधि सभा का ध्यान जा रहा है, यह सुचिन्ह है। समाचार-पत्रमें लेख लिखना और व्यास पीठ पर खड़े होकर व्याख्यान झाड़ना इतना करनेमें ही बहुतसे लोग कामकी इतिश्री मान लेते हैं; पर प्रतिनिधि सभाके कर्णधारोंके ऐसे विचार नहीं है और कुछ ठोस कामकर दिखानेपर वह उतार हुई है।

हिन्दी शिक्षाको इस सभाने अपनाया है और अन्यान्य स्थानोंपर पाठशालाएं खोलकर विशेषतः बालिकाओं की शिक्षापर सभा अधिक ध्यान पहुंचाती है। सभाकी देख भाल नीचे इस समय १०–१५ पाठशालाएं चल रही हैं। ओमेनी, रिशमार

आगमन हुआ था। सुनारको सच्चाईका सार्टिफिकेट मिलना जरा कठिन ही है; पर मायारामजीको हमने सुना है कि, वैसा सार्टिफिकेट मिला था। उनके बाद आनेवाले काठियावाडी सुनारोंको भी 'मायाराम' के नामसे ही लोग पुकारने लगे। मायाराम जी एक उदार, सच्चे और धर्मशील मनुष्य थे। उन्होंने अपने पैसेसे वह सिपाही कुले' की भूमि खरीद की और एक कुवाँ खोद कर पानीका भी प्रबंध किया। तबसे वहां बिना रोकटोक सें दहन विधि होने लगी। उपर्युक्त स्व० मायारामके पुत्र श्री विरजानंद की दूकान रोजबेलमें उनके दूसरे पुत्र श्री विठ्ठलदास की माईपूरमे और पौत्र श्री. हरगोविन्दकी वाकुआमें है।

मोरिशसके कलकत्तियोंमें सुनार जातिके लोग बहुत नहीं है; पर सुनारी धंधेका उनमे इस समय अच्छा प्रचार हो गया है। इस पेशेकी प्राथमिक शिक्षाका ज्ञान उन्हें आरंभमें मायाराम सुनारोंसे ही मिला था। परन्तु मद्रासी सुनारोंकी बात ऐसी नहीं है, वे देश से ही आये थे।

स्मशान भूमि इस प्रकार बन जानेपर भी लोग उसका लाभ नहीं लेते थे। परन्तु पिछले २०--२५ सालसे हिन्दुओं को आर्थिक सुस्थिति प्राप्त हो जाने पर उनके धर्म-विचारोंको भी तेजी आई और स्मशान भूमिका अधिक उपयोग होने लगा।

अर्थ और धर्म के इस नातेको ध्यानमे रखना चाहिये। मुर्दा जलने को तीन चार घंटे लगते हैं। स्मशान यात्रामे आने वाले

इस समय सेठ भगवानदास काला प्रधान और मंत्री श्री. मगनलाल देसाई है।

## आर्यप्रतिनिधि सभा

### पोर्ट लुईस

आर्यपरोपकारिणी सभा के संबंधमें लिखते हुए मोरिशसमें १. समाजकी स्थापना (१९१० मे) और बादका १५ वर्ष का ने सन १९२५ तक का उसका संक्षिप्त इतिहास हमने दिया ही है। पं० काशीनाथ, बाबू गयासिंह, श्री. छत्तर मास्टर, श्री. मुचियें, पं० अनिरुद्ध और आर्यसमाजके एक आदि संस्थापक श्री. गुरुप्रसाद दलजीत आदि परोपकारिणीके महारथी सदस्योंको उक्त सभासे अपना सम्बन्ध विच्छेद करना पडा आदि बातोंका दिग्दर्शन उसमें हमने किया है। उनके आत्म गौरव पर यह एक भारी आघात था; पर वे दब्बू नहीं निकले न भगवान पर ही आधार रखकर माला जपने लगे। किन्तु परोपकारिणीसे पृथक हो जानेपर दो ही वर्षोंके अन्दर उन्होंने 'आर्य प्रतिनिधि सभा' नामक नई संस्था खडी की और परोपकारिणीकी यह नंदान बेटी आज ही अपनी माके ओढनी संवारनेको कह रही है!

ईसवी सन १९२६ में उपरोक्त महाशय परोकारिणी सभा से अलग हुए तब उनके पास न धन, न बल, न स्थान न

श्रद्धानंद पाठशालाके आप मनेजर हैं। श्री. हनुमानजी तो स्वयं एक पाठशाला चलाते हैं और सर्वत्र अपनी उदारता और उपस्थिति से जनता को ऐसे कामोंमें उत्साह देते रहते हैं। आपकी उदारता सर्वत्र संचार करती है, जो इस पुस्तकके लेखकके जेब में भी घुस गई थी।

सुनते हैं-कि, उपरोक्त शिक्षा समितिका आयोजन (Scheme) दृढ पाये पर और नियमबद्ध रीतिसे बन जाय तो श्री. हनुमानजी उसके प्रबंध के लिये एक भारी रकम देनेको तैयार हैं। पं० गया सिंहका भी ऐसा ही संकल्प सुना जाता है कि. वह भी अपनी जायदाद ऐसे ही कोई उपयोगी कार्यके लिये प्रतिनिधि सभा को अर्पण कर देनेकी इच्छा रखते हैं।

इनके उदाहरणोंसे (यदि परिणाम रूपमें उतरे) उत्तेजित होकर बहुत सम्भव है कि, और भी महाशय उक्त आयोजनमें सम्मिलित होंगे और हिन्दी-शिक्षा प्रचारका एक केंद्र द्वारा सुयोग्य प्रबंध होगा। यह एक ठोस कार्य है और ऐसे कामों से ही औसत मनुष्यकी श्रद्धा, विश्वास और सहानुभूति समाजकी ओर झुकती रहेगी। परलोक में प्राप्त होने वाले फलकी अपेक्षा इस लोक में मिलने वाला लाभ ही लोग अधिक पसन्द करते हैं।

प्रतिनिधि सभाका दूसरा विशेष गुण यह है कि, सनातनियोंके साथ सहानुभूति रखकर वह अपना प्रचार करती है। उसमें इस समय पांच उपदेशक काम करते हैं, जिनमें पं० का-

ही व्यक्ति क्या कर सकता है, उसका यह आश्रम बाबू गया-सिंहके लिये एक स्मारकके तौरपर ही रहेगा। आश्रममें एक छोटासा वाचनालय भी है। लोगोंसे पैसा मांगना और वह उनसे निकालना एक कला है, जिसमें गयासिंहजी एक निपुण व्यक्ति हैं। सनातनियोंको, शिवाला आदिके लिये अपील करनी हो तो वे भी कभीर गयासिंहजीका सहारा लेकर अपना काम निकाल लेते हैं! करीब ६४ सालकी आयु होनेपर भी उनकी कार्यक्षमता और उत्साह अब तक वैसा ही कायम है, यह भी तरुणोंके लिये एक विचारणीय दृश्य है।

यह नहीं समझना चाहिये कि, गयासिंहजी केवल अपील करना और घर बनवाना ही जानते हैं। अपनी पुलीसकी नौकरी संभालकर आप प्रचार भी करते थे। सेवानिवृत हो जानेपर बाबूजीने शब्द संयास लिया अर्थात क्षत्रिय दर्शक बाबू सज्ञाका विसर्जन करके आपने पंडितकी उपाधिको प्राप्त किया। जिस काममें विश्वामित्रकी हार हुई थी उसमें बाबूजीने विजय पाई। हम भी उनको अब उपदेशक पं० गयासिंह कह कर ही पुकारेंगे। उनके भाग्यसे उनको मिली हुई उनकी पत्नी भाग्यवती देवी भी स्त्रियोंमें प्रचार करती है। आश्रमकी हिंदी पाठशाला की आप मुख्याध्यापिका है।

प्रतिनिधि सभाका काम अब चल पडा है। इस समय छोटी मोटी उसकी ३२ शाखाएं हैं। पिछले साल प्रतिनिधि सभाके बुलाए पं० कन्हैयालाल उपदेशक-भजनीकने मोरिशस

उन्हें लाभ पहुंचाते हैं। आप ने आरोग्यके ऊपर 'आर्य वीर' में हिन्दीमे एक लेख माला गूथी है और वह पुस्तक रूप मे प्रकाशित हुई हैं। मोरिशसमे हिन्दी और डाक्टरी, (बारिष्टरी, वकीली भी) का अहि-नकुलवत् सम्बन्ध है। इस लिये डाक्टर शिवगोविन्दजीका हिन्दी भाषा परका प्रभुत्व मानों कि एक 'मिराक' (करामात) ही समझना चाहिये।

आपकी इच्छा थी कि, परोपकारिणी और प्रतिनिधि ये दोनों सभाएं हाथमें हाथ डालकर काम करें; पर आप अभी तक इस सदिच्छामे फलीभूत नहीं हुए है।

श्री. श्री. रतन रामदीन,, ठाकुरप्रसाद विहारी, महादेव रामा, काली पाराचिएन, रामरतन विद्यार्थी, शिवनारायण लालजी, आर. गुरुचरण, देवकुमार सिंह प्रभृतियोंका सभाके साथ अच्छा सहयोग रहता है। प्रतिनिधि सभा की सम्पत्तिका ठीक मूल्य हमे ज्ञात नहीं; पर वह अवश्य ही २० हजार रुपया तक होना चाहिये। कोषाध्यक्ष मुचियेनजी और मंत्री मोहनलालजी दोनों धनपात्र सज्जन हैं। उनके समयमे सभाको सुस्थिति आनी ही चाहिये। जायदाद या आर्यसमाजिओंकी संख्याको हम उतना महत्व नहीं देते है, जितना कि हिन्दू समाज पर पडी हुई उसकी छायाको। इस सम्बन्ध में हमने अन्यत्र लिखा है।

उपरोक्त विद्या-समितिका कार्य आरंभ हो गया है। मुख्य उद्देश्य अध्यापकों तैयार करनेका है।

(सेंट्रल फ्लाक) पोर्ट लुईस, रेनियो-वाक्वा, कांकावाल, बुआ सेरी और प्लेनमायाम दिवसकी कन्या पठाशालाए हैं और वहां की पढ़ाई भी और जगहोंसे ठीक है। एक शिक्षा समिति द्वारा पाठशालाओंकी शिक्षा प्रणाली आदि अन्य कामोंके संचालनके लिये प्रबंध हो रहा है। वैसे तो टापू भरमे पचासो पाठशालाएं हैं; परन्तु उनका कार्य नियम बद्ध न होनेसे लाभ भी उतना ही होता है। कन्याको बहुतसे वेद मंत्र या स्तुति प्रार्थना अथवा एक दो भाषण कंठस्थ करा देते हैं और सभ में उनसे पाठ कराकर श्रोता गणोंकी करतल ध्वनिमे गुरुजी निजको धन्य मान लेते हैं! बस हो गई पढाई।

कन्याको उसके भावी जीवनमें कुछ फायदा पहुंचे अथवा फुरसतका समय व्यतीत करनेका कोई सुयोग्य ढग वह जान ले इस हेतु से उसकी पढ़ाईमें सिलाई, कसीदा आदि सुई के काम तथा कुछ हुनरका समावेश किया गया है और लड़कियां उसमें अच्छी प्रगति करती हुई देखी जाती है। कपड़े के व्यापारी मि० र नारायणजी खुशाल भाईकी सलाह और पैसा इस सम्बन्ध मे पाठशालाओंको भी अच्छी सहायता करता है। पुस्तकीय ज्ञानकी अपेक्षा हस्त कौशल्य पर मास्टरजी अधिक जोर देते हैं। पोर्टलुइस शहरके द्विशताब्दी उत्सवके अवसर पर शादेमासकी प्रदर्शिनीमे हिन्दू विद्यार्थिनियोंके कामके जो नमूने रखे गये थे, वह नारायण मास्टरजीके प्रोत्साहनका ही फल था श्री. भीमभाई काला भी समयर पर धन और समयसे हिन्दी शिक्षा प्रति सहानुभूति रखते हुए वैसे कामोंमे सम्मिलित रहते हैं।

इसी कारण हिन्दू लोग वर्त्तमान दयनीय दशाको पहुंच गये हैं। पति अपनी पत्नीकी बनाई रसोई नहीं खा सकता है, तब समुद्र पार करके पराक्रम करना और धर्मोपदेश देना मानों कि, नारी गर्व्वे हैं। जिनको इस प्रकार धार्मिक और सामाजिक बंधनोंसे घेरकर अन्दर ही अन्दर घूमनेवाली जाति कर ही क्या सकती है? ऐसी जंजीरोंसे जकडे हुए लोग किसी के भी शिकार हो सकते हैं, और प्राचीन ऐतिहासिक कालसे आज दिन तक यही होता आया है। हिन्दुस्थानमें लखाधिपति हिन्दू व्यापारी पडे हैं; पर वे मोरिशसमें नहीं आ सकते हैं; क्यों कि बीचमें खारा पानी है! एक साहसी मुसलमान आकर यहां लखाधिपति बन सकता है। इस संकुचितपनको आर्य समाजने कुछ अंशमें तोड दिया है और मार्गदर्शकनाका कार्य किया है; पर मार्ग चलनेमें, जो अडचने प्रस्तुत होती हैं, उसका परिहार हमे ही करना चाहिये। वेद-मंत्र पाठियोंसे यह काम नहीं हो सकता है। हमारे देखते देखते जोर शोरसे आये हुए गांधी युगका अस्त हो गया और अब नेहरू-युगका उदय हो रहा है। आजका युवक पूछता है कि, हवनकी धूवेंसे और कितने दिन हमें आंसु बहाना है? हिन्दुस्थानके लिये और कुछ समयके वास्ते ये बातें ठीक हो सकती हैं; परन्तु मोरिशसमें उनका गुजारा होना प्रति दिन कठिन ज्ञात होता है। यहांकी परिस्थिति ही ऐसी है। इस पुस्तकके निचोडमें इस संबंधमें विस्तारसे लिखा है।

सारी उम्रमें एक दिन याने विवाहके अवसरपर हमारा आज का युवक, धोती पगड़ी, वेद मंत्र, गौरी गणेश, बाबाजी और

Dr J Seegobin M. D T M. &c France, a social worker and the only hindi writer of the Indo-Mauritian elite

हमारी सूचना यह है कि, ईश्वर और उसका संदेश इन पर अधिक जोर लगानेकी अपेक्षा, मनुष्य और उसका कर्त्तव्य इस बात पर ही सारा बल लगा दिया जाय, तो बहुतसी त्रुटियोंकी परिपूर्ति हो सकती है।

---

# हिन्दू महासभा।

## पोर्ट लुईस।

इस संस्थाकी स्थापनाका पूर्वेतिहास मोंताईलोंग तक पहुंच जाता है। लगभग १५ सालकी बात है। वहाँके कतिपय उत्साही नवयुवक श्री. श्री. रामलाल मंगर भगत, शिवनारायण सिंह रामलाल, स्व० पं० बाबूलाल शर्मा, पं० बोलाराम मुक्ताराम, प्रभृतियोंके उद्योगसे हिन्दू महा सभाकी स्थापना वहाँ हुई थी। संस्था के उद्देश्य, नियम आदि इस पुस्तकके लेखक ने बनाये थे। दो तीन साल तक बिना शोरसे अनियमित रूपमें उनकी शक्ति के अनुसार कार्य हुआ करता था। पंडित मदनमोहन मालवीयजी के हिन्दू-संगठनकी आवाज, जो कि पहले मोंताईलोंग में सुनाई दी थी, अब मोरिशस भरमे गूंज उठी थी। बड़ोंके कानोंमें भी उसने प्रवेश किया और परिणामतः बड़ोंके हाथसे विधि पूर्वक और समारोह के साथ मोरिशसकी राजधानी पोर्टलुइस नगरीमें वह अवतीर्ण हुई। उसका पहाड़ी रूप बदल गया और सोलह श्रृंगार करके वह मैदानमें आ कर खडी हुई।

शीनाथ सबसे पुराने और प्रधान उपदेशक है, और आपही "आर्यवीर" का संपादन करते हैं। पं० अनिरुद्धका दूसरा नंबर है। पं० सहदेव पाडे भी एक उपदेशक है।

पिछले आठ वर्षों से ही प्रतिनिधि सभाका कार्यारंभ हुआ है तो भी उसकी प्रगति संतोषजनक है। आरंभमे सभाके प्रधान श्री. गोपीचन्द छत्तर थे, जो कि इस समय त्रिओलेकी सरकारी सहायता प्राप्त इंग्लिश-फ्रेंच पाठशालाके मुख्याध्यापक हैं। उनकी अपनी निजकी निर्मित वैसी ही 'सरस्वती पाठशाला' फ्लाक जिले के एकोयार स्थानमें आज ८ सालसे चल रही है। यहाँ यह कहना चाहिये कि, उनके अकेले के उद्योगसे वह स्थापित हुई है। चार साल तक प्रतिनिधि सभाके प्रधान पद पर आप रहे हैं। उनके पश्चात् श्री गुरु०दलजीतलाल तीन साल तक और पुनः छत्तर मास्टर जी तीन साल के लिये प्रधान निर्वाचित हुए हैं। उनकी प्रतिष्ठा और लोक प्रियताका यह एक खासा प्रमाण है। प्रतिनिधि सभाके कामोंमें डा० शिवगोविन्दजी अच्छा सहयोग देते हैं। "आर्यन वैदिक विद्यालय वाकुआ" के आप मनेजर रह चुके हैं और इस समय त्रिओले विद्यालय (महेश्वरनाथ पाठशाला) के मनेजर हैं।

मोरिशसमें, जो एक दर्जन हिन्दू बेरिष्ट और डाक्टर हैं, उनमे आप ही एक ऐसे सज्जन हैं कि, जो हिन्दुओंकी नयी पुरानी गति-आन्दोलनोंमें भाग लेते है और उनके साथ समरूप होकर अपनी विद्या, प्रतिष्ठा, दर्जा, सलाह और सहानुभूतिका
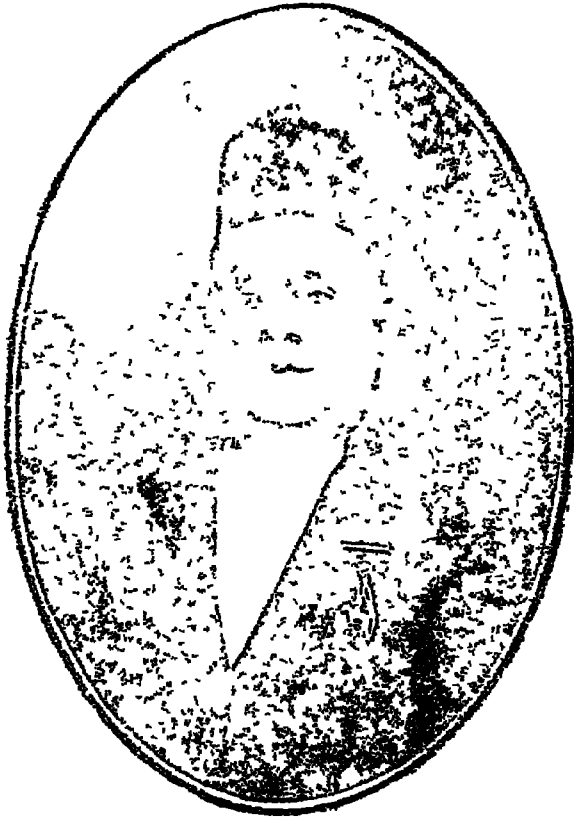
Mr Narayandas G Kala, under whose direction the present structure of the Vishnoo Mandir of Port Louis was raised sometimes working overnights

## आर्य समाजका भविष्य।

पिछले पच्चीस वर्षोंमें आर्य समाजको जो कुछ कहना था वह उसने कह दिया है। अब वह बोलो गंगाराम होता जा रहा है। वही ढोलक वही आवाज अब सुहावनी नहीं लगती है और वह प्रकृतिका नियम ही है। जिन लोगोंको आर्य-समाजने पाठ पढ़ाया था, वह लोग अब परलोककी यात्रा करने की तैयारी कर रहे हैं। नयी पीढी अपनी नयी विद्या और नयी रोशनीके घमण्डमे फिरती है। संसारमें होनेवाली उथल पथल की लहरें, रोज उनके मस्तिष्कको धक्का देकर उन्हे अपनी ओर खींचती रहती हैं। वेद पाठ और हवनकी न उन्हें उतनी आवश्यकता ही प्रतीत होती है, न उस ओर ध्यान देनेका अवकाश ही उन्हें मिलता है। वह अब 'वीये शीको' (पुरानी जड) बनती जाती है। खाली पानीसे वह बढ़ती नहीं, उसे अब खानो (निमक आदि) की आवश्यकता है। दूसरी बात यह है कि, सर्व साधारण जनता सिद्धान्तके रहस्यको नहीं जानती है। उसकी नजर तो संचालक और उपदेशकोंपर ही लगी रहती है। इन मार्ग दर्शकोंका आचरण, सिद्धांतके विपरीत हो तो अनुयायियोंमें बची सची श्रद्धा और विश्वासका भी लोप हो जाता है। संस्थाको सून करनेवाला झुक्का यही बात मारती है। येन केन प्रकारेण आर्य समाजियोंकी संख्या बढाना और दलबंदी बनाकर की हुई कमाई की रक्षा करना केवल इस ध्येयसे प्रेरित होकर जब समाजका संचालन होने लगता है तब उसका क्षेत्र और उनके भाव संकुचित हो जाते हैं।

श्री. गजाधरजीके सामाजिक दर्जेके कारण आठ दस हजार रुपयों का चंदा अल्पावधि में हो गया था। 'सनातन धर्माके' समाचार पत्रका मुद्रणालय यहीं है। मोरिशसके हिन्दुओंका ऐश्वर्य दर्शक वैसा सुन्दर भवन यह एक ही है। यह दुमंजिला मकान है, ऊपर विशाल हॉल है और नीचेका हिस्सा लोगोंको किराये पर दिया गया है। उसकी आयसे संस्थाका खर्च निकल आता है तथा सदस्योंके मासिक चंदेसे भी कुछ न कुछ कोषमें आही जाता है। संस्थाकी आयुको देखकर उसे बालिका ही कहनी चाहिये।

देखें अपनी जवानीमें अपनी नव यौवन और भरे सौंदर्य से हिन्दू प्रजापर मोहिनी अस्त्र डालकर वह उनमें कैसे चैतन्य निर्माण करती है? यही उससे आशा रखी जाती है। बाबू मोहन सिंह क्यूरपीप निवासी इस समय प्रधान है।

---

# क्षत्रिय महा सभा

## पोर्ट लुईस

'क्षत्रिय' एक ऐसा शब्द है कि, जिसके श्रवण से अनेक कल्पना, विचार और भाव, हिन्दुओंके अन्तःकरणोंमें उत्पन्न हो आते हैं। हिन्दू धर्म मे जाति व्यवस्थाके अनुसार क्षत्रियका दूसरा नंबर है। कहते हैं कि, सृष्टि-कर्त्ताके बाहूसे वह निकला हुआ है। बाहू राजन्यः कृताः इस वेद मंत्रके आधार पर यह

हवन इस धर्म पंचायतनका एक ही बार दर्शनकर लेता है और फिर मजा करो ! आर्य समाजमें प्रवेश करो तो प्रति मास कुछ चंदा दो, रोज हवन संध्या करो, खान-पानमें विधि निषेध पालो आदि झंझटोंमें पडकर मुफ्तमें कैदी बननेसे लाभ ही क्या है यही कारण है कि, हमारे नवशिक्षित युवक आर्य समाजमें प्रवेश होना नहीं चाहते हैं। आर्य समाजकी प्रगति उपरोक्त बातोंके कारण रुकी सी ज्ञात होती है। वेद प्रचारकी वह धूम आज नहीं है, नई शाखाएं नहीं खुलती हैं, 'पत्रिका' और 'वीर' के जैसा युगके ग्राहक कलियुगमे भी उतने ही है. अपीलमें थाली नहीं भरती है, हिन्दी कम बोली जाती है और प्राचीन सभ्यता, खेतोंमें छिपी रहती है। इन सब बातों के देखनेसे आर्य समाजके भविष्यके लिये शंका उत्पन्न हो जाती है।

परोपकारिणी और प्रतिनिधि दोनों सभाओंमें ऋषि लोग (देखनेवाले) हैं। रवि वेद और दुसाध सुधारिणी सभा भी आर्य समाजिक सिद्धांतोंका प्रचार करती है। उन सबोंको एकत्र बैठ कर मोरिशसकी समस्याको हल करनेकी कोशिस करनी चाहिये। बाबा वाक्यं प्रमाणं की मनोवृत्ति को एक ओर धरकर तथा जरा साहसके साथ वे विचार करने लगेंगे तब ही उनको कुछ रास्ता सूझ पडेगा। हमारा ऋषिपन किसी धार्मिक नेहरूकी आवश्यकता देखता है। आर्य समाज यह संस्था निःसंदेह और कुछ काल तक अपना अस्तित्व प्रकट करती रहेगी, परन्तु पाख काटे हुए जटायुके समान उसे रामनाम जपना न पड़ जाय इस हेतुसे ही हमने यहा यह थोडासा विवेचन किया है।

ईसवी सन ७१२ में अरब सेनापति महम्मद कासिम ने सिंधके हिन्दू राज्यको डुबा दिया। फिर ठीक ४०० वर्ष के उपरान्त दिल्लीका राजा पृथ्वीराज चौहान और शाहबुद्दीन घोरीमें, जो घनघोर संग्राम हुआ, उसमें इस वीर क्षत्रिय जातिको भयंकर क्षति पहुंची और उनके पूर्व पश्चिमके समस्त राज्य एकर करके नष्ट कर दिये गये। दो सौ सालके अंदर भारतमें मुसलमानोंका राज्य सर्वत्र फैल गया।

इस बहादुर क्षत्रिय जातिका नाम भी बदल गया। पंजाबमें वे 'खत्री' हो गए और बिहारमें 'बाबूजी' बन गए। उन्ही प्रतापी जातिके वंशज, जमानेके पलटेमें फंसकर पिछले सौ वर्षोंसे मोरिशसमें आने लगे। उनकी संतानने साल १६३४ में उपरोक्त सभा सरकारी नियमानुकूल स्थापित की। सभाकी कल्पना श्री. प्रतापसिंहकी है। पं० देवदत्तकी सलाह है। श्री. श्री. घूरनसिंह, गंगासिंह रानदूर, शिवप्रसाद हरिद्वारसिंह, हरिप्रसाद देवीसिंह, रामप्रताप बंधनसिंह, सभाके जन्मदाता हैं। उसी प्रकार महादेव रामभजनसिंह, दितनारायण गौरीशंकरसिंह, पतिसिंह, रामनारायण रामलालसिंह और रामप्रसादसिंह नन्दुसिंह सभाके जन्म-काल से सभा-हितैषी हैं। श्री. दुर्गाप्रसाद भगत सहयोग देते हैं।

श्री. शिवशंकर घूरनसिंह एम० बी० ई० इस सभाके प्रधान है और आप ही सभाके प्राण है। जिस समय भारतियोंमें शिक्षाका नितान्त अभाव था, उस समय याने ४६ वर्ष पूर्व आपने पुलीस विभागमें प्रवेश किया। अपनी बुद्धि, कार्य कुशलता

माननीय श्री. राजकुमार गजाधर इस संस्थाके जनक हैं। वकील श्री. भागवत लाला आदि प्रतिष्ठित जनोंके सहयोगसे सन १९२५ में वह स्थापित हुई। सभा अधिकृत रीतिसे राजमान्य हो जाने पर घोषित संकल्पानुसार बाबू गजाधरजी ने अपने ज्येष्ठ भाई स्व० श्री. फकीरासिंहकी यादगिरी मे एक कीमती मकान और नौ हजार नकद रुपया संस्थाको प्रदान किया। इसी मकान में कुछ दिन एक वाचनालय भी चलता था। एक विभागमे धर्मशाला है, जो उपरोक्त फकीरा सिंहजीके नामसे प्रचलित है। मकानके एक उपकमरेमें सरकारी डाक्टर द्वारा हिन्दू पाय रोगियों की कुछ दिन चिकित्सा भी होती थी। यहांके रोयल कॉलेजकी अन्तिम परीक्षामे पहिले आने वाले विद्यार्थीको एक चान्दीका पदक संस्थाकी ओरसे अर्पण किया जाता था। प्रसिद्ध पुरुषोंके आगमन—स्वागत तथा बिदायगी सत्कारके लिये समयर पर महासभाके भवनमें होती हैं। धार्मिक तथा सामाजिक प्रश्नोंको विशेष अवसरोंपर सुलझाया जाता है। संक्रांतिके त्यौहारपर कभीर गरीबोंको धान्य दान भी होता है। सभाके प्रथम प्रधान पं० रविशंकरजी थे और लगभग ५ वर्ष तक आप उस पदपर आरूढ रहे हैं। उपरोक्त कार्य उन्हींके समयके हैं। पं० बलदेव प्रसाद तिवारी सात आठ साल तक संस्थाके उपदेशक और प्रचारक रहे हैं। कार्यकारिणी कमिटि द्वारा सभाका संचालन होता है। इस समय सभाके प्रधान श्री. अमरदयाल गजाधर है। सभाका मकान जीर्णावस्थामें था, जिसका उद्धार सार्वजनिक चन्दे द्वारा पिछले सालमें हुआ है। श्री. आर. कानावाडी तथा श्री. दुखी गंगा से अच्छी रकमें मिली हैं। माननीय

ही जाना चाहिये। हमे हमेशा अपमान निन्दा निगल जाना पड़ता है। प्रधान जी इस बातको खूब जानते है। हम कहते हैं कि, कर्म करते रहो। यत्न कभी निष्फल होता नहीं, आज नहीं कल उसका फल मिलना ही चाहिये।

कोई यह भी कह सकता है कि, हिन्दू संगठनके समय में यह अलग चूल्हा क्यों बनाया जाता है? संसार में एक धर्म स्थापन करने की विशाल कल्पना के सदृश ही हिन्दू संगठन भी एक विशाल आदर्श है। सबकी उन्नतिमें हमारी उन्नति यह एक उत्तम ध्येय है; पर जब तक एकर व्यक्ति अपनी उन्नति के लिये यत्न नहीं करेगा, तब तक समाजकी याने सबकी उन्नति होना भी मुशकिल है; इस बात को भी भूलना नहीं चाहिये। हिंदू समाज तो कुछ करता ही नहीं है। बाबूजी समाज कुछ करना चाहता है, करने दो; किन्तु उसको ढाढस देना चाहिये। कालान्तर में ये जाति सभाएं एक हो जावेंगी और हिन्दू संगठन भी हो जायगा।

यह सभा अपना एक भवन होना चाहती है, कुछ धन भी संग्रह हुआ है। सुधार और संशोधनके प्रस्ताव होने लगेंगे, तब ही तेरी मेरी होने लगेगी। इस समय तो सामग्री जुटा आ रही है। क्षत्रियवर्गकी इस सभाके साथ सहानुभूति है और हमें आशा है कि, अपनी उज्वल प्राचीन परंपराको सदैव दृष्टिके सम्मुख रख कर हिन्दू समाजमें उनका जो दर्जा है, उसके अनुकूल कार्य करके स्वजाति की तथा संपूर्ण हिन्दू जनता की सेवा इस

हैं, हाथ देते है. कामकाज करते हैं और कभी खा भी लेते है; पर कहते है बेटीका नाम नहीं लो ! कुछ ऐसी ही स्थिति शूद्रादियों ने आर्यसमाजमे देखी और उनका स्वाभिमान जागृत हुआ। फल-स्वरूप उन्होंने अपनी एक नई सभा खडी की। यह तो गांधीजी के हरिजनोंकी सभा है, जो कि किसीका विरोध नहीं करती है; पर अन्य जातियोंका हस्तक्षेप भी अपने कामोंमें नहीं चाहती है। उनकी सभाके कर्मचारी और उनके पंडित उनकी ही जाति के हैं। इतना ही नहीं किन्तु अपनी जातिका समस्त धार्मिक कार्य, अपनी जातिके पंडितोंसे ही करानेपर लोगों को वे बाध्य करते हैं। द्विजोंमेंसे कोई उनेका कार्य करता नहीं और धर्मकर्मोंमे प्राचीन समय से आज दिन तक वे वंचित ही रहे हैं। अब मानों कि, इस सभाकी ओरसे उनको धार्मिक स्वराज्य ही मिल गया है। हमने ऊपर लिखा है कि, अन्य जाति वाले उनसे शरीर सम्बन्ध नहीं करते हैं न उनके साथ खाते पीते ही है, जिससे उनकी जातिका संगठन आपसे ही हो गया है। उनको अपने गोल में ही रहना पडता है। रोटी-बेटीके पेचमें फंसे हुए होनेके कारण वे हमेंशा दबे रहते हैं। उनके चतुर नेता अब इस स्थिति से लाभ उठाना चाहते हैं। सभाके जन्मदाता और पंडितोंको आर्यसमाजकी कार्यप्रणालीका अनुभव है और उसी पद्धतिपर यह समाज अपना कार्य करता है। अपनी जाति और मोरिशसकी परिस्थितिको ध्यान मे रखकर यह धीरे२ कदम उठाता है। खान-पान पर यह सभा बहुत जोर नहीं देती है। धर्म-भावना या देवी देवताओंकी पूजापर यह सभा हथियार नहीं चलाती है। उन्होंने एक बीचका रास्ता लिया है और आहिस्ता २ उसका अनुसरण कर रहे हैं।

अर्थ लगाया जाता है। क्षत्रियका कर्त्तव्य है कि, देश, जाति और धर्मकी रक्षा करना। इतिहासकालसे ही देखा जाय तो लगभग दो ढाई हजार वर्ष, क्षत्रिय जातिका प्रभुत्व भारत मे रहा है। दो हजार साल तक वे बराबर विदेशियोंके साथ टक्कर देते रहे हैं। इतने दीर्घकाल तक, जिन्होंने राष्ट्र की रक्षा की है, उनमे पौरुष और शूर वीरता कितनी होनी चाहिये यह कहने की आवश्यक्ता नहीं है।

ब्राम्हण, क्षत्रिय. वैश्य और शूद्र, ये वर्ण विभाग, हिन्दू धर्म में स्थिर और कायम हो जाने पर मरना मारना यह एक ही पेशा, क्षत्रियोंका हो गया और शत्रुका सामना करनेका सारा भार क्षत्रिय जातिपर ही पड जानेसे विदेशियोंके बार २ होने वाले आक्रमणोंसे उसका शरीर विदीर्ण होने लगा उनको पहला जबरदस्त धक्का, कौरव पांडवोंके गृह युद्धमे लगा। इस भ्रातृ हत्या ने इस जातिको ठठरी बनाकर छोडा था कि, बाहरके लोगों ने उनको दबाना शुरू किया। तो भी दो हजार वर्ष तक वे पीटते पिटाते डटे रहे। ये युद्ध भारतकी उत्तर दिशामें अर्थात् पंजाब मे हुए है। भारतके पूर्व पश्चिमके राजाओंको, विदेशियोंके साथ संग्राम करनेकी आवश्यक्ता न होनेसे वे आपसमे लडकर निजको अजीत्य मान लेते थे और इस मिथ्या भावसे उनमें अनेक दुर्गुणोंका संचय हो गया था. शत्रु न होने से वे बेपर्वाह बनने लगे और अपने श्रेष्ठ एवं पवित्र कर्त्तव्य धर्म और जाति की रक्षा को वे भूल गये और भोग विलास में उनका जीवन व्यतीत होने लगा। इसका जो फल निकलना चाहिये था वही निकला।

और अनुभवके बलपर आप धीरे धीरे चढते ही गये और इन्स्पेक्टर आफ पुलीसके ओहदेपर रहते हुए आपने, तीन साल हुए, पेंनशन ली। इतने बडे अफसरके पदपर पहुंचनेवाले आप पहले भारतीय है। सरकारने भी उनको सेवानिवृत्त हो जानेपर M. B. E. (ब्रिटिश साम्राज्य के सदस्य) की उपाधि प्रदान करके उनका सम्मान किया है। सरकारकी सेवा से छुट्टी पाते ही आपने समाज-सेवा अखतियार की है। आर्येन वैदिक स्कूलके आप मैनेजर नियुक्त हुए। आर्य परोपकारिणी सभाके अनाथालयके लिये आपने उग्रहण किया। बिहार भूकंपके चन्देमें आपने ऐसी ही मेहनत की है। कई सोसायटियोंके आप सदस्य है। आप सुधारवादी है और धार्मिक सामाजिक कार्योंकी धन से सहायता करते हैं और उनमे सक्रिय भाग लेते हैं। अपनी जातिवालोंकी सभाके वे स्वयं एक जनक ही है। उसका अनुभव उनको हमारे ख्यालसे थोडा कटु ही है। घर घर जाकर सभाके लिये आपने चंदा और सदस्य इकट्ठे किये हैं। देश जातिकी रक्षा करनेका भार अब क्षत्रियोंपर नहीं है; पर धर्मकी रक्षा अब भी उनसे हो सकती है। यह करनेसे पहले स्वजातिका संगठन करना और निजकी बुराइयोंका निर्मूलन करके खुदमें सुधार करनेके हेतुसे इस सभाका आरोपण हुआ है।

घूरन सिंहजी ने दीर्घकाल तक, करीब अर्ध शतक हिन्दू अहिन्दू समाजकी सेवा की है। ऐसे अनुभवी मनुष्य न विरोध की पर्वाह करेंगे न अपनी जाति की दुर्दशा देख कर ही निराश होंगे। सामाजिक कार्मोंमें मान अपमानको जरा भूल

जामका है।

दूधका धंधा हिन्दुओंका है; पर मक्खन बेंचने वाले मुसलमान! मुर्गी पालता है हिन्दू और अण्डा बेचता है मुसलमान!! मांस भक्षण के निषेधसे पशु संवर्धन जैसा महान लाभदायी व्यवसाय, हिन्दुओंके हाथसे निकला जा रहा है और उस प्रमाणमें हिन्दुओंको आर्थिक हानि पहुँच रही है।

बहुतसे दुसाध, वराह-पालन करते थे। 'आर्य' बनने पर उन्होंने उस धंधेको छोड दिया और कुदाडी पकड कर वे खेत में गये। इस प्रकार एक ही धंधे में गर्दी की जाती है और मजदूरी भी इसी से घटती है, जिससे हिन्दू मजदूर का हाथ केवल पेट तक ही पहुँचता है। यही कारण है कि, हिन्दुओं के लिये उपजीविका का उनका एकमात्र साधन कुदाडी रह जाता है। यही कारण है कि, हिन्दू जनता, दूसरे धर्मियोंकी अपेक्षा अधिक गरीब और अधिक भोली है। हिन्दुओंमें कुछ थोडों को छोड कर बहु संख्या खाने पीने वाली है। हिन्दुओंकी सारी बातें उलटी। आजकल दुनियाका काम-काज बहुपक्षसे होता है; परन्तु अल्प संख्या वाले हिन्दू, बहुसंख्या को नीच और तुच्छ मानकर अपनी इच्छा उनपर लादते हैं। परिणाम यह होता है कि, मास खाने वाले की बहुसंख्या होनेपर भी लोक लज्जा के कारण वे स्वयं ऐसे व्यवसाय करने को हिचकते हैं। इस प्रकार उनके आचरणपर दांभिकताकी काली छाया पडती है, जिससे धर्म और समाज दोनोंकी हानि होती है। जिन बातों से व्यक्ति और समाजका शील नष्ट होता है और समाज दरि-

सभा से होगी। श्री. पूरनसिंहजी ने सभा के वास्ते इसी साल एक मकान खरीद कर रखा है।

# श्री दुसाध सुधारिणी सभा

## मोरिशस।

जाति सभाओंका बाजार आजकल खूब गरम है। उनमें सबसे पुरानी यही सभा है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, ठाकुर, कोयरी सभाएं आदि के समान यह संस्था अपनी जाति के लोगों के लिये बनी है।

जाति वाले ही उसके सदस्य हो सकते हैं। द्विज जातियां अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य, सहभोजन या अन्तर्जातीय विवाह आदिमें अब उतना कट्टरपन नहीं प्रकट करते हैं; पर शूद्र, खासकर चमार, दुसाध प्रभृति जातियों के सम्बन्धमें ऊपरके त्रि-वर्णिक अबतक वही प्राचीन कड़े और रूखे सम्बन्ध रखते हैं। मोरिशसकी दो लाख हिन्दू बस्तीमें, कहते हैं कि, एक लाखसे अधिक यही शूद्रादि समाज है। उनमेसे कई एकों ने आर्यसमाज में प्रवेश किया है। मुख्यतया उन्हींसे आर्यसमाज बना है, यह कहनेमे अतिशयोक्ति नहीं होगी।

आर्यसमाजमें १५–२० साल रह कर भी उन्होंने देखा कि, वे जहां के तहां ही हैं। न अन्य जाति वाले उनकी कन्या लेते हैं, न उनको अपनी देते हैं गोरे लोग कालोंके साथ बोलते हैं, हँसते

र्थक ही समझनी चाहिये। किसीके ऊपर मेहेरबानी करनेसे आज के ज़मानेमें काम नहीं चलेगा। शूद्रपर कृपा करके उसको हम मंदिरमें आने देंगे अथवा अतिथि समझकर उसको बैठनेको आसन देंगे इस भावसे शिक्षित शूद्र समाजको आज संतोष नहीं हो सकता है। औरोंके समान मंदिरमे जाकर भगवानका दर्शन करना मेरा हक है, शूद्रके इस दावेको स्वीकार करने वाले त्रिवर्णिकोंमे से कितने मिलेंगे? तात्पर्य संगठन के नामपर दलित जातियोंको, उनकी प्रगति के मार्गमें रोड़े फैला कर रोकना, हम उचित नहीं समझते हैं। किन्तु हिन्दू समाजका अंग उपांग बलिष्ट होनेमें ही सारा समाज शक्तिमान् और वीर्यशाली बनता है। इस बातको भी नहीं भूलना चाहिये। शूद्र वर्ग ऊंचे सिर से देखने लग जाय तो अन्य जातियोंकी आख आपसे सीधी हो जायगी और दोनों एक दूसरेके बलका अनुभव करके परस्पर मित्र बनेंगे। मित्रता, बराबरीके मनुष्योंमें होती है, ऊंचे नीचेमें नहीं। बाघ बकरीमें प्रेम रहेगा? कुत्ता और उसके स्वामीमें, जो भाव है, वह मित्रताका नहीं; किन्तु मालिक और गुलाम का है। हिन्दुओंमेंसे यह सेव्य सेवकताका व्यहार नष्ट नहीं होगा तबतक दबी जातियोंके लिये सिवाय निजके संगठनके और कोई उपाय नहीं है। इस लिये दुसाध सभाको हम कोई दोष देना नहीं चाहते हैं।

लिखे पढोंकी संख्या उनमें बहुत अल्प है तो भी शील, सद्व्यवहार, प्रेम, सचाई, सादगी, श्रद्धा और आत्म विश्वासके आधारपर उनका कार्य होता जाय तो यह सभा उन्नति ही करती जायगी और लोगोंके आदर-पात्र होगी। चोरी चपाटी, ईर्ष्या,

आर्य समाजने 'वैदिक' और 'नमस्ते' इन दो शब्दोंको यहांके हिन्दू समाजमें रूढ़कर दिया है। दुसाध समाज उनका पर्याप्त उपयोग करता है। उनकी सभा, इस समय इस बातपर ही अधिक बल लगाती है कि, दुसाध जातिवालोंको 'वैदिक विधि' से ही अपने समस्त धार्मिक कार्य कराना चाहिये। इस तरह अपनी जातिको एक सूत्रसे बांधकर उनमें एक शक्ति और नवजीवन पैदा करनेका सभाका उद्देश्य है। आर्य समाजके सिद्धांतोंका अनावश्यक बोझा, इस अनपढ़ और अंध श्रद्धा वाली जातिपर लादकर उनको हांकना यह सभा नहीं चाहती है।

पशु-संवर्धन, यह एक, मानव-समाजके लिये अत्यंत उपयोगी व्यवसाय है। दूध, मांस, अण्डा, चमड़ा, हड्डी, वाहन, खेल, खेती आदिके लिये पशुओंकी, समाजको अत्यंत आवश्यकता है। परन्तु आर्य-समाज, मांस भक्षणका जोर शोरसे निषेध करता है। लोगोंको मांस खानेसे बचाया इस बातका उसको बड़ा गर्व रहता है। उसके सिद्धान्तके अनुसार वैसा उपदेश देते रहना उसका कर्त्तव्य ही हो जाता है। अर्थ शास्त्र की दृष्टिसे समाजको, जो नुकसान होता है, उसे भी देखना चाहिये। बूढे दुर्बल, या रोगी जानवरोंके साथ क्या किया जाय? उनको बैठे खिलाने की मालिकोंमें शक्ति नहीं है। मांसके लिये उन्हें काटना या कसाईको बेचना भी आर्य समाज या हिन्दू-सिद्धान्तके विरुद्ध है। इस हालतमें आर्थिक दृष्टिसे पशुपालन, लाभदायी कैसे हो सके? जीवनमें पहला विचार

उनको अच्छा अनुभव है। एक समय आर्यसमाजके आप एक स्तंभ थे। दुसाध जाति कट्टर और अशिक्षित होनेसे उनको सुधारना बहुत ही कठिन है तो भी प्रयत्न करते ही रहना चहिये। धीरे धीरे उनको समझा बुझा कर उनमें से एक एक कुरीतिको दूर करना चाहिये। अपनी जातिको सुधारनेके इनके ढंगके बारेमें हमने, जो ऊपर लिखा है, वही हम समझते हैं कि, सर्वथा उचित है।

कहते हैं कि, उनकी १२५ चटाई हैं। उनकी संख्या ५० हजार के करीब समझी जाती है। एक चटाईमे बालबच्चोंके साथ ४०० मनुष्य होते हैं। कहीं कम होंगे तो कहीं अधिक। चटाईका अर्थ संघ या समूह है। चटाई पर बैठनेका जिनका समान अधिकार ऐसे लोगोंका, जो समूह उसीको चटाई कहते हैं। इनमें भी कई उपजातियां हैं। पहले इन जातियोंको एक सूत्र मे बाध कर उनको संगठित बनाना और फिर उनमें आहिस्ता२ सुधार करना कुछ खेल नहीं है।

श्री. पंचूप्रसादजीके आरम्भके कतिपय साथी यथा श्री० श्री० सुद्धू, भरत, जगन्नाथ आदि चल बसे है; परन्तु श्री० श्री० गोपाल कप्तान, सोमारु कप्तान, रामलोचन, रामरूप कौलेसर, गजाधर जीना, दौलत, नौबत, रामकृष्ण, सिचरन साधु आदियोंके सहयोगसे सभा एक२ कदम रास्ता चलती जा रही है। पं० पं० रामकृष्ण, लछमण, शिवगोविंद, रामदेव, सहदेव राजू, हरि, रामननन, देवनारायण और अर्जुन सभाके प्रचारक
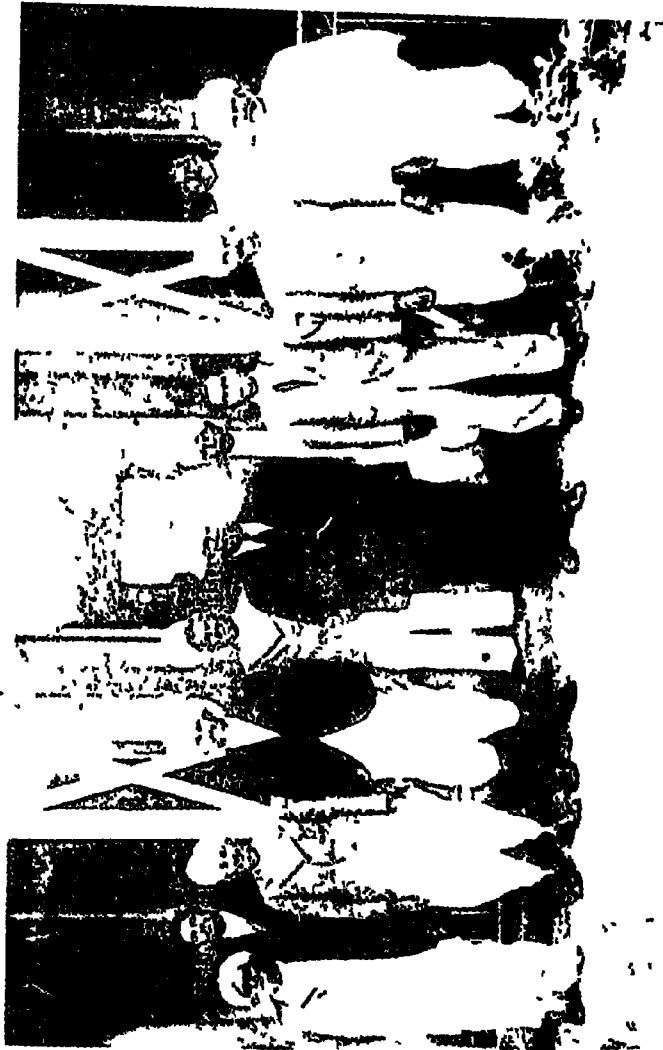
Members of the Managing Committee of the Kshatreeya Maha Sabha, Port Louis

और धन भी है। इन महाशयोंसे बहुत कुछ हो सकता है। थोड़े दृढ़ संकल्प और त्याग भाव की आवश्यकता है। आर्य रवि वेद प्रचारिणीका कार्य उनके सामने है। ऐसे कामोंमें ईर्ष्या प्रतिस्पर्धा (rivalry) अवश्य होनी चाहिये। हमको आशा है कि, यह सभा अब जरा तेजीसे चला करेगी। आर्यत्वके नाते से हम सभाको आशिर्वाद देते हैं और दुसाध जातिकी उन्नति चाहते हैं।

---

# गीता प्रचारक महामंडल।

## पोर्ट लुईस

सात वर्ष पूर्व भारतसे आये हुए संस्कृत के विद्वान पं० रामगोविन्द शास्त्रीके प्रचारसे इस द्वीपमे सुप्रसिद्ध ग्रन्थ भगवद्गीताकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित हुआ। ब्रम्हदेशके मंडालेके जेल में राजकैदी स्वर्गस्थ लोकमान्य तिलक रचित अद्वितीय भाष्य 'गीता रहस्य' ने आर्यावर्त में एक नवजीवन सा पैदा किया है। वही लहर शास्त्रीजी द्वारा मोरिशसमें भी आ पहुँची और फल स्वरूप उपरोक्त संस्थाकी गीता प्रचारके लिये राजधानी पोर्टलुइस मे सन् १६२६ के सालमें स्थापना हुई।

फल ईश्वराधीन समझकर देश और कालके अनुसार कर्म करते रहने की शिक्षा देने वाला त्रिकालाबाधित सिद्धान्त सं-

ही बनता है, उनमे हमारी रायसे संशोधन या पुनर्विचार होने का अब समय आ पहुंचा है। एक छोटीसी जाति ही करनी पडेगी। दुसाध सभा लोगोंके खान पानमे नाक नहीं डालती है, यह ठीक है।

इस सभा के ऊपर यह आक्षेप किया जाता है कि, हिन्दू संसारकी हर एक जाति इस प्रकार अपनी२ खिचडी अलग पकाने लग जाय तो हिन्दू समाज छिन्न विछिन्न हो जायगा और आपसमें ही झगडे फसाद शुरू होंगे तथा आज जो हिन्दू संगठन की बातें हो रही है, उसको भी धक्का लग जायगा। जहां सबके धार्मिक अधिकार समान है और सामाजिक दर्जा बराबरीका है, वहां अलग चूल्हा बनाना, समाजको निःसन्देह दुर्बल बनाना है और उपरोक्त आक्षेप बिलकुल ठीक है, परन्तु इस प्रकाशके जमानेमें भी जबतक जन्मके कारण ही किसीको नीच माननेमें आयगा, तबतक हिन्दुओंका संगठन होना असंभव है। खान पान और विवाह जबतक जारी न होंगे, तब तक यह संगठन काले-गोरे के सम्मेलनके समान ही रहेगा। शाक भाजी खरीदनेको सब धर्मके सब रंगके और सब जातियों के लोग बाजारमे प्रति दिन आते हैं और शान्ति पूर्वक सौदा पाती खरीदकरके घर लौट जाते है। घुडदौड के दिन तमाम जातियोंके हजारों स्त्री-पुरुष शादेमार्सके मैदानमें उपस्थित होते हैं। अगर इन जुटावोंको संगठन कहो तो वह अनादिकाल से बना हुआ है!! समाजके हर एक लायक व्यक्ति को जबतक समान अधिकार प्राप्त नहीं होगा तबतक संगठनकी चिल्लाहट निर-

Mr Nandoochand Sao of Terre Rouge, President and Proprietor of the temple over there

द्वेष, स्त्री और घमण्ड आदि देश जाति भक्षक दुर्गुणोंसे बचने के लिये सभा वालोंको अत्यंत खबरदारी करनी चाहिये। हम आशा करते हैं; किन्तु हमें विश्वास है कि, उनका कार्य दिन प्रति दिन बढते रहेगा और उनकी प्रगतिके सामने सिर झुका कर अन्य जाति वाले उनसे हाथ मिलानेके लिये लालायित रहेंगे।

पिछले २० वर्षों से यह सभा, जाति सुधारके लिये यत्न कर रही है। आर्य रविवेद प्रचारिणी सभाके सामने जो प्रश्न है, वही दुसाध सुधारिणी सभा को सताता है। चाहे आर्य बनो या कबीर बनो, दुसाधके दुसाध ही। इस हालतमे दूसरोंके मुँह ताकने की कोशिश करना यह एक ही मार्ग उनके लिये खुला रहता है। उनकी नीति रविवेद सभा जैसी है। 'मोरिशस पूर मोरिशीएं' अर्थात मोरिशस मोरिशियनों के वास्ते। दुसाध-सुधारिणी सभाका भी हम समझते हैं कि, यही वृद्ध वाक्य दुसाध के लिये है। इस नीति को हम पसंद करते हैं। वहा यह ध्यान मे रखना चाहिये कि उपरोक्त नीतिका सम्बन्ध केवल धर्म-कर्म के साथ ही है, कामकाज के साथ नहीं। जबतक दूसरा कोई अपना हाथ आगे नहीं बढाता है तब तक तुम भी अपना हाथ जेबसे बाहर नहीं निकालो। बाप बोलनेसे काम नहीं चलता तब साला कहना चाहिये। संसारकी यह ऐसी ही गति है। अपने धर्मको ठुकरा कर परधर्म मे जानेकी अपेक्षा यह 'साला नीति' अधिक लाभदायी और वीर वृत्तिका दर्शक है। रविवेद सभाके लेख मे हम ने इस विषयके सम्बन्धमे विस्तार से लिखा है।

श्री. पंचूप्रसाद इस सभाके जन्मदाता हैं। आर्यसमाज का

जिसमें २५–३० बाल बालिकायें हिन्दी की शिक्षा पाती हैं। सीना, कसीदा भी सिखाया जाता है। तीन साल तक श्री. दुर्गाप्रसाद भगत प्रधान रहे हैं, जो गीता प्रचारके लिये सदैव परिश्रम करते रहते हैं। हिन्दी और अंग्रेजी गीता पुस्तके आप मुफ्त वितीर्ण करते है। हमने यह भी सुना है कि, लोगों को पकड़कर कर लोतोबिस द्वारा उत्सवादि अवसरों पर मोरिशस भर की यात्रा करके आप उनको शिवदर्शन कराते हैं। ईशस्तुति और प्रार्थनाके पत्र आपने टापूके कोनेर में फैला दिये हैं। आप उपदेशक और प्रचारक भी हैं। जहा पांच पचास मनुष्य देखते है, वहीं भाषण शुरू कर देते हैं। इन सब कामोंके वास्ते धन की आवश्यक्ता है और ऐसे कामोंमें आप उसे व्यय करते हैं। उनकी भारत की यात्रा हो जानेपर मानों कि, उनकी काया पलट ही हो गई है।

श्रीमान् भगवानदास लाला यहां के कार्यकर्त्ताओंमेंसे है। उनमें धर्मान्धता या धार्मिक असहिष्णुता न होनेसे किसी भी हिन्दू संस्थामें आप भाग ले सकते हैं. उनकी समतुल बुद्धि, शांत प्रकृति, उनकी प्रतिष्ठा, शुद्ध भाव, शील और स्पष्ट उक्तिके कारण जनता सामाजिक बातोंमें आपसे ठीक सलाह मिलनेकी आशा करती है। गीता महामंडलके आप एक आधार स्तंभ हैं। इतना कहने से ही उनका परिचय हो सकता है।

शिक्षित युवकोंमें श्री॰ शुकल. खे. गया, जो कि इस समय महामंडलके मंत्री है, नये और पुरानेमे आप हमेशा एक कड़ी का काम करते हैं। वैसे ही दूसरे महाशय श्री. वी. एस. नायडू है। श्री. श्री. रामजतन गंगा और लक्ष्मण राव राघव, संस्था

उपदेशक और पुरोहित हैं। चमार दुसाधोंके धार्मिक कार्य ब्राह्मणों द्वारा नहीं होते थे । आर्य समाजके प्रचारने हिन्दू धार्मिक विचारोंपर जो अपनी छाप लगाई है, उसका पहिला परिणाम ब्राम्हणोंका गला छूट जानेमें प्रकट हुआ ब्राम्हण भी सुधरे और दुसाध आदियोंके विवाह, श्राद्ध आदि संस्कार अब ब्राम्हणोंसे होते हैं। लेकिन यह 'लो तार' अति विलंबसे हुआ है; क्योंकि शूद्र माने हुए लोगोंमें ही अब पंडितोंकी सृष्टि होने लगी है। इस प्रकार इन जातियोंमें पंडितोंकी उत्पति होना और उनमें उनका मान होना यह एक ही बात पुरोगामी हिन्दुओंके लिये स्फूर्ति और आशा देनेवाली घटना है। संसार की गतिको न जाननेवाले हमारे सनातनी मित्र हमारे विचारसे सहमत नहीं होंगे इस बातको हम अच्छी तरह जानते है। परन्तु द्विजोंके हठसे भारतमें हिन्दु धर्मपर, जो महा संकट आ रहा है, उसका विचार करते हुए यही कहना होगा कि, अछूतोंको अपनानेमें ही हिन्दू धर्मकी खेर है। चाहे कितना ही कोई कट्टर सनातनी क्यों न हो वह कभी नहीं चाहेगा कि, ५ करोड (५० मिलियों) हरिजन परधर्मकी शरणमें जाय। मोरिशसका सुधरा हुआ हिन्दू समाज तो ऐसी बातको कभी नहीं स्वीकार करेगा।

दुसाध सुधारिणी सभाकी अभी रजिष्टरी नहीं हुई है, जो नियमबद्ध रीतिसे सभा का काम चलनेमें एक बाधा ही है। रिवर रांपारके वृद्ध, अनुभवी प्रतिष्ठित रईस श्री. सोमारु कप्तान इस सभाके प्रधान हैं। श्री० पंचूप्रसादजीमें सेवाका भाव है

होता है। पं० जानकीप्रसाद इस शाखाकी आत्मा है। शाखा-का भवन, जिसमें पाठशाला चलती है; सार्वत्रिक चंदेसे बना है।

## शाखा नं० २

यह सन १६३२ में बोयासेमें श्री० लक्ष्मणराव पवारजी के उद्योग और पुरुषार्थसे बनी है। उनकी पत्नी सौभाग्यवती भागीरथीकी भवनकी व्यस्थाके लिये अच्छी आर्थिक सहायता हुई है। एक पाठशाला भी उसमें चलती है। सार्वजनिक चंदे से भवनकी निर्मिति हुई है। कर्त्ता धर्त्ता श्री० पवारजी है। श्री० संभुप्रसाद दुबे विना वेतन पढ़ाते हैं। और शाखाके प्रधान श्री० शिवनन्दन शर्मा समयर उनको सहायता करते हैं. करीब ४० छात्र पढ़ते हैं। व्याख्यान, गीता पाठ, सँगीत आदि द्वारा समयर पर जागृतिकी जाती है। वहांके लोगोंमे निष्कारण मत भेद न हो तो यह शाखा पहिली श्रेणीकी गिनी जायगी.

## शाखा नं० ३.

श्रीमान दुखी गंगाजीने यह शाखा न्यू ग्रोवमें स्थापन की हैं। उनके छः भाइयोंका परिवार ही लगभग सवा सौ मनुष्योंका है। प्रति एकादशीको वहां गीता पाठ होता है। कार्य-कर्त्ता उनके भाई श्री० रामजतन गंगा है. एक पाठशाला भी है. श्री० गंगाजीकी प्रतिष्ठाके कारण गीताके अवसरपर अच्छा मेला लगता है. गीता भवनके लिये आपने एक घर दे दिया है. सब व्यय आप ही करते है. इस शाखाके कार्य केवल

सारके और किस पुस्तकमें मिल सकेगा? अकर्मण्यताके गढ्ढेमें पड़े हुए लोगोंके उत्थापनके वास्ते गीता शिक्षा प्रचार ही एक सर्वमान्य अध्यात्मिक उपाय माना गया है। इसी उच्च हेतुसे प्रेरित होकर सेठ भगवानदास काला तथा श्री. दुर्गाप्रसाद भगत आदि सज्जनोंके उद्योगसे उक्त संस्था निर्माण हुई है। सरकारी नियमानुसार सन १९३० में वह राजमान्य संस्था घोषित हुई है। यहां के विख्यात दानशूर धर्मात्मा दुखीगंगाजीकी दान दी हुई भूमि पर संस्था ने सार्वत्रिक चन्देसे निजका एक भवन बनाया है। पांच हजार से अधिक रुपया भवनमें लगा है। मंडल के पहिले प्रधान पं० शिवशंकर राजपाल (पाठक) थे। संस्था की कार्यकारिणी कमिटी द्वारा संस्थाका संचालन होता है। श्री. रामचन्द्र रामा, श्री. नटराज शिवरामेन, श्री. हरिप्रसाद दूबे प्रभृति अपना समय संस्था के काम मे व्यय करते हैं। भवनमें भारत के प्रसिद्ध देशभक्तोंके चित्र लोगोंको अपनी मातृभूमि की स्मृति और ज्ञान करा देने मे सहायक होते हैं।

गीता भवनमें व्याख्यान, उपदेश, भजन, चर्चा, गीतापाठ आदि कार्यक्रमसे लोगोंको समय२ पर गीताका रहस्य बतलाया जाता है।

मद्रास प्रांतीय एक सच्चिदानंद परम हंस योगी यहीं ठहरे हुए थे। उनके व्याख्यान तथा योग-प्रयोग गीता मंडल द्वारा ही होते थे। प्रसिद्धजनोंका सत्कार, विवाह, उत्सव, सभा आदि कार्योंके लिये यह भवन जनता को अच्छा लाभ पहुंचाता है। एक रात्रि पाठशाला भी संस्थाकी ओरसे चलती है, जिसमे

ाकी रकम तैयार करके भवन आदि बनाकर शाखको दृढ़ पायेपर स्थिर किया। प्रधान और उपप्रधान श्री० श्री० राम-रूपसिंह और चतुर्गुणजी है। श्री० श्री० रामवरन चौधरी, तिलक जगन्नाथसिंह, नोनसिंह तथा दधिवल मेदीदीन राऊत आ-दियोंके सहयोगसे शाखा कार्य करती जाती है।

गीता महा मंडल हिन्दी पढाईकी ओर अधिक ध्यान पहुं-चाता है यह प्रसन्नताकी बात है। प्राथमिक शिक्षा, मानव-जीवनका पाया है।

---

## श्री० सनातन धर्म ब्राह्मण महा सभा

### पोर्ट लुईस।

आज आठ दस सालसे ऐसी कोई सभा बनानेकी चर्चा सुननेमें आती थी। रोसबेलके स्व० पं० रघुनी महाराजने इस संबंधमें यत्न किया था और कुछ पैसा भी एकत्र हुआ था। उनकी मृत्युके बाद यह आन्दोलन ठंडा पडा और फिर दो साल पूर्व देशी पं० लक्ष्मीनारायण चौबे, जोकि रसपुलकी यदु-वीर यहां ज्ञान है, अमर पंडित, श्री० म० बरन चौबे, पं० हरिशंकर दीक्षित आदियोंके परिश्रमसे सरकारी संस्कारों द्वारा पिछले साल उसकी स्थापना हुई है। उसके पहले प्रधान पं० देवदत्त शर्मा थे अब देशी पं० राधाकृष्ण शास्त्री है।

ब्राह्मण. विधाताके मुखसे निकले हैं और उसका प्रमाण 'ब्राह्मणोस्य मुख मासीद्' इस पुरुषसूक्तकी वैदिक ऋचासे दिया

यह ब्राह्मण जाति कितनी प्राचीन और कैसी लचीली है, यह हमारे पाठक अब जान जायेंगे। ब्राह्मणोंका आसन इस समय भले ही डगमगाता हो, परन्तु वह अबतक टूटकर गिर नहीं पडा है। इस लिये ऐसे संयोगपर वे अपना संगठन कर रहे हैं और अपना आसन दृढ़ करना चाहते हैं, इसमें कुछ बेजा नहीं है। मोरिशसमें हिन्दू धर्म और समाज की जो स्थिति है, उसके ब्राह्मण ही कारण है। अगर यहा ब्राह्मण नहीं होते तो नहीं मालूम हिन्दू धर्म कहाँ होता? यहाँ हिन्दू नहीं होते तो आर्यसमाज अपना प्रचार कहाँ करता? यह सब कह देने पर मोरिशसमें ब्राह्मणोंकी क्या स्थिति है, यह अब जरा देखना चाहिये। अपना आर्यावर्त्त छोडकर समुद्र उल्लंघन करके वे यहां आये और हिन्दू धर्मकी ध्वजा इस अनार्य देशमे फहाई यही एक उनके बंधन–तोडन--पराक्रमका पहला साक्षी है। उन्होंने संकुचित और अनुदार परम्पराको ठुकराया और नया स्पिरिट (तेज) प्रकट किया, जिसके लिये उनके साहसकी प्रशंसा करनी चाहिये। परन्तु मालूम होता है कि, यहा आनेपर वह तेज ठंडा हो गया और अपने पुरोहिती पेशेमें तेजी देख कर भारतकी परिपाटी को वे यहा फिर चलाने लगे। चाहे हिन्दू लोग भारतमें हो चाहे निशाचरोंके देशमे हो, पंडित और उनके यजमान दोनों की यही धारणा रहती है कि, परम्परा को चलाना ही धर्म का पालन करना है। एक अर्थमें वह ठीक भी है।

मोरिशसकी परिस्थिति कैसी है, हिन्दू धर्मके शत्रु कौन है, उनका मुकाबला कैसे करना आदि बातोंके विचार अब आने

की स्थापना करने वालोंमें से हैं। श्री. श्री. नारायणदास वाला और भगवान गींगा भी कमिटिके सदस्य हैं।

इस समय संस्था के प्रधान श्री. लक्ष्मीप्रसाद बुलाकी (पांडे) जो कि पेनशनर अध्यापक है, वृद्धावस्थामें भी अपना धार्मिक जोश कायम रखते हुए अपना काम ले जाते हैं। यहाकी हिन्दू किसानी प्रजा में गीताके तत्व ज्ञानका प्रचार करना कितना कठिन कार्य है, यह कहनेकी आवश्यक्ता नहीं। परंतु हिंदू समाजमें देवी-देवता और मत-मतांतरोंका, जो जाल फैल गया है और उसमे सारी जनता कैसी फँसी पड़ी है, यह विद्वानोंको भली भांति विदित है। इस जंगलमेंसे उनको बाहर निकाल कर मैदान की शुद्ध हवामे उनको लाना यही गीताका सर्व प्रधान हेतु है। इस हेतुकी पूर्त्तिके लिये परिश्रम भी वैसे ही होने चाहिये। हिन्दू जनता को राजी रख कर येनकेन प्रकारेण संस्था चलाना इतने ही उद्देशसे कार्य होता रहे तो गीताकी शिक्षाका हेतु साध्य नहीं होगा और गीता मंडल हिन्दुओंके अनेक संप्रदायोंमे और एक बढोतरी होगी। कुछ क्रांति ही करनी चाहिये। गीता मंडलकी पांच शाखायें हैं, जिनका विवरण यह है:—

## शाखा नं० १

यह शाखा फिरपीप रोडमें है। उसके प्रधान जानकीप्रसाद पंडित है और मंत्री पंडित महीपत है। सन १९३२ में उसकी स्थापना हुई है। शाखाकी एक हिन्दी पाठशाला भी है, जिसमें समीपके ३० बाल-बालिकाएं शिक्षा पाती हैं। श्री. श्री. सिव हनुमान जी, लीला प्रभृतियोंके सहयोगसे शाखाका संचालन

धार्मिक दृष्टिसे होते रहते हैं. एक ही व्यक्ति द्वारा प्रबंध होता है, जिससे मत भेदको स्थान नहीं है। मोरिशसमे गीता-सम्प्रदायके संस्थापक पं० रामगोविंद शास्त्रीकी उनके प्रयाण समय पर श्री० दुखीजीने यथोचित विदायगी की थी।

## शाखा नं० ४

दो साल हुए, फोरेस्ट साइडमे इस शाखाकी स्थापना हुई है। वहांके प्रधान श्री० किसुन भागरीत है और मंत्री बनी मोहित है। सदस्योंकी अच्छी संख्या है। मोरिशसकी आर्थिक स्थिति बिगड जानेसे भवन और पढाईका प्रबंध होनेमें विलंब लगा है। धनाढ्य लोग ऐसे कामोंमे उतनी रुचि नहीं रखते हैं, जिससे ये काम मंद गतिसे ही हुआ करते है। इन्तजाम और चंदा हो रहा है और साल दो सालमे यह शाखा भी काम करनेवाला बन जानेकी आशा की जाती है। अब पाठशाला बन गई और पढाई आरम्भ हुई है।

## शाखा नं० ५

यह शाखा सेंपोलमें साल १९३३ में खुली है तो भी उसकी प्रगति संतोषदायी है। निजका भवन बनाकर उसमें बच्चोंकी पढाई शुरूकर दी है। दुधिबल कुटुम्बने भवनके लिये अपनी भूमि दान दी है। पिछले साल श्री० धूरनसिंह एम० बी० ई० के प्रधानत्वमें एक सार्वजनिक वृहती सभामें अपील द्वारा ८०० रुपयाके करीब जमा हुआ था। वहांकी जनताने

लेरी बनाई थी, वैसी बहादुरी फिर बतानेका समय आ गया है।

इस प्रकाशके समयमें ये अग्र मुखोत्पन्न ब्राह्मण ही गुंगे बन कर रहें, यह हो नहीं सकता है। पुरोहित वृत्तिको, रोटी कमाने का एक धंधा मानकर उसीमें संतोष माननेके दिन चल गये; किन्तु धर्म के रक्षक प्रचारक, और सुधारक बनकर ब्राह्मणों को पूर्व के समान हिन्दू धर्मके अग्रसर बनना चाहिये। अंतर्जातीय विवाह की सुमगली गा कर दक्षिणा के लिये हाथ फैलानसे अब काम नहीं चलेगा। किन्तु वैसे विवाहका प्रचार करना चाहिये। किरायेके टट्टू बननेमें भी कोई इज्जत है? हिन्दुओंके अभ्युदयमें जितनी बातें आडी आती है, उन सबों को हटा देनेमें ही ब्राह्मणों को अब अपनी सारी शक्ति लगानी चाहिये। ब्राह्मणोंको अपनी प्राचीन श्रेष्ठता और पुरानी मान मर्यादा को टिकाना हो तो उनको उसी मार्गका अवलंबन करना चाहिये। हिन्दू नहीं तो ब्राह्मण भी नहीं। एक विद्वान बेरिष्टर के घर एक अनपढ ब्राम्हणकी क्या इज्जत होगी? सुशिक्षित, सदाचारी, कमलोभी और धर्म कर्म दक्ष ब्राह्मणोंको ही पुरोहित बनना चाहिये। ब्राम्हणोंके सम्बन्ध में हमने निचोडमें लिखा ही है; इस लिये अधिक चर्वित चर्वण हम नहीं करते हैं।

अब उनकी सभा किन्तु महा सभा स्थापित हो चुकी है। पहले ब्राम्हण अपनी गठना करेंगे तो-भी अच्छा है। सभा होनेसे बहुत कुछ काम हो सकता है। ब्राह्मणोंको, प्रथम सुधरना चाहिये तब ही वे अपने यजमानोंको सुधार सकेंगे। सभामें

जाता है। जब लेखन कलाका प्रादुर्भाव नहीं हुआ था, तब पठन पाठन सब कुछ मुख द्वारा ही हुआ करता था। इसलिये उपरोक्त अर्थमें अवश्य ही कुछ रहस्य होना चाहिये। सब कुछ कंठ-स्थ किया जाता था। उस समय मुख ही ज्ञानका भंडार था। अर्थात ज्ञान-भंडारको अपने मुंहमें संग्रह करने वाले ब्राम्हण, सर्वश्रेष्ठ पदवीको पहुंच जाय और हिन्दुओंके लिये वे पूजनीय हो जाय तो उसमे आश्चर्य ही क्या?

हजार डेढ हज़ार वर्षके बाद बुद्धने ब्राह्मणोंपर पहिला ज-बरदस्त प्रहार किया। मुसलमान, सिख, कबीर, क्रिश्चन, सु धारक, दयानंद आदियोंने भी ब्राम्हणोंको धक्के दिये। आज कल तो सिनेमा, उपन्यास और समाचार-पत्रोंमे ब्राम्हण उप-हासका एक विषय हो गया है। यह सब होनेपर भी ब्रा-म्हणोंकी पूजनीयता, हिन्दू हृदयसे सर्वथा जाति नहीं रही है। जाति पाति, मूर्ति पूजा, वेद पुराणोंमे विश्वास, गौ बुद्धि इ-त्यादि बातोंपर आजका हिन्दू धर्म स्थित है। कोई भले ही उसका पालन न करे; पर उसके हृदयके किसी कोनेमे ब्राम्हण के लिये थोडा सा स्थान अवश्य ही मिलेगा. आर्य समाजमे प्रवेश करनेपर भी जन्मसे ब्राम्हण पुरोहितको अधिक "प्रेफे-रांस" (प्राधान्यता) देनेकी प्रवृतिमे हमारे कथमकी सत्यता प्रतीत होती है.

तात्पर्य, इतनी चोटें खाते सहते भी ब्राम्हण अभी तक जीवित रहा है। यदि पूछा जाए कि, ब्राम्हणकी आयु कि-तनी तो यही उत्तर देना पडेगा कि, जितनी वेदकी। अर्थात,

यहां आए हैं। जाति दृष्टिसे उनका संगठन हो गया है। सब ब्राम्हणोंके अधिकार समान माने जाते हैं। उनको एक ही कलकनियाके नामसे पहचाना जाता है। यह भी यहांके ब्राम्हणोंकी एक सामाजिक विजय है; क्योंकि भारतमें भी अभी तक ऐसा अंतर प्रान्तीय संगठन नहीं हुआ है। भारतके ब्राम्हण, इस संबंधमें इंडो मोरिशियन ब्राम्हणोंसे पाठ ले सकते हैं। इस जाति पातिकी दृष्टिसे यहा का ब्रम्हवृन्द संगठित बना हुआ होनेसे उनको, आगे बढनेकी मार्ग सुगम हो गया है। अब गुण अवगुण याने आत्म शुद्धिका कार्य यह सभा करेगी तो भी गनीमत है।

एक दिन जरूर आएगा, जबकी हिन्दू समाजकी धुरा उसे उठानी पडेगी। इसलिये सभाको धीरे धीरे उस दिनके लिये तैयारी करते रहना चाहिये। सभा अभी एक दम बाल्यावस्था में हैं। हम इस समय उसका केवल शुभचिंतन कर सकते है और आशा रखते हैं कि अपने नामकी इज्जत सभालनेकी वह हमेशा यत्न करेगी।

मोरिशसमें कहते हैं कि, करीब एक हजार ब्राम्हण कुटुंब हैं। एक घरमें चार मनुष्य (बालबच्चा) के हिसाबसे उनकी तमाम संख्या चार हजार तक हो सकेगी। यह एक अंदाज है। कतिपयोंको छोडकर बाकी सब ब्राम्हण कमी अधिक प्रमाणमे धार्मिक विधि करानेवाले हैं। खेती या कोई दूसरे व्यवसायसे वे अपना निर्वाह करते हैं। केवल यजमानों का मुंह

लगे हैं। २५-३० वर्ष पूर्व न उन्हें अवकाश ही था न उन बातोंका ज्ञान ही। कन्या शिक्षा का विचार भी 'उन लोगों में उत्पन्न नहीं हुआ था, तब स्त्रियोंको अशिक्षित रखनेके पाप के भागी, ब्राम्हणोंको बनाना एक अत्याचार ही होगा। कन्या शिक्षाको केवल एक उदाहरणके रूपमे हमने पेश किया है। संशोधन और सुधारकी तमाम बातों को यही नियम लागू है। यहा तो क्या भारतमे भी ऐसी ही दशा पाई जाती थी। समाज को धार्मिक, नैतिक, आर्थिक, शैक्षणिक आदि समस्त पहलुओं से देखना उनके गुण दोषोंको पहचानना, उनमे संशोधन-सुधारका आन्दोलन करना ये सब बाते इस बीसवीं सदीकी हैं। पहले यह सब कुछ नहीं था। पूजा-पाठ करना और कराना यही ब्राम्हणोंका मुख्य कार्य था। इस हालतमे ब्राम्हणों ने अमुक किया और अमुक नहीं किया, इस वास्ते उनको दोष लगाना हम उचित नहीं समझते। अपनी शिक्षा, बुद्धि, अनुभव, शक्ति और परिस्थिति के अनुकूल जो हो सकता था, वह उन्होंने किया। आजतक ब्राह्मणोंकी यही स्थिति रही है।

अब समय बदल गया है। ब्राम्हणोंके यजमान अपने बाप दादा जैसे नहीं है। उनमें दूसरी वायु बह रही है। परंपरा या परिपाटी मे उनकी वह श्रद्धा नहीं रही और बिछुडे पशु के भांति वे इधर उधर भटकने लगे हैं। ब्रम्ह तेज प्रगट करके उनको बटोरनेका महान कर्त्तव्य ब्राम्हणोंका ही है। शुरुआतमें रूढी और धर्म-कर्म के बंधन ढीले करनेमें ब्राम्हणों ने, जो हि-

## पोर्ट लुईस

पं० पं० बलदेवप्रसाद, देवदत्त, शिवशंकर पाठक, (राजपाल) रामस्वार्थ और रामदत्त।

## प्लेन विलहेम

पं० पं० अंबिकादत्त, शिवप्रसाद, रामसेवक, राजेंद्र, लक्ष्मीनारायण चौबे।

## ग्रां पोर

पं० पं० लक्ष्मीप्रसाद, रामरूप पांडे, रामदत्त, रामभजन, वासुदेव, जदु पाठक, जगन्नाथ, हरिप्रसाद, अमर पंडित और खुशीराम।

## सावान

पं० पं० लक्ष्मीप्रसाद मिस्र, लक्ष्मीप्रसाद पांडे, देवनारायण, इन्द्रदत्त, सूजदीन, अम्हदयाल।

## पांप्रेमुस

पं० पं० रणछोडलाल, रामखिलावन, दौलतराम चतुर्वेदी, रामकरन, बेनीमाधव मिश्र, रामदत्त।

## मापू–रिवर रांपार

पं० पं० रामसरूप, छबीलाल, भीमसेन।

## फ्लाक

पं० पं० रामलगन शर्मा, हरिप्रसाद, मुट्टूर, जय प्रकाश, राधाकृष्ण शास्त्री, आदित।

कुल ४१ भागवती पंडित हैं। यहां इनको व्यास भी कहते हैं। मोका और ब्लाक रिवरमें कोई व्यास निवास नहीं करते हैं।

Shiwala of Lal-Mati, Belved'ere Photo by the kindness of Mr Ramowtar Gunness of the locality.

जिस तरह ईश्वर ने वेद द्वारा मनुष्य प्राणीको कल्याण-प्रद उपदेश और ज्ञान दिया है, उसी प्रकार हमारी सभा भी उपदेशकों के उपदेश द्वारा जनतामें सत्य ज्ञानका प्रचार करती है। बहुतोंका मत है कि, आ० र० वे० प्र० सभा एक जातीय संस्था है। इस मतका यह सभा खण्डन करती है। सभा के नाममें 'रवि' शब्द आनेसे लोगों मे कुछ भ्रम पैदा हो गया है। इस भ्रमका हम निरसन करना चाहते हैं।

रवि शब्दके अनेक अर्थ है यथा सूर्य, भास्कर, भानू, दिवाकर, आदित्य, प्रभाकर, विभावसु, दिनकृत, द्वादशात्मक, सहस्रांशु इत्यादि। इन सबोंका अर्थ है, प्रकाश देने वाला अर्थात अंधकार को दूर करने वाला। स्वामी दयानंद ने अपना विद्याभ्यास समाप्त होनेपर अपने गुरुदेव से दक्षिणा मांगने की प्रार्थना की थी। गुरु ने अपने शिष्य दयानंद सरस्वतीसे यही भिक्षा मांगी कि, बेटा सूर्य रूपी जो वेद है, वह इस समय संसार से लुप्त हो गया है। उसे पुनः घर घर जाकर प्रकाशमान करो, यही मेरी दक्षिणा है। इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदासजी अपने रामायणमे लिखते है,—
" रवि मंडल देखत लघु लागे। उदय तासु त्रिभुवन तम भागे॥ "
यहा रविका अर्थ प्रकाश देने वाला सूर्य ही है। रवि शब्द का दूसरा अर्थ होता तो त्रिभुवन के अंधकारको वह कैसे भगाता ? उपरोक्त प्रमाणोंसे लोग समझ जायेंगे कि, सूर्य याने रवि यह शब्द किसी हीनता दर्शक या श्रेष्ठता दर्शक जातिका नाम नहीं है। रवि का सम्बन्ध वेदके साथ है, जातिके साथ नहीं।

सब प्रकारके ब्राह्मण हैं। पुराने और नई सभ्यताके तथा वृद्ध और जवान शिक्षित अशिक्षित एवं गरीब और मालदार, सब इसमें सम्मिलित हैं। ये सब साथ बैठकर काम कर सकेंगे तो उत्तम ही है। हमारे विचारमें पुरोहित कार्य करने वाले ब्राह्मणोंकी एक स्वतंत्र सभा या मंडल होना चाहिये।

विवाह में कौनसे मंत्र कहना चाहिये, कौनसे संस्कार करना चाहिये, दक्षिणा कितनी लेनी चाहिये, शुद्धि कैसे करना, शूद्रके घर धर्म कर्म, खान पान, अन्तर्जातीय विवाह की शिक्षा, ब्राह्मणकी योग्यता कैसी नापना, ब्राह्मण अब्राह्मण के संबंध ब्राम्हणकी पोशाक आदि बीसों प्रश्नों पर सभाको विचार करना होगा और सभा जो कुछ निर्णय करेगी, उसको अमल मे लाना होगा। हमारी राय मे ब्राह्मण सभा किसीके साथ लडने भिडने वास्ते नहीं है। वह हिन्दू पाद्रियोंकी सभा है। सिवाय शांति के दूसरा कोई सूर उसमेसे हम समझते हैं कि, नहीं निकलेगा। इसमें और अन्य सभाओं मे यही मुख्य भेद होगा।

यह सभा भी एक मित्राचारी संस्था होने से तमाम हिन्दू प्रजा के कल्याणार्थ इसका जन्म शायद नहीं हुआ हो तो भी हिन्दू जनता तो ब्राम्हण सभाको एक अवतारके सदृश्य ही समझेगी और हमारी समझमे उनका वैसा मानना गलत नहीं है। भारतकी उत्तर और पूर्व दिशाके याने पंजाब, युक्त प्रांत (आगरा और अवध) विहार, ऊडीसा और बंगालके ब्राम्हण

Seetala Ammen Temple of Mahebourg

है तब किसीको यह कहनेका अधिकार नहीं है कि, वह एक जातिका संस्था है। सर्वसाधारणकी धारणा है कि, वह एक जातीय सभा है; इस लिये सभा स्पष्ट शब्दोंमें उसका इनकार करती है और वैसी बात पुस्तकमें रेह जाना यह भी सभाको ठीक प्रतीत नहीं होता है।

उनकी इस इच्छाका हम आदर करते हैं और उनकी उपर्युक्त बातोंका स्वीकार करके हम हमारे विचारोंको भी प्रकाशित करते हैं। घडी भर के लिये मान लिया कि, यह सभा जातीय है। हम पुछते हैं कि, उसमें विगडा क्या? हिन्दुओं मे ब्राह्मणोंका सबसे ऊंचा स्थान है। संसारका कल्याण करना उनका कर्त्तव्य है, परन्तु आज वे स्वयं ठोकरें खाते फिरते हैं, वे किसका कल्याण करेंगे? इस लिये पहले अपनी जातिका कल्याण करनेके हेतु से इन्होंने अपनी एक सभा बांधी। ऐसी ही क्षत्रियोंकी और दूसरों तीसरोंकी भी। अपनी सभा को जातीय सभा कहलानेमें न उनको लज्जा है न भय ही ह। नहीं मालूम रविवेद सभा जातीयके नामसे क्यों इतना संकोच करती है? हमारे विचारमे उसका डरका कारण यह है।

रविवेद प्रचारिणी सभा, ऋषि दयानंद के स्थापित आर्यसमाज की अनुयायिनी है। आर्यसमाज जातिपांतिको नहीं मानता है। रविवेद सभा के सामने यही प्रश्न खडा हुआ कि, आर्यसामाजिक सिद्धान्तों को मानने वाली अपनी सभा को किसी खास जातिकी सभा कैसी कही जाय? प्रश्न जरा विकट ही

ॐ

# श्रीमती आर्य रवि वेद प्रचारिणी सभा

## पोर्ट लुईस ।

यह सभा एक धार्मिक संस्था है। सन १९३४ के मई मासमें सरकारी नियमानुकूल उसकी रजिस्टरी होकर वह राज-मान्य घोषित हुई. सभाके जन्मदाता निम्न लिखित महाशय हैं.

श्री. श्री. पञ्जुटु, घिसावन, रामरूप बलजोर, मोतीलाल स्वयंबर, रामभजन ढोला, जानकीप्रसाद कलकतिया, उतिमदास मंगरा, बिहारी रामकिसुन, रामलोचन विदेशी, महावीर राम-सालिक, रामकिसुन घूरा, दयाल तुलसी, रघुनन्दन छ.कौडी, गंगा-प्रसाद भरत, जदुनन्दन जवाहीर, रामरूप भगवान, रामयती बेचन, पूरन बदित, फूलचन्द भगु तथा सिलोचन बदूदू.

यह सभा, वेदको ईश्वरीय पुस्तक मानती है और उसके सदस्योंकी जाति आर्य है. वैदिक मत आदेश करता है कि, ईश्वर एक है, जिसको यह सभा स्वीकार करती है. आर्य वै-दिक धर्मका प्रचार करना सभाका मन्तव्य है. हमारे प्राचीन ऋषि मुनी जिन सिद्धान्तों द्वारा जगत का कल्याण करते थे, उन्हींका अनुकरण करके मनुष्य मात्रकी भलाइके वास्ते कोशिश करनेका हमारा संकल्प है और अन्योंको भी हम वैसा आदेश करते है. विद्वानोंका कथन है कि, वेद विहित धर्म एक सार्वभौ-मिक धर्म है और उसके आचरणसे मनुष्य, स्वार्थ और परमार्थको प्राप्तकर सकता है. इस मतसे हम सहमत है.

टूट जाएगी अथवा वह बोझेको फेक देगा। इस संबंधमें हमारे निचोडमे बहुत कुछ लिखा है । यहां एक छोटासा दृष्टान्त दे देते है।

हिन्दुस्थानमें लगभग पांच मिलियों याने पचास लाख साधु वैरागी, फकीर, आदि हैं। ये लोग भीख मांगकर अथवा मौका मिलनेपर लूट मार करके भी अपना उदर पोषण करते हैं। भारतके सामने यह एक विकट प्रश्न है कि इन भिखमंगोंको मुफ्त बैठे२ खिलाकर देशके धनका, जो व्यर्थमें नाश हो रहा है, उसके लिये क्या किया जाय? इन साधुओं को पूछो कि, भाई तुम किस लिये साधु बने हो, तो वे यही उत्तर देते हैं कि, संसारकी भलाईके वास्ते !! जो आदमी अपना पेट नहीं भर सकता है, वह दुनियाको हलवा पूडी खिलाने को निकला है!

व्यक्तिको सर्व प्रथम अपना कुटुंब, बादमें हित मित्र, तत्पश्चात अपना समाज और अन्तमें संसार इस सीढीसे धीरे२ चढते जाना चाहिये। हम, हमारे भाई और हमारा समाज गढे में गिरा पडा है। इसलिये पहिले उनको उठाओ फिर जगतको देखो। स्वयं हम कवड़ीके लिये मोहताज है, दूसरे को क्या दान देगे?

दुसरी बात यह देखनी है कि, जिस संसारका हम भला करना चाहते हैं, वह संसार हमारे लिये क्या करता है? वह तो हमारी लघुता और निर्बलताका उपहास करता है और तुच्छ गिनता है। बेहतर तो यही है कि, प्रथम अपना श-

ब्राह्मण, क्षत्रिय, यादव, कोयरी, ठाकुर आदि सभाओं की तरह यह जातीय सभा नहीं है। रविवेद सभा 'अहिंसा परमो धर्मः' इस सिद्धांतका अनुसरण करती है। वैदिक सिद्धांतों को मानने वाला कोई भी व्यक्ति इसमें प्रवेश कर सकता है। हमारी सभा जाति पातिको मानती नहीं तथा खान पानमें शुद्धता रखती है. हिन्दू लोगोंमें घुसी हुई कुरीतियोंको निकालकर उनको वेद प्रणीत संमार्गपर लानकी हमारी वेद सभा चेष्टा करती है हमारी सभा किसीका विरोध नहीं करती है. सबोंके साथ हम मित्रता का संबंध रखना चाहते हैं। संक्षेपमें हम इतना ही कहते हैं कि, हमारे लोगोंकी धार्मिक, सामाजिक, नैतिक, शैक्षणिक, आदि सर्वांगीण उन्नति होकर वे अपने प्राचीन गौरव और ऐश्वर्य को प्राप्त करें इस हेतुसे हम यथाशक्ति यत्न करते हैं और हमारा संगठन होकर हम शक्तिशाली बननेके लिये हमारा यह उद्योग, हमें विश्वास है कि, ईश्वर कृपा से सिद्ध होगा।

सही—
पलटू गीसावन
आर० ढोका
जे० कलकतिया

सभा ने अपना उपर्युक्त वक्तव्य, सभा के अधिकारी जन्म दाताओं के हस्ताक्षर उसपर करके हमको दिया है और हमने उसे वैसा ही हमारी पुस्तकमें प्रकाशित किया है। जब वे कहते हैं कि, उनकी संस्था जातीय नहीं है, किन्तु वेद धर्मको मानने वाले कोई भी मनुष्यके लिये सभाका दरवाजा खुला रहता

उन्नति कर नहीं सकता है; इस लिये किसी अन्य धर्ममें प्रवेश करना ही अंत्यजोंके लिये उत्तम मार्ग है।

समझो कि २५-५०-१०० वर्षोंमें हिन्दुस्थानके हरिजन पर धर्म में चले जाय तो हिन्दू धर्मकी क्या हालत होगी? वह एकदमसे पंगू हो जायगा। संख्या बलका कितना महत्त्व है और वह घट जानेसे धर्मके नाश कैसे होता है इत्यादि विवेचन 'निचोड' मे पाठक पढ़ेंगे। हरिजनोंके चले जाने पर फिर शूद्रों की बारी आयगी। पाच करोड (५० मिलियों) हरिजन और पाच करोड शूद्रोंके चले जाने पर यह बचा सचा त्रिवर्णियोंका टूटा और लूला हिन्दू समाज किसीका भी शिकार बन सकता है। उसको बिना मौतका मरा ही समझो। कितनी प्रसन्नता की बात है कि, हमारे रविवेद समाज के स्वप्नमें भी धर्मान्तरका विचार नहीं आया है। हिन्दू समाजके सिरमें डण्डा मारनेकी कल्पना ने भी उनको स्पर्श नहीं किया है यह थोडे आनंद की बात है? उपनिवेशों की स्थिति, भारतसे कैसी भिन्न है, यह हमने अन्यत्र बताया है। यहां धर्मान्तर लाभदायी होता है तो भी उस लाभको ठुकरा कर अपने धर्मकी ध्वजा उड़ते रखने के लिये, जिन्होंने सभा स्थापन की है, उनका अभिनंदन करना चाहिये और उनको धन्यवाद देना चाहिये।

मोरिशस के हिन्दू भी धन्यवादके पात्र हैं। देश पर्यटन यानी मुसाफरी करनेसे मनुष्यकी बुद्धिका विकाश होकर वह उदार होती है और विचार प्रगल्भ बनते हैं, यह बात बिलकुल सच

भी बढ जाता है। ये सब देश जाति का उपकार करने वाले सुधार हैं और जिसके लिये प्रवासी भाईयों को अभिवन्दन करना चाहिये। भारत के सुधारक यहां आकर मोरिशीय हिन्दुओंसे इस सम्बन्धकी कुछ शिक्षा पा सकते हैं। शूद्रों के प्रति यहां घृणाका भाव नहीं है और जिससे शूद्र भी निजको हिन्दू धर्मका एक अंग समझ कर अपनी अभिवृद्धि करनेकी चेष्टा करते हैं। वह उनका हक है और उनको ढाढ़स दे कर उनकी सहायता करनी चाहिये।

इस लिये मोरिशसके हिन्दुओं या आर्यसमाजियों प्रति हमारा निवेदन है कि, कृपा करके रवि सभाका उपहास या विरोध न करें, किन्तु उसके साथ सहानुभूति रखकर उसको प्रोत्साहन देते रहें। गंगा हो यमुना हो, सरयू हो या सिन्धु हो वे कहीं से भी निकले, कैसी भी टेढी मेढी बहे, आखिर तो सब नदियोंको सागरमें हो जाकर विश्रांति लेनी है। जाति वालोंकी जो अलग अलग सभाएं इस समय बन रही है उससे हिन्दू धर्म पर उतना विपरीत परिणाम होनेका यहा डर नहीं है। वे सब एक दिन हिन्दू धर्मके महासागरमे लीन हो जायेंगी।

आर्य रवि वेद प्रचारिणी सभा अभी बाल्यावस्थामें ही है. पूरी तीन सालकी भी इसकी आयु नहीं है। पं० पं० सागर, महावीर, रामकिसुन, रामखिजावन, सुखदेव, राजरूप, देवनन्दन, रघुनन्दन, जद्दू, जानकी प्रसाद, आदि सभाके पुरोहित-प्रचारक-उपदेशक हैं। उनका कामा माता या दाई कासा है। बचपनमे शिक्षा दीक्षा मातासे ही मिलती है। आज तक जो

है। इसका उत्तर मोरिशसमें आर्यसमाजकी दो संस्थाएं होने पर भी यह तीसरी निकालनी पडी उसीमें है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये सब हिन्दू ही है; पर उनकी अलग २ सभाएं क्यों? इसी वास्ते कि, हिन्दुओंके बडे बाजारमे उनका भाव कोई पूछता नहीं!

इतने साल आर्यसमाजमे रह कर उनको यही अनुभव हुआ कि, आ० समाजके सिद्धांतोंके अनुकूल कार्य होता नहीं और जातिपांति के ढकोसले उसमे वैसे ही जारी है। आ० समाज के समुद्रमें रह कर उनकी भलाई होती नहीं। छोटी मछली बडी मछलीको खा ही जाती है। इस लिये उससे पृथक हो कर रवि० वे० प्र० सभा ने अपने ही बलपर अपनी उन्नतिका मार्ग शायद ढूंढा। हम कहते हैं कि, उसमें कुछ भी बुराई नहीं है।

परोपकारिणी और प्रतिनिधि सभाओंसे जो काम नहीं हो सका उसकी पूर्त्ति करनेके उद्देश्यसे यह र.विवेद सभा निकली है। आदर्श महान हैं। ईश्वर उसकी मनकामना पूर्ण करें। दुनिया के समस्त धर्म और पंथ यही कहते हैं और कहते आये है कि, जगतकी भलाई के लिये वे उद्योग करते हैं। परन्तु प्रत्यक्ष व्यवहार में हम क्या देखते है? हर एक धर्म अपनी२ खिचडी अलग पकाता है। मुसलमान एक तरफ, ईसाई दूसरी तरफ और हिन्दू तीसरी तरफ। यही कारण है कि, आजकल के बहुतसे बुद्धिमान लोग धर्मको एक पाखण्ड कहने लगे हैं। एक मनुष्य जितना बोझा उठा सकता है, उतना ही उसको देना चाहिये। अधिक उठानेसे या तो उसकी गर्दन

रीर पुष्ट करो और फिर मैदानमें उतरो। तब ही तो दूसरे हमारी कदर करेंगे।

पहले नदीमें तैरना सीखो फिर दरयामें कूदो। रवि वेद सभाको अपना कार्य क्षेत्र निश्चित कर लेना चाहिये। संसार की भलाईका झंडा हाथमें लेकर दौड़ने वालोंका अनुभव उनके सामने है। पुनः वही नाच वे नाचना चाहते हैं? हम तो यह कहते हैं कि, रवि वेद प्रचारिणी सभा, जो काम जिस ढंगसे कर रही है, वह बहुत अच्छा है और ऐसा ही होना चाहिये। हिन्दुओंकी कड़ी टीका टिप्पणी और विरोधके गाम लेनेपर यह सभा अपनी रोटी नहीं सेकती है यह प्रसन्नताकी बात है। परन्तु झूठा भय रखकर निजका दौर्बल्य प्रकट नहीं करना चाहिये; किन्तु बिना संकोच, स्पष्टवाणीसे कह देना चाहिये कि, अन्योंसे हमारा कुछ लाभ होता न देखकर हमने स्वयं हमारा रास्ता खोज निकाला है। इतना ही नहीं, किन्तु कोई भी समझदार, निःपक्षपाती और जाति हितैषी मनुष्य, आर्य रवि वेद समाजके धर्म प्रेमकी मुक्त कंठसे प्रशंसा ही करेगा। रवि समाजमें जागृति उत्पन्न हुई और फलस्वरूप उनकी एक पृथक सभा बनी जिसके लिये कोई भी हिन्दूको गर्व ही होना चाहिये। भारतमें क्या हो रहा है, उसे देखते हुए तो इस सभाको बधाई देनी चाहिये। भारतके हरिजनोंमें भी जागृति आ गई है; परन्तु यह जागृति, हिन्दू धर्मपर कुठाराघातके समान हो जानेका भय है। उनके नेता डाक्टर आंबेडकर बेरिष्टर एट लो ने थोड़े दिन हुए, हिन्दू समाज को यह धमकी दी थी कि, हिन्दू रहकर उनका समान अपनी

# ठाकुर संगठन सभा

## पोर्ट लुईस

ईसवी सन १९३३ में इसकी स्थापना हुई है। श्री. रतन रामदीन इसके जनक है। प्रधान उत्साही युवक आदित घन-शाम है। मंत्री वासुदेव शम्भु और कोषाध्यक्ष मणिलाल राज-पति है। इसके २५--३० सदस्य हैं। जाति भलाई के उद्देश्य से इसकी स्थापना हुई है। इसकी कुछ शाखाएं भी हैं। माई-पुरमे श्री देवसरन, फलाक में श्री सिवनारायण बदल, पाम्प्लेमुस मे श्री. दौलत तथा रिवर रांपारमें श्री. नंदलाल अर्जुन आदि अपनी २ शाखाका संचलन करते हैं। ठाकुर संगठनकी वार्षिक सभाएं होती हैं और उनमे सुधार विषयक बातोंकी चर्चा करते है। समयानुसार कुछ बातोंको छोड़ना और कुछ नई बातों का ग्रहण करना इसीका नाम है सुधार। हिन्दुओंके लिये तो वीसों बाते है, जिनमे सुधारकी आवश्यक्ता है। सार्वजनिक का-र्योंमें चमकनेकी उनकी महत्वाकांक्षा है और श्री स्वामीनाथन को मान पत्र देकर वह उन्होंने प्रकट की है। ऐसी आत्म प्रतिष्ठाके भावसे मनुष्य कुछ कर्म करने को तैयार होता है। ठाकुर संगठन सभा में यह भाव है, यह प्रसन्नताकी बात है। सभाके सुधारात्मक विचारोंसे भयभीत होकर "हिन्दू सनातन ठाकुर सभा" नामक एक दूसरी मंडली खडी हुई है; पर इस प्रकाश के जमाने में ये लकीरके फकीर सनातनी ठाकुर अपने दूसरे

है। हिन्दुस्थानसे मोरिशस आने वालोंके विचार सचमुच ही उन्नत और उदार हो गये हैं। हिन्दू-धर्म-पुस्तकों मे, जो वर्ण-व्यवस्था है, उनमें चार जातिया मानी गई है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, ये उनके नाम हैं। प्रत्यक्ष व्यवहारमे सारे हिन्दुस्थान भरमे ३,००० से अधिक जातिया हैं। इन जातियों के कीड़ों (मुतुक) ने आर्यावर्त को कैसा खा डाला है यह सबको विदित ही है। उपरोक्त धर्म प्रणीत चार जातियोंके अतिरिक्त वहां अंत्यजोंकी एक नई जाति कालांतरमे पैदा हुई। जानों कि भारतके वास्ते सदा के लिये यह एक नया रोग ही पैदा हुआ, जिसका इलाज गांधी, मालवीयजी, और शंकराचार्य जैसे वंद्य पुरुषों से भी नहीं हो सकता है।

परन्तु हर्षकी बात है कि, प्रवासी हिन्दुओं ने भारत की प्राचीन चार जातियोंका ही स्वीकार किया और मनुस्मृति के एक श्लोक के आधार पर पिताको ही जाति निर्णायक ठहराया। हिन्दुस्थानमें नया नाम हरिजन से जो जातिया पहचानी जाती है, उनको मोरिशसमे शूद्र माना जाता है। अर्थात हरिजन जातिको, मोरिशसकी हिन्दू वर्ण व्यवस्थाके अनुसार उठा दिया है। मोरिशसके हिन्दुओंका यह एक महत्वपूर्ण सुधार है। इसी प्रकार हिन्दुस्थानमें जिन जातियों को शूद्र माना जाता है, उनको यहां वैश्यके समान समझा जाता है। अर्थात भारतके शूद्रों की और हरिजनोंकी यहा आने पर धार्मिक और सामाजिक दृष्टिसे उन्नति ही हुई है। इसी तरह पिताको जाति निर्णायक मान लेनेके कारण भी जातिभेदजो

# श्रीकृष्ण सहायक महा मंडल

## न्यू ग्रोव।

मोरिशसके ख्यातनामा श्री० दुखी गंगाजीके भतीजे श्री० खेमराज उक्त संस्थाके जन्मदाता है। आप उत्साही, धर्मशील एवं शिक्षित नवयुवक हैं। कोई संस्था द्वारा कुछ जन-सेवा करनेका अपना मनोदय न्यू ग्रोवकी हिन्दी कन्या पाठशालाके अध्यापक पं० भोलानाथ दुवेजीसे उन्होंने प्रकट किया और सन १९३० में वह संस्थाके लिये सामग्री जुटाने लगे। पं० दुवेजी संस्थाके एक स्तंभ हैं। बाबू महावीरसिंह तथा श्री० जयकिसुन बसन्तलाल प्रभृति सज्जनोंके सहयोगसे सन १९३२ मे संस्था की उक्त नामसे अधिकृत रीतिसे स्थापना हुई। यह धार्मिक एवं सामाजिक भी कार्य करती है।

स्व० पंडित राम मनोहरजीके बांचे हुए भागवतकी आय संस्थाकी स्थापनाके लिये दी गई थी। पं० जयसुखरामने सन १९३१ में संस्थाके छतके नीचे ही रामायण पढा था। इस संस्थाके सहयोगसे ही समीपके मारदालवेरके तामिल मंदिरपर एक गीता सप्ताह निष्पन्न हुआ था। योग्य व्यक्तियोंका सन्मान भी उनके कामोंका एक अंग है। रोसवेलके शिवालापर सेवा निवृत पुलीस इन्स्पेक्टर बाबू घूरनसिंह एम० बी० ई० को एक बृहती सभामें मान-पत्र देकर उस ओहदे तक पहुंचनेवाले प्रथम भारतीय मनुष्यका सन्मान करके संस्थाने अपना जाति-

काम हुआ है, उसे देखकर कहना होगा कि, इन माताास्वरूप पंडितोंने अपना कर्त्तव्य पालन किया है। यह एक धार्मिक सभा होनेसे उसकी प्रतिष्ठा और यश, पंडितोंपर ही अवलंबित है। पंडितोंके आचार विचार शुद्ध रहे तो यह सभा उन्नति ही करती जाएगी। हाल ही सभाने शान्दे मासमें एक जगह खरीदी है। सर्वसाधारणकी दृष्टि पंडितो पर ही रहती है, इस लिये कोई भी अनाचारका काम उनसे होना नहीं चाहिये। संसारके मनुष्यको कनक और कान्तासे अत्युच्च सुख प्राप्त होता है और यही कनक कान्ता मनुष्यको अधम बना देती है। कहते हैं कि, एक सडा अण्डा सब अण्डोंको खराब कर देता है। एक व्यक्तिका कार्य समाजको उठाता हैं और गिराता भी है। सभाके कर्मचारियोंपर भी उतनी ही जवाबदारी है। जानो कि सभा उनके पास गिरवी रखी है अर्थात उनका व्यवहार कैसा साफ होना चाहिये, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। कर्मचारियोंका दुर्वर्तन, समाजके साथ विश्वासघात है। यह हम बिलकुल नहीं कहते है कि, सभामें वैसे लोग हैं। हमने जो संकेत किया है, वह भविष्यके लिये तथा आम तौरपर और वह शुद्ध हृदयसे है। कतिपय लोग रवि वेद सभा के कामों को ताकते रहते हैं। अगर जरा भी उसकी कोई अभद्र बात वे सुन पायेंगे तो हो हुल्ला के साथ ढोलक पीटते रहेंगे। हम सबको खुश नहीं कर सकते हैं। कोई हमारा मित्र होगा, कोई तटस्थ रहेगा तो कोई शत्रु भी बनेगा। इस लिये सावधान!

---

मनुष्य योनीमे जन्म लेकर कुछ करना चाहिये। इस ख्याल में आप सदा रहा करते थे। १८ वर्षकी आयुमें उनको गुरु-उपदेश मिला। इस प्रकार अधिकारी बननेपर कहीं दूर जाकर एकांत स्थानमें बैठकर वे योग विद्याका अभ्यास करने लगे। आरम्भमे तो उनको लोग पागल ही कहा करते थे। अपनी पहिली 'गुरु पूजा' मे मित्रोंके साथ धर्म विषयक चर्चा करनेमें उन्होने अपनी बुद्धि और श्रद्धाका कुछ परिचय उनको कर दिया तथा एक धर्म संस्था स्थापन कराकर उसके द्वारा कुछ कार्य करनेका अपना मन्तव्य उनसे प्रकट किया। घरकी बहुत गरीबी था। कोई सहायता देने वाला नहीं था; परन्तु नवयुवक कुमार स्वामीका यह उत्साह देखकर लेसकाजिये के एक सज्जन स्व० मुत्तु स्वामी ने उनको वैसी कोई संस्था स्थापन करनेके हेतु से एक रुपया प्रदान किया और उनको आशीर्वाद दिया।

यह घटना १८६१ में हुई है। दो वर्षके बाद कुमार स्वामी के पास ६०० रुपया जमा हो गया। इस समय वे कुछ खेती भी करने लगे थे। सन १६०८ मे कतिपय गोरे सज्जनों की सहायता से आपने व्यापार भी आरंभ किया और पांच साल के अन्दर संस्थाके लिये १२,००० रुपयोंका निधि इकठ्ठा किया।

कार्यारंभ करनेके लिये उतना धन काफी था; पर समय ने पलटा खाया और व्यापारमे हानि होने लगी, जिससे काम स्थगित करना पड़ा। समय पुनः बदला और १६१२ से १६१६ तक उनकी खेती मे अच्छा फायदा हुआ और ३८,००० रु०
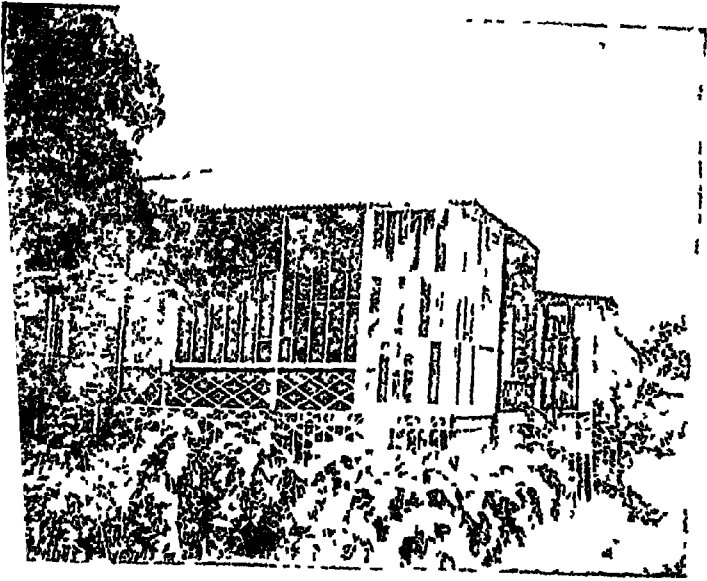
The Prayer house of the O M P G. T Sadhoo Sangum society of L' Escalier.

काचकी बनी हैं। संस्थाकी बिजली बत्तीका अपना यंत्र है। वैसा सुंदर मंदिर, मराठी प्रजाका कारकावेलमे एक ही है। मंदिरमे कोई मूर्ति नहीं है। कुमारस्वामीजीकी नित्यकी प्रार्थना वहीं होती है। सामने सुन्दर बगीचा है और संस्थाका कार्यालय है। पानी सर्वत्र फैलाया है।

दो लाख में से ५०—६० हजार रुपया व्याज पर दिया था और बाकी रुपयों के मकान खरीदे गये थे। व्याज और किराये के रूपमें अब १०—१२ हजार रुपया संस्था के कोषमे जमा भी होने लगा और चार पांच सालमें यह रकम ५०,००० तक पहुंच गई और धर्मादा, उत्सव, भोजन आदि कामोंमे खर्च भी हो गई।

पाठशालाएं, मंदिर, अनाथालय, परदेशन गमन, तीर्थ यात्रा. अन्न दान, अतिथि सत्कार, उत्सव, पुस्तक प्रकाशन, चन्दा आदि धार्मिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक कामोंमे यह सब व्यय हुआ है। सबसे अधिक लाभ ईसाई संस्थाओंको पहुंचा है। हिन्दू संस्थाओंमे 'यंगमेन्स हिन्दू असोसिएशन' को अच्छा लाभ पहुंचा है।

कुछ ठोस कामका स्वरूप निश्चित नहीं हुआ था। खिचड़ी जैसे सब धर्मावलंवी सदस्योंसे एक उचित कार्यक्रम का तैयार होना जरा कठिन ही था। सारा धन एक ही व्यक्ति का होने से संस्था लापरवाह हो तो आश्चर्य ही क्या?

सदस्य इस बातपर विचार कर रहे थे और लोक हितकारी कोई पक्का कार्य करने का अब अवसर आ रहा था कि, सभा के भाग्य ने पलटा खाया। खेती और व्यापारकी मंदी ने

सनातन भाईयोंका मुंडन करनेमें यदि अधिक सफल होंगे तो भी हम समझेंगे कि, उन्होंने कुछ कर दिखाया !!

---

## हिन्दू समुदाय वृद्धि संघम।
## रोजहिल

पिछले साल ही यह संस्था राजमान्य घोषित हुई है। इसके १४१ सदस्य हैं। प्रधान श्री. वेल गोविन्देन है। इंगलिश फ्रेंच भाषाके आप अच्छे विद्वान है। सरकारी नौकरीमें आप अच्छे ओहदे पर हैं। श्री चिदंबरं कारपेन मंत्री और श्री. नायकेन कोषाध्यक्ष हैं। ये त्रिमूर्ति, संघके निर्माता है। संघका उद्देश्य जाति-सेवा है। कार्यकारिणी समितिमें बारह सदस्य हैं। सामाजिक सुधारपर संघ विशेष ध्यान देता है। शूद्रादिकोंको भी संघ के सदस्य बननेका अधिकार है।

तामिलोंमें यह एक बडा सुधार ही समझना चाहिये। फिर हाल इस संघ ने रोजहिलके प्रसिद्ध मंदिर द्रौपदी आम्मेन की व्यवस्था अपने हाथ ली है। प्रधान श्री. वेल गोविन्देन सुशिक्षित और समाज सुधारके पक्षपाती होनेसे आशा की जाती है कि, संघ कुछ कार्य कर दिखायगा।

---

Author Rt Atmaram

प्रेम व्यक्त किया है। सदस्यकी अंत्येष्टि क्रियाके लिये संस्था बीस रुपया देती है। आस पास जहा कहीं कुछ सामाजिक या धार्मिक कार्य होता है, वहां इस संस्थाकी ओरसे सहयोग दिया जाता है।

संस्थाका निजको हजार रुपया कीमतका एक मकान है। प्रति मास संस्थाकी बड़ा बैठक होती है। श्री० खेमराज गंगा संस्थाके रक्षक याने Patron है और पं० दुबे प्रधान है।

उपरोक्त बातोंसे संस्थाके उद्देश्य एवं कार्यकी दिशाका पता लग जाता है। आशा की जाती है कि, उत्तरोत्तर उसका कार्य क्षेत्र विस्तृत हो जाएगा। श्री० कृष्ण सहायक महा मंडल की इस समय दो शाखाए हैं। एक म्रा ब्वामे हैं, जिसके प्रधान पं० लक्ष्मीप्रसाद है और दूसरे ला-रोजामे हैं, जहां श्री. जयकिसुनलाल प्रधान हैं। अन्यत्र शाखाएं खोलनेके यत्न हो रहे हैं।

---

## ॐ मिग्यान परम गुरु देसिगर साधु संघम्

### लेस्कालिये।

इस संस्थाका पूर्व वृत्तान्त कुछ मनोरञ्जक है। इसके जनक और प्रवर्त्तक श्रीमान कुमारस्वामी मारदेनाखराम हैं। बाल्यावस्थासे ही उनका झुकाव निवृत्ति मार्गकी ओर रहा है। पूजा पाठ और एकांतवासमें उनका बहुतसा समय व्यतीत होता था। काम धंधेकी ओर कम ध्याम रहता था।

# न्यू महाराष्ट्र रिलिजस एण्ड पूर हेल्पिंग सोसायटी

(धार्मिक और गरीब सहायक नई महाराष्ट्र सभा)

कास्कावेल।

यह सभा सन १९१२ मे स्थापित हुई थी। इसके जनक स्व० श्री० लक्ष्मण गणू शिंदे थे। बेरिस्टर मणिलाल डाक्टरजीसे उनको जाति सेवा करनेकी प्रेरणा हुई थी। आपका वहां भाषण भी हुआ था। इस सभाने कास्कावेलमे एक छोटासा देवल भी बनाया था और बडे भक्ति भावसे भजन पूजन होता था। उस सभाके मन्त्री श्री० लक्ष्मणराव पवार थे और उपप्रधान उनके पिता स्व० श्री० रागोजी थे। देवल और सभाके जन्मदाता श्री० शिंदेकी मृत्युके पश्चात भी श्री० लक्ष्मणरावजीने देवल और सभाको तीन चार साल चलाया था; परन्तु बुद्धिमान और परिश्रमी लोगोंका सहयोग न मिलनेसे सभा बन्द हो गई और मंदिर भी सुना पड गया। मंदिरकी भूमिके लिये महाजनने तकाजा किया. दस वर्ष बाद श्री० लक्ष्मणरावजीने, उन्हे आर्थिक सुस्थिति प्राप्त होते ही मंदिरका जीर्णोद्धार किया और अब वह एक पहिले दर्जेका मंदिर हो गया है.

आप ने संस्थाके लिये अलग रख छोडा। यह आंकडा थोडे ही दिनोंमें ५०,००० तक पहुंच गया।

श्री. कुमार स्वामी लगभग ३० वर्षोंसे जिस ध्येयकी ओर टक टकी लगाकर देख रहे थे उसकी पूर्ति होनेका समय अब आ पहुंचा था। बडे उत्साहके साथ वे अब एक सार्वजनिक हितकारी संस्था स्थापन करनेके उद्योगमें लगे। १९२० का साल तो मोरिशसके लिये 'सुवर्ण वर्ष' था। उसे ईश्वरीय कृपा समझ कर कुमारस्वामीजीने संस्थाके लिये और ५०,००० रुपया प्रदान किया तथा और एक लाख देनेका प्रतिज्ञा की।

सन १९२१ के अन्तमें सरकारी कानूनके अनुसार उप-रोक्त नामसे संस्थाकी स्थापना हुई। नोटरी रेने मेगरोने सं-स्थाका दस्तावेज बनानेमें अच्छा सहयोग दिया है। एक ही वर्षके उपरान्त संकल्पित लाख रुपयोंकी रकम देकर संस्थाको आपने और भी दृढ़ बनाया। साधु संघ सोसायटीमें हिन्दू, मुसलमान ईसाई सब धर्मके प्रतिष्ठित सदस्य थे! दो लाख रुपयोंकी पूंजीपर आरूढ हुई मोरिशसकी यह पहली संस्था थी और यह सब रुपया एक ही व्यक्तिकी उदारताका फल था, यह भी ध्यानमें रखने योग्य बात है। उनके प्रति लोगों का दृष्टि बिन्दु अब बदल गया था। कतिपय घटनाओंके कारण वे एक श्रद्धाका विषय समझे जा रहे थे। संकट निवारणार्थ श्रद्धालु लोग अभी तक उनकी सलाह पूछते हैं।

२५-३० हजार रुपया खर्च करके संस्थाने लेरकालीयेमें एक प्रार्थना मंदिर बनाया है। मंदिरकी दीवारें रंग बिरंगी

रहकर तमाम हिन्दुओंमें एक जातीयका भाव उत्पन्न करके उनमें नयी प्राण प्रतिष्ठा करना यही नवजीवन सभाका प्रधान उद्देश्य है। यह उद्देश्य Social service अर्थात समाज सेवा द्वारा ही सफल हो सकता है। समयर पर व्याख्यान, उपदेश, भजन आदिसे लोगोंमें जागृति उत्पन्न करनेकी चेष्टा की जाती है। मोरिशसमे अपने ढंगकी यह एक अनूठी संस्था है। हम उनको बधाई देते हैं।

# महेश्वरनाथ पाठशाला

## त्रिओले।

यह शिक्षण संस्था त्रिओलेमें आज २५ सालसे शिक्षा प्रचारका कार्य कर रही है। सन १६११ में वहांके धनाढ्य जमींदार श्री० आदनाथ चिकौडी तथा स्व० रामलाल तिवारी के यत्नसे यह पाठशाला स्थापित हुई है। मोरिशसमें हिन्दूओंकी इस प्रकारकी यह पहिली पाठशाला है। श्री० चिकौड़ीने पाठशालाके लिये अपना घर दिया था और अध्यापकों का वेतन भी आप ही दिया करते थे। स्व० रामलालजी भी सहायता करते थे और उनके सहयोग एवं सलाहसे ही सब प्रवन्ध होता था।

उन दिनों भारतियोंकी धार्मिक, सामाजिक शैक्षणिक तथा आर्थिक स्थिति आजकी जैसी नहीं थी। हिन्दुस्थानी मा बापों को समझा फुसलाकर उनके बच्चों पाठशाला भेजने के लिये

मोरिशसको घेरा। संस्था के कई ऋणियों ने दिवाला निकाला जिसमें ५०—६० हजार रुपया काफूर हो गया। जायदाद आदिकी कीमत धीरे धीरे घटने लगी और पाच सालके अन्दर याने १६२६ में उसका मूल्य उसके चौथे हिस्सेपर आ उतरा। मोरिशसके लिये वह समय बहुत ही खराब था और सैकड़ों आदमी उसमें बरबाद हो गये।

लक्ष्माधिपति कुमारस्वामी की भी वही दशा हुई। समयके चक्कर में वह भी बुरी तरह फंस गये। संस्थाके साथ स्वयं भी लेट गये।

आज उनकी आयु ६८ वर्षकी है। लगभग ४० सालसे वह जमीनदारी करते थे। हजारों एकड भूमि के आप मालिक हो गये थे; परन्तु जमाने की एक ही गरदीशमें उनकी सारी खेती, मेहनत, धन और ऐश्वर्य सब कुछ चट हो गया और फिर आप जोगीके जोगी ही रह गये। यह सब हो जाने पर भी उन्होंने संस्थाको अबतक येनकेन प्रकारेण जीवित रखा है और यथा शक्ति उसकी परम्परा चलाया करते हैं। प्रति वर्ष दो बार लेसकालियेके मंदिरमें गुरु पूजा द्वारा उक्त साधुसंघ संस्थाका लोगोंको आप स्मरण कराते हैं और अन्न दान दवा दारू आदि से, इस गिरी दशामें भी संस्था के मूल उद्देश्यके अनुकूल वर्त्तनेका आप यत्न करते हैं। आप मेहनती और उत्साही हैं। निराशा को समीप आने नहीं देते और कुछ करते ही रहते है। संभव है कि, संस्था को फिर कभी अच्छे दिन आ जाय।

लोगोंसे मिलने जुलनेमें ही इज्जत समझते हैं, यही उनका विशेष है । इस समय शहरके सरकारी सिविल होस्पिटलमें रेसिडण्ट सर्जनके पदपर आप नियुक्त हुए हैं । पाठशालाके मुख्याध्यापक श्री० गोपीचंद छत्तर हैं ।

# हिन्दी प्रचारिणी सभा

## मोतांई लोंग

यों तो मोरिशसमें अनेक संस्थाएं हैं और उन सबोंका उद्देश्य भी एकसा ही है। धर्म पालन के हेतुसे ही अधिकतर सभाएं स्थापित हुई हैं। कुछ संस्थाएं सामाजिक कार्य भी करती हैं जैसे कि, सरकारी प्रणालीकी पाठशालाएं आदि चलाना। लेकिन सरकारसे सहायता (grant in aid) मिल जानेपर चालकोंके लिये करनेका सामाजिक कार्य नहीं जैसा रह जाता है। हिन्दी भाषाकी सेवाके लिये ही जिसने निजको अर्पण किया है वैसी यह एक मात्र समाजिक सभा है । सरकारकी ओरसे हिन्दी प्रचारके लिये सहायता मिलना संभवनीय नहीं है। अर्थात, सभाको निरंतर काम करना होगा यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है। मोरिशसमें हिन्दी धीरे धीरे कैसी पीछे हट रही है और यदि ऐसी ही स्थिति रही तो कुछ काल बाद गन्नेकी खेती रूपी बुर्केमें रहनेवाली स्त्रीके समान ही वह नजर आएगी। हमारे अन्दाजसे टापू भरमें दो सौसे अधिक

से विमुख हो जाते हैं। जो कुछ थोडासा पढ़ा है, वह भी दो तीन साल बाद सफा चट हो जाता है। साहित्य की दृष्टिसे तो इस पढाईका कुछ भी महत्व नहीं है। दो तीन साल के अभ्यासमें विद्यार्थियोंको अक्षर–ज्ञान भली भांति हो जाती है और कोई भी पुस्तक वे आसानीके साथ पढ सकते हैं, इतना लाभ निःसंदेह होता है। अर्थात, बीजका अंकुर बन जाता है, उसका पेड बननेकी शक्ति भी उसमें पैदा हो आ-ती है; परन्तु फल लगनेसे पहले ही उसके पत्ते झडने लगते हैं। आम खानेको नहीं मिला तो आमके झाडसे लाभ ही क्या? यही स्थिति इस समय हिन्दी पढ़ाईकी है। पाठशालामें खडी हिन्दी पढाई जाती है और घरमे भोजपुरी बोली जाती है। जानों कि, विद्यार्थियोंके लिये यह खडी हिन्दी, संस्कृत समान ही पुस्तककी एक भाषा हो बैठती है। प्रत्यक्ष व्यवहारमें उस का उपयोग नहीं जैसा है।

ज्ञान, ज्ञानके वास्ते यह जो ज्ञान-उपार्जनका उच्च आदर्श है, वह सर्वसाधारणकी समझके बाहरका है। बापने बेटेको इस लिये पढ़ाता है कि, एक दिन पाठशालासे बाहर आनेपर उसे कुछ नौकरी रोजगार मिले और इज्जतके साथ वह अपना जीवन व्यतीत करें। हिन्दी पढ़ाईमे न तो पेट ही भरता है न इज्जत ही मिलती है। हिन्दी पढाईसे लाभ ही क्या? यही प्रश्न है, जो माता पिताको अपने बच्चोंको हिन्दीकी यथो-चित शिक्षा देनेपर उत्साहित नहीं करता है।

स्वयं माता पिता ऐसे हैं, जो अनपढ होनेसे विद्याकी क़दर नहीं करते हैं। अपनी भाषाका ठीक ज्ञान हो तो वह पुस्तकें

# नवजीवन सम्मेलन सभा

## रावें-रिवियेर जी रांपार

यह संस्था तारीख १५. ५. १९३३ को राजमान्य संस्था घोषित हुई. वहांके प्रसिद्ध रईस स्व० श्री० भजन गोसाईंके उत्साही पुत्र श्री० अनन्त विजाधरकी प्रेरणासे इस संस्थाका जन्म हुआ है. आप फ्रेंच भाषाके एक अच्छे लेखक हैं और स्वतंत्र विचार रखते हैं.

प्रधान श्री० रा० हुलखोरी, कार्यवाह श्री० सु० सिथाम तथा कोषाध्यक्ष श्री० य० गुलजार एवं अन्य महाशयोंके सहयोगसे संस्थाका संचालन होता है. इस समय सभामें १२५ के करीब सदस्य हैं और सभाके साथ जनताकी सहानुभूति है. सदस्यके लिये वार्षिक चन्दा एक रुपया है.

हाल ही मे सभाने एक मकान खरीद करके उसको एक -छा सभा भवन बना दिया है, जिसमें ५००-७०० मनुष्य बठ सकते हैं। चारों ओर चौडा बरन्डा है। सभाकी ओरसे एक रात्रि-पाठशाला चलती है, जिसमें पुत्र पुत्रीओंको हिन्दी भाषाकी शिक्षा दी जाती है।

श्री० श्री० मो० झरी, जदुनन्दन करीमन, ठा० गुलजार, वि० हनुमान, भजन महतो तथा अ० विजाधर आदि सज्जनोंसे सभाको सहायता पहुंची है।

सभाके नामसे ही पता लगता है कि, सभा किस उद्देश्यसे स्थापन हुई है। धार्मिक मत मतांतरोंके झगडोंसे परे

अगरेज़ीके साथ फ्रेंच भाषाकी भारतियोंपर अपनी हुकुमत चलाती है। इसीको परिस्थिति कहते हैं।

हिन्दी भाषाका, जो घर याने युक्त प्रान्त और बिहार, वहीं अब तक राज दरबारमे हिन्दी को स्थान नहीं मिला है। सारा काम आज उर्दूमे होता है। यह होनेपर भी भारतके लोग हिन्दीको राष्ट्र भाषा बनाने की कोशिश कर रहे है। सरकारको शासन करना है उसको अपना सुविधा देखना है, पर प्रजाको अपनी भाषा संभालना है। मोरिशसमें भी हमे यही करना होगा। हिन्दी प्रचारिणी सभाको किस परिस्थिति का और किस स्थितिमें सामना करना है; इस बातको वह भली भांति समझे इसी आशयसे हमने यह लिखा है। हमारे मगजमें नहीं आता हैं कि, क्या किया जाय; परन्तु हिन्दी प्रचारिणी सभा एक संस्था है। दस पाच सिर इस विषयके साथ टकराते रहेंगे तो अवश्य ही कुछ आयोजना घडा सकेंगे। ये पाठशालाएं ही हिन्दी प्रचारके लिये आधार रूप है और इसी हेतुसे उनके सम्बन्धमें हमने जरा विस्तारसे लिखा है। आर्य प्रतिनिधि सभाकी 'विद्या समिति' ने इसी पायेपर काम करना आरम्भ किया है। उनका अनुभव भी लाभदायी होगा। व्याख्यान, उपदेश आदि द्वारा लोगोंमे एतद् विषयक जागृति उत्पन्न करना, समाचार पत्र निकालना, हिन्दीके लेखक, कवि, वक्ता इत्यादिका सम्मान करके उनको पुरस्कार, पारितोषिक देना, फिरता वाचनालय खोलना, हमेशा हिन्दीमे बातचीत करना, सरकारके पीछे पडकर पाठशालाओंमें हिन्दी पढ़ाईका सुयोग्य प्रबन्ध करना, स्थान२ पर प्रौढों के लिये रात्रि पाठशालाएं

उन सज्जनोंको तथा उनके मित्रोंको बड़े परिश्रम करने पड़े हैं। जब बेटा भी खेतमें काम करके दो चार आना ले आता है, तब इस आयको एक गरीब बाप कैसे खो सकता है। शिक्षा का महत्व इन्हें समझाना पड़ता था और बड़ी कठिनाईके साथ वे अपने बच्चोंको पाठशाला भेजनेको तैयार होते थे। ऐसी पाठशाला खोलनेके लिये अहिन्दुओंसे जो विरोध होता था, वह अलग। श्री० श्री० चिकौड़ी तथा रामजाल्सीने इस पाठ-शालाके सम्बन्धमें दो तीन हजार रुपया खर्च किया है। बड़ी मेहनतके बाद सन १९१३ में पाठशाला को सरकारी मदद (grand in aid) मिली और तबसे उसी मददपर वह चल रही है। इंगलिश फ्रेंच भाषाके साथ हिन्दीकी भी पढ़ाई होती है और कुछ धर्म शिक्षा भी दी जाती है। पाठशालामें इस समय ३०० विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं। पाठशालाकी शिक्षा प्राथमिक होती है। यह प्राथमिक शिक्षा, मौरिशसकी सरकार मुफ्त प्रदान करती है।

प्रारम्भसे २० साल तक वकील श्री० रघुवीर रामलाल पाठशालाके मैनेजर थे। पिछले तीन सालसे रोजबेलके डाक्टर कमल शिवगोविन्द उस पदपर नियुक्त हुए हैं। वाकवाके 'आर्य वैदिक स्कूल' के भी आप मैनेजर रह चुके हैं। मैनेजरको कोई वेतन नहीं मिलता है न कोई पारितोषिक ही उसे दिया जाता है। डाक्टर शिवगोविन्द एक निश्चल. कर्मठ और उत्साही जा-ति सेवक हैं। इनके समयमें पाठशाला प्रगति कर रही है। यहांके बैरिस्टर, डाक्टर सर्वसाधारण जनतासे दूर रहनेमें ही अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं, परन्तु डाक्टर शिवगोविन्द अपने

में रहकर काम करनेसे उसका फल तुरन्त देखनेमे आएगा। पढाईकी पुस्तकें भी ऐसी होनी चाहिये कि, जिनमे भारत और मोरिशसके इतिहासके पाठ हो और भाषा सरल तथा सुगम हो। वाद विवादकी बातोंको उनमे स्थान नहीं मिलना चाहिये। ये पाठ्य पुस्तकें यहा ही लिखवाना अच्छा होगा। पंच वार्षिक आयोजनाकी यह एक केवल रूप रेखा है। यह एक सिर्फ सूचना है। हिन्दी प्रचारिणी सभा इसपर विचार करके उसको सजधजके जनताके सामने रखेगी तो हमे आशा है कि, वह उसके सुंदर रूपपर मोहित होकर उसको दौडकर आलिंगन देगी।

कोई पूछ सकता है कि, साक्षर होकर कुछ फायदा भी होगा? हम कहते हैं कि, होगा और बराबर होगा। कुछ दिनोंसे मोरिशसमे मजदूर दल स्थापन करनेकी हलचल जारी है। मजदूरोंमे अधिक संख्या हिन्दुओं की है। यद्यपि खेती काम के साथ ही उनका अधिक संबंध है। उनका संगठन करना हो तो उन्हे पहले साक्षर बनाना ही होगा। अपनी स्थितिका ज्ञान उन्हे तब ही होगा, जब ये कुछ पढना जानेंगे। मोरिशसमे उन्हे सौ साल हो जानेपर भी अपने इर्द गिर्द क्या हो रहा है, उसे वे नहीं जान सकते हैं। उसका कारण यही कि, वे अक्षरके शत्रु हैं। उनका पड़ोसी क्रिओल, समाचार-पत्र पढ़ कर एक घंटेमें दुनियाकी सैर कर आता है, पर हमारे महाशय अपने लाकुजिन (पाकशाला) के मारमीटमें डब डब करने वाले भातका संगीत सुननेमें मस्त रहते है! कुदाड़ी कंधेपर रख कर मजदूरी करके कोई रीतिसे और किसी दशामे पेटकी

हिन्दी पाठशालाएं हैं, और उनमें कुछ नहीं तो चार पांच हजार हिन्दू बाल बालिकाएं हिन्दी लिखने पढनेका अभ्यास करती हैं। यह पढाई जनताकी सहायतासे होती है। इस हालतमें यह सब भी नहीं कह सकते कि, जनता, हिन्दीकी बिलकुल परवाह नहीं करती। यह होनेपर भी हमने, जो कहा है कि, हिन्दी भाषा, मोरिशसमें एक२ कदम हट रही है, वह बात सर्वथा सत्य है। जिसे हम पाठशाला कहते हैं, वास्तवमें वह पाठशाला नहीं है। एक ही अध्यापक पाठशालाके तमाम छात्रोंको (३० या ४०) को पढ़ाता है। एक ही कमरेमें सब श्रेणियोंके बच्चे शिक्षा पाते हैं। पढाई और बच्चोंका शोर गुल साथ साथ चलाता है। कुछ गीताके श्लोक, रामायणकी चौपाईयां, दस पांच वेद मंत्र, पतिव्रता धर्मपर एक व्याख्यान और उठो वीरो तथा करो हवनके गायन इत्यादि कंठस्थ कराकर सालाना जलसोंमें विद्यार्थियोंसे उनकी प्रदर्शनी कराना आदि बातोंमें हिन्दी पढाईकी समाप्ति समझी जाती है। मा बाप अपने बच्चोंको रामायण पढते देखकर फूले नहीं समाते तो कोई अपनी पुत्रीको वेदवती समझने लगते हैं। अध्यपकका कोई मित्र या हितैषी पाठशालाकी परीक्षा करता है और विद्यार्थी धडाधड पास लेकर बाहर निकलते हैं। यहांकी हिन्दी पाठशालाएं उपरोक्त प्रकारकी हैं। दस बारह बरसकी आयु होते ही मा बाप उन्हें निकाल लेते हैं। लडका दो चार पैसा कमा लाता है और लड़की विवाहके लिये घरमें बन्द कर दी जाती है। जिस उम्रमें मज्जा-तंतुमें ज्ञान-संग्रह करने की कुछ शक्ति पैदा होती है, ठीक उसी समय वे पाठशाला

'नाझी' नामका एक नया दल खडा किया। अपने लेखोंसे उसने जर्मन प्रजाको इतना प्रभावित किया कि, जर्मनीके छः करोड याने ६० मिलियनों मनुष्योंने उसके सिद्धान्तोंका स्वीकार किया और यह हिटलर आज जर्मनीका डिक्टेटर अर्थात, सर्वेसर्वा है। यह सब पिछले सात आठ सालमें हुआ है। हारे हुए जर्मनीने अपने सिरपर का बोझा पटक दिया है और वह अब एक पूर्ण तथा इंग्लण्ड, फ्रांस जैसा स्वतंत्र राष्ट्र बन गया है। मित्र राष्ट्रोंने, जिसकी कमर तोड डाली थी, वह इतनी जल्दी कैसे उठ सका? उत्तर यही है कि, जर्मनीके ६० मिलियन मनुष्य लिखे पढे हैं। हिटलरकी बातों को वे पढ़ सकते थे और उसीसे अल्प अवधिमें ऐसी क्रांति वे कर सके। इटलीमें भी ऐसा ही हुआ है। वहां भी सबके सब पढे लिखे हैं। वहांके डिक्टेटरका नाम मुसोलिनी है। जर्मनी और इटलीकी प्रजा अनपढ़ होती तो वैसे छप्पन हिटलर या मुसोलिनीसे कुछ नहीं होता।

मोरिशसके हिन्दू संवादक पिछले २५ सालसे कुछ थोडा नहीं घसीट रहे हैं; पर हमारे कलकत्तिया भाई जहांके तहां पडे हुए हैं। ये क्यों नहीं उठते? इसी लिये कि, वे पढे नहीं हैं; जिससे कोई आवाज या कोई विचार उनके कानों तक पहुंच ही नहीं सकता है। धार्मिक, सामाजिक या राजकीय कोई भी आन्दोलन हो, लोग साक्षर हो तो उसे शीघ्रतासे समझ सकते हैं और उसमें सिद्धि पाते है। हिन्दी प्रचारके संबंधमें उपरोक्त सभाको, जो कुछ करना है, वह तो करेगी ही; क्योंकि उसका अवतार ही उसी वास्ते हुआ है। लेकिन हिन्दुओंके

आदि पढ़कर अपनी जातिका इतिहास, धर्म, नीति, संस्कृता आदि समझ सकेगा और कभी नहीं भूलेगा कि, वह एक हिन्दू है। यह एक मानसिक और सूक्ष्म लाभ है। वह यही समझता है कि, इस भार और ज्ञानसे प्रत्यक्ष लाभ तो कुछ भी नहीं है। उसके विचारसे वह केवल दिन बहलानेका एक साधन हो सकेगा। इस हालतमें कौन पिता अपने पुत्रको हिन्दी सीखनेपर बाध्य करेगा? हम समझते हैं कि, इन बापोंको पहिले ही पढ़ाना चाहिये ताकि वे विद्याकी कदर जानें। रात्रि पाठशालामें यह काम हो सकेगा। दिन भर काम करके थके मान्दे गृहस्थाश्रमी पिताओंके लिये यह एक व्रत ही है, पर अज़माना चाहिये। हिन्दीकी आज, जो स्थिति पायी जाती है, उसमें अध्यापक, बालक या जनता किसीका भी दोष नहीं है। वे सब आदर पात्र हैं। यहांकी परिस्थिति ही ऐसी है कि, उनके उद्योगका फल वे देख नहीं सकते हैं। हमारी ही अकल काम नहीं करती है कि, हम कुछ उपाय बता सकें। मारी पाठ्य पुस्तकोंमें इस संबंधके हमारे विचार हमने दर्शाये हैं।

भारत वर्षमें जो लोग यहां आये थे, उनमेंसे अधिकांश अनपढ़ ही था और वह उस श्रेणीका था कि, लिखना पढ़ना जिसका कुलाचार नहीं था। उनके संस्कार ही दूसरे थे। वे आये थे कमानेके वास्ते, हिन्दी सीखने या सीखानेके वास्ते नहीं। इस समय वे कमा चुके हैं और अब उन्हें अपनी भाषाकी सूझी है और करना है सामना अंगरेजी और फ्रेंच भाषाओंके साम्राज्यका। अन्य उपनिवेशोंमें यथा फिजी आदिमें केवल अंगरेजीका ही मुकाबला करना होता है; परन्तु मोरिशसमें

वर्ष पूर्व जब हमारा "मोरिशसका इतिहास" प्रकट हुआ तब कतिपयोंने हमारी पुस्तकके विरुद्ध एक तोफान खडा कर दिया था। आंधीका सामना कौन कर सकता था ? पर एक हिन्दी साहित्य प्रेमी उत्साही वीर था, जिसने हमें पत्र लिखकर हमारी पुस्तकके लिये हमको बधाई देते हुए हम और हमारी पुस्तक का गुणगान गाया था, और स्वयं हमारी भेट की थी। वे यही गुप्तजी हैं। उनका पत्र और उनके दिलासेने हमारी दुःखित आत्माको थोड़ी सी शांति प्रदान कर दी थी। यह भी हम दर्ज करना चाहते हैं। हम आशा करते हैं कि, उनकी इस हिन्दी भाषाकी भक्तिके लिये उनपर कोई आपति न गुजरेगी।

इस सभाके मार्फत पांच रात्रि-पाठशालाएं भी चलती हैं, जिनमें लडकोंकी पढाई होती है। श्री० रामगुन जीबसिया आरम्भसे सहयोग देते हैं। महावीर फागूजी कोपाध्यक्ष हैं। श्री० घूरनसिंह M. B. E. की ओरसे भी सभाको आर्थिक सहायता पहुंची है। सभाकी तरफसे कुछ परिमित हस्तलिखित साहित्य का प्रचार भी होता है। "सरस्वती मंदिर" नामका एक भवन बनानेका सभाका विचार है। यों तो मोरिशसमें हिन्दुओंकी ६३ संस्थाएं हैं; पर हिन्दी प्रचारिणी सभा प्रति हमारा विशेष भाव है। उनका कार्य-क्षेत्र भी विस्तीर्ण है। यह सभा सतत दीर्घ काल तक काम कर सकती है। विद्या दान ही उसका कार्य होनेसे जनताकी सहानुभूति उसे मिल सकती है। सभाको हम दीर्घायु इच्छते हैं, और मोरिशसकी हिन्दू जनताको, अपना सहयोग, सहानुभूति और सहायता द्वारा उसकी

खोलना हिन्दी प्रचारके और भी मार्ग हैं। इन सभोंसे काम लेना चाहिये।

हिन्दी प्रचारिणी सभा और एक काम कर सकती है। एक पंच वार्षिक कार्यक्रम बनाया जाय, जिसमें टापू भरके समस्त हिन्दू पुरुष वर्गको साक्षर बना दिये जानेकी योजना हो। जाति, धर्म, पंथ सबको एक तरफ रखकर केवल इस एक ही ओर अपना सारा बल लगा दिया जाय। मोरिशसमे जितनी सभा सोसाइटियां हैं, उन सबोंके साथ सहयोग करना होगा। धनी मानी लोगोंकी सहानुभूति प्राप्त करनी होगी। हर एक जिलेमे दस पंद्रह प्रतिष्ठित मनुष्योंकी एक कमिटी नियुक्तकी जाए। वह अपने अपने जिलेमें साक्षरताके प्रचारके लिये जवाबदार रहे। यह एक महान और कठिन कार्य है और उसके लिये पैसा तथा कार्यकर्त्ताओंकी आवश्यकता है। पाच सालके बाद एक भी हिन्दू पुरुष अनपढ नहीं रह सके इस श्रेष्ठ उद्देश्यसे हिन्दी प्रचारिणी यदि कार्य-क्षेत्रमें उतरे तो हमे आशा है कि, उसके लिये पैसा और कार्यकर्त्ता मिल सकेंगे। इस पंच वर्षीय आयोजनामे हमने स्त्री-शिक्षाके प्रश्नको हाथ नहीं लगाया है। पुरुष वर्गके साक्षर हो जानेपर ध्यान देना ठीक होगा। साक्षरताका अर्थ, लोगोंको वेद गीता पढाने का नहीं है; किन्तु मामूली हिन्दी लिखना पढना ही है। उतना हो जानेपर ऊंची शिक्षाके लिये क्या करना चाहिये उसका विचार पीछेसे ही कार्यकर्त्ताओंको सूझेगा। पहले मोताई लॉग मे आरम्भ करके एक जलसे द्वारा मारिशसको उस प्रोग्रामकी सूचना देना बहुत उचित होगा। पांच वर्षके लिये सीमित स्कीम

वेचू माधु, माननीय गजाधर आदि सज्जनोंके आगनोंमे नृत्य करनेवाली लक्ष्मी यदि परस्पर प्रेमसे चुम्बन करेगी तो हमें विश्वास है कि, मोरिशसके समस्त देवी देवता उनपर पुष्प-वृष्टि करके उनको शुभाशिर्वाद देंगे। इस गंगा जमनाके प्रवाह के जलसे मोरिशसकी हिन्दीकी खेती क्या हरी भरी नहीं होगी। हिन्दी प्रचारिणी सभाको उपरोक्त सरस्वती पुत्र और लक्ष्मी पुत्रोंसे परामर्श करना चाहिये। इस लक्ष्मी सरस्वतीके मिलनेका सुख-स्वप्न देखते हुए हमने हमारे लेखको तथा पुस्तककी भी समाप्ति कर देते हैं।

## पुनरागमनायच

ओ रेवुआर (au revoir)

खाईमें कुछ भर देना यदि इसी तरह जीवन व्यतीत करना है, जैसा कि आज तक होता आया है; तो लिखाई पढ़ाई की कोई जरूरत नहीं है। परन्तु मजदूरोंका दल स्थापन करना उनका संगठन करना, जितना काम करते हैं, जितना पसीना बहाते हैं, उसके प्रमाणमें वेतन मिलता है या नहीं यह देखना, काममें दुर्घटना हो जानेपर हर्जाना मांगना, कामका पूरा बदला मिलनेपर अपने हकके लिये मालिकोंके पीछे पड़ना और जीवन को जरा सुखमय बनाना इत्यादि मजदूरी के बाहरका कार्य करना हो तो सिवाय साक्षरताके हो नहीं सकता है। सभ्य संसारके मजदूर साक्षर होते हैं। उन्होंने अपनी स्थिति सुधार ली है। हमें भी उसी रास्तेसे जाना चाहिये। मजदूरी करनेमें न पाप है न शर्म ही। हर एक मनुष्य अपने२ ढंगका मजदूर ही है। पढ़ा मजदूर, चाहे कुदाड़ीवाला, चाहे कलमवाला, अपनी मजदूरीका बदला योग्य प्रमाणमें मांगता है और अनपढ़ मजदूर, बैलके समान दिया हुआ चारा खाकर दिन भर चुप चाप नीचे मुंडी डालकर मालिक का बोझा खींचता ही रहता है। इतना ही केवल दोनोंमें फरक है।

जर्मनी देशका नाम हमारे पाठक जानते ही हैं। उसको मोरिशसमें 'लालमाई' कहते हैं। महा युद्धमें जर्मनी हार गया था और अंगरेज, फ्रांस आदि मित्र राष्ट्रोंने उसको आज तक दबा रखा था। जर्मनीमें अनेक राजनैतिक दल पैदा हुए, पर किसीसे जर्मनीकी गरदनपर रखे हुए पत्थरको उठाकर फेंक देना नहीं बन सका। अन्तमें हिटलर नामक एक साहसी व्यक्तिने

अगरेज़ीके साथ फ्रेंच भाषाकी भारतियोंपर अपनी हुकुमत चलाती है। इसीको परिस्थिति कहते है।

हिन्दी भाषाका, जो घर याने युक्त प्रान्त और बिहार, वहीं अब तक राज दरबारमे हिन्दी को स्थान नहीं मिला है। सारा काम राज उर्दूमे होता है। यह होनेपर भी भारतके लोग हिन्दीको राष्ट्र भाषा बताने की कोशिश कर रहे हैं। सरकारको शासन करना है उसको अपना सुविधा देखना है; पर प्रजाकी अपनी भाषा संभालना है। मोरिशसमे भी हमे यही करना होगा। हिन्दी प्रचारिणी सभाको किस परिस्थिति का और किस स्थितिमें सामना करना है; इस बातको वह भली भांति समझे इसी आशयसे हमने यह लिखा है। हमारे मगजमे नहीं आता है कि, क्या किया जाय; परन्तु हिन्दी प्रचारिणी सभा एक सस्था है। दस पाच सिर इस विषयके साथ टकराते रहेंगे तो अवश्य ही कुछ आयोजना घडा सकेंगे। ये पाठशालाएं ही हिन्दी प्रचारके लिये आधार रूप है और इसी हेतुसे उनके सम्बन्धमें हमने जरा विस्तारसे लिखा है। आर्य प्रतिनिधि सभाकी 'विद्या समिति' ने इसी पायेपर काम करना आरम्भ किया है। उनका अनुभव भी लाभदायी होगा। व्याख्यान, उपदेश आदि द्वारा लोगोंमे एतद् विषयक जागृति उत्पन्न करना, समाचार पत्र निकालना, हिन्दीके लेखक, कवि, वक्ता इत्यादिका सम्मान करके उनको पुरस्कार, पारितोषिक देना, फिरता वाचनालय खोलना, हमेशा हिन्दीमे बातचीत करना, सरकारके पीछे पड़कर पाठशालाओंमे हिन्दी पढ़ाईका सुयोग्य प्रबन्ध करना, स्थान२ पर प्रौढों के लिये रात्रि पाठशालाएं

नेता और हिन्दू समाजके हितचिंतकोंपर भी, जो भारी जवाब-दारी है, उसे उनको पूरी करनी चाहिये। उन्नति करो कहने से उन्नति होती नहीं। पहिले उनको पढाओ।

इस सभाकी स्थापनामें पांच छः साल लगे हैं; पर वह दृढ़ पायेपर जम गई है यह एक पहिली प्रसन्नताकी बात है। मोतांई लोंगके साहित्य प्रेमी निवासियोंने अपने गांवको 'धारा-नगरी' यह हिन्दू-कर्ण-मधुर नाम दिया है। प्राचीन कालमें साहित्य विशारदोंका वह नगरी एक केंद्र था। कहते हैं कि, महा कवि कालिदासका निवास वहीं था। इस मोरिशीय धारा नगरी में भी वर्त्तमान समयके साहित्य सेवी श्री० रामलाल भगत और उनके भाई सूरजप्रसाद निवास करते हैं। आप दोनों हिन्दीके प्रेमी हैं और विशेष कर उन्हींके उद्योगसे सभा की स्थापना हुई है। भारतके प्रसिद्ध हिन्दी मासिक आदि मंगाकर हिन्दी साहित्यमें रुचि रखनेवाला मोरिशसमें यही एक कुटुम्ब है। पं० बोलाराम मुक्ताराम सभाके प्रधान हैं। श्री० गिरधारी ंने लगभग ३,००० रुपया मूल्यकी ११ बीघा भूमि सभा ` प्रदान की है। इसकी सालाना आमदनी ३०० रुपया है। पिछले तीन सालसे सार्वजनिक चंदे द्वारा और एक बीघा ज-मीन सभाके लिये खरीदी गई है। उससे भी ५०–७५–१०० तक वार्षिक आय हो जाती है। एक दिन भरकी पाठशाला सभाकी ओरसे चलती है, जिसमें लगभग ५०--६० बालिकाएं हिन्दीकी प्राथमिक शिक्षा पाती है। अध्यापक श्री० नेमना-रायण गुप्त है। आप भी हिन्दीके उत्साही भक्त हैं। उसके उत्साहका एक नमूना हमारे पास अब तक मौजूद है। तेरह

में रहकर काम करनेसे उसका फल तुरन्त देखनेमे आएगा। पढाईकी पुस्तकें भी ऐसी होनी चाहिये कि, जिनमे भारत और मोरिशसके इतिहासके पाठ हो और भाषा सरल तथा सुगम हो। वाद विवादकी बातोंको उनमे स्थान नहीं मिलना चाहिये। ये पाठ्य पुस्तकें यहां ही लिखवाना अच्छा होगा। पंच वार्षिक आयोजनाकी यह एक केवल रूप रेखा है। यह एक सिर्फ सूचना है। हिन्दी प्रचारिणी सभा इसपर विचार करके उसको सजधजके जनताके सामने रखेगी तो हमे आशा है कि, वह उसके सुंदर रूपपर मोहित होकर उसको दौडकर आलिंगन देगी।

कोई पूछ सकता है कि, साक्षर होकर कुछ फायदा भी होगा? हम कहते हैं कि, होगा और बराबर होगा। कुछ दिनोंसे मोरिशसमें मजदूर दल स्थापन करनेकी हलचल जारी है। मजदूरोंमे अधिक संख्या हिन्दुओं की है। यद्यपि खेती काम के साथ ही उनका अधिक संबंध है। उनका संगठन करना हो तो उन्हें पहले साक्षर बनाना ही होगा। अपनी स्थितिका ज्ञान उन्हे तब ही होगा, जब वे कुछ पढना जानेंगे। मोरिशसमे उन्हे सौ साल हो जानेपर भी अपने इर्द गिर्द क्या हो रहा है, उसे वे नहीं जान सकते हैं। उसका कारण यही कि, वे अक्षरके शत्रु हैं। उनका पड़ोसी क्रिओल, समाचार-पत्र पढ़ कर एक घंटेमें दुनियाकी सैर कर आता है; पर हमारे महाशय अपने लाकुजिन (पाकशाला) के मारमीटमे डब डब करने वाले भातका संगीत सुननेमे मस्त रहते है! कुदाड़ी कंधेपर रख कर मजदूरी करके कोई रीतिसे और किसी दशामे पेटकी

अभिवृद्धि करनेकी प्रार्थना करते हैं। इस समय मोरिशममें हिन्दीकी क्या दशा है, भाषा जीती जागती रखनेके लिये क्या उपाय करना चाहिये, भाषाका लोप हो जानेपर हिन्दुओं पर धार्मिक और सामाजिक क्या परिणाम होनेका संभव है आदि बातोंका विचार करके इस सभाकी स्थापना हुई है। उसके जन्मदाता, चालक और सहायकोंको हम धन्यवाद देने बिना नहीं रह सकते।

सनातन धर्माङ्कके उत्साही, परिश्रमी और बहुश्रुत संपादक श्री० नरसिहदासने लगभग पिछले ३० सालसे राष्ट्र भाषा हिन्दीका झण्डा मोरिशसमे फहराता रखा है। इसी प्रकार एकः कालीन मोरिशस इंडियन टाईम्सके भूत पूर्व संपादक पं० देवदत्त शर्मा तथा पं० पं० काशीनाथ, लक्ष्मीनारायण चौबे, बेणीमाधव, प्रयागदत्त राजपाल, जदुनंदन, गिरजानन बी० ए० श्री. श्री. गुमानीसिंह, भूतपूर्व "मोरिशस मित्र" के संपादक मंगलसिंह, हीरालाल गुप्त प्रभृति अनुभवी हिन्दी साहित्य सेवक एवं पं० पं० रामजगन शर्मा, दीपलाल शर्मा, देवशरण, रामरतन, अवधेश, लक्ष्मीप्रसाद बद्रीनारायण, श्री० श्री० रामरतन विद्यार्थी, जग्गू, आर० रामटोहल, वासुदेव शंभु, संदरसिंह, शंभविहारी, धनपत घूरा, हेमराज, बाबूराम शिवलाल, शिवप्रसाद जिवलाल, एस० बर्टन, वासुदेव नीताई, सुंदर शर्मा, रामप्यार गुप्त, ब्रिजचंद मंगार, सु० बिसुनदयाल आदि उदयमान लेखकोंकी इष्ट देवी सरस्वती—और श्री० श्री० दुखी गंगा, घूरनसिंह एम० बी० ई०, हनुमान बिसेसर, पंचुप्रसाद, शिवगोविन्द, दुर्गाप्रसाद भगत, सेठ वल्लभभाई, सेठ नत्थुभाई, सेठ भगवानदास काला,

'नात्सी' नामका एक नया दल खडा किया। अपने लेखोंसे उसने जर्मन प्रजाको इतना प्रभावित किया कि, जर्मनीके छः करोड याने ६० मिलिमों मनुष्योंने उसके सिद्धान्तोंका स्वीकार किया और यह हिटलर आज जर्मनीका डिक्टेटर अर्थात, सर्वेसर्वा है। यह सब पिछले सात आठ सालमें हुआ है। हारे हुए जर्मनीने अपने सिरपर का बोझा पटक दिया है और वह अब एक पूर्ण तथा इंग्लण्ड, फ्रान्स जैसा स्वतंत्र राष्ट्र बन गया है। मित्र राष्ट्रोंने, जिसकी कमर तोड डाली थी, वह इतनी जल्दी कैसे उठ सका ? उत्तर यही है कि, जर्मनीके ६० मिलियों मनुष्य लिखे पढे हैं। हिटलरकी बातों को वे पढ़ सकते थे और उसीसे अल्प अवधिमें ऐसी क्रांति वे कर सके। इटलीमें भी ऐसा ही हुआ है। वहां भी सबके सब पढे लिखे हैं। वहांके डिक्टेटरका नाम मुसोलिनी है। जर्मनी और इटलीकी प्रजा अनपढ़ होती तो वैसे छप्पन हिटलर या मुसोलिनीसे कुछ नहीं होता।

मोरिशसके हिन्दू संपादक पिछले २५ सालसे कुछ थोडा नहीं घसीट रहे हैं, पर हमारे कलकतिया भाई जहांके तहां पडे हुए हैं। ये क्यों नहीं उठते ? इसी लिये कि, वे पढे नहीं हैं; जिससे कोई आवाज या कोई विचार उनके कानों तक पहुंच ही नहीं सकता है। धार्मिक, सामाजिक या राजकीय कोई भी आन्दोलन हो, लोग साक्षर हो तो उसे शीघ्रतासे समझ सकते हैं और उसमें सिद्धि पाते है। हिन्दी प्रचारके संबंधमें उपरोक्त सभाको, जो कुछ करना है, वह तो करेगी ही; क्योंकि उसका अवतार ही उसी वास्ते हुआ है। लेकिन हिन्दुओंके

# शान्ति पाठ

अब केवल एक विधि शेष रह गयी है, और वह है शांति पाठ। आज कल इसका बहुत प्रचार हो गया है। वह एक धार्मिक क्रिया समझी जाती है। हम यहांपर स्पष्ट करना चाहते हैं कि, इस पुस्तकमे धर्म चर्चा नहीं है, किन्तु धर्मकी वर्त्तमान स्थितिकी चर्चा हैं। दूधका रंग सफेद क्यों होता है इस संबंधकी चिकित्सा इस पुस्तकमें नहीं है; किन्तु दूध उबाला अच्छा या कच्चा अच्छा इस संबंधकी हमने चर्चा की है। धर्म चर्चा और धर्म स्थितिकी चर्चा इसमे क्या फरक है, यह हमारे पाठक अब भली भांति समझ सकेंगे। वैदिक शांति पाठ, धर्म विधिके पश्चात किया जाता है। इस पुस्तकमें कोई धर्म चर्चा या धर्म-विधि न होनेसे वैसा शान्ति पाठ करना औचित्यसे विपरीत मालूम होता है; अतएव प्रसंगके अनुकूल कोई नवीन शान्ति पाठ हमे रचना चाहिये। प्राचीन धार्मिक शान्ति पाठमे आकाश, पृथ्वी, जल, वायु, तेज, औषधि, वनस्पति आदियोंसे शांति मागी जाती है, परन्तु हमारे मोरिशसीय सामाजिक शांति पाठमें पंच महाभूतादिके स्थानपर हम निम्न लिखितोंकी स्थापना करते हैं और कहते है, शांति हिन्दू, शान्ति नेता, शान्ति लेखक, शान्ति कवि, शान्ति विद्वान, शान्ति मूर्ख, शान्ति टीकाकार, शान्ति पंडित, शान्ति मित्र, शान्ति शत्रु।

शान्तिः शान्तिः शान्तिः

वर्ष पूर्व जब हमारा "मोरिशसका इतिहास" प्रकट हुआ तब कतिपयोंने हमारी पुस्तकके विरुद्ध एक तोफान खडा कर दिया था। आंधीका सामना कौन कर सकता था? पर एक हिन्दी साहित्य प्रेमी उत्साही वीर था, जिसने हमे पत्र लिखकर हमारी पुस्तकके लिये हमको बधाई देते हुए हम और हमारी पुस्तक का गुणगान गाया था, और स्वयं हमारी भेट की थी। वे यही गुप्तजी हैं। उनका पत्र और उनके दिलासेने हमारी दुःखित आत्माको थोड़ी सी शांति प्रदान कर दी थी। यह भी हम दर्ज करना चाहते हैं। हम आशा करते हैं कि, उनकी इस हिन्दी भाषाकी भक्तिके लिये उनपर कोई आपति न गुजरेगी।

इस सभाके मार्फत पांच रात्रि-पाठशालाएं भी चलती हैं, जिनमें लडकोंकी पढाई होती है। श्री० रामगुन जीबसिया आरम्भसे सहयोग देते हैं। महावीर फागूजी कोषाध्यक्ष हैं। श्री० घूरनसिंह M. B. E. की ओरसे भी सभाको आर्थिक सहायता पहुंची है। सभाकी तरफसे कुछ परिमित हस्तलिखित साहित्य का प्रचार भी होता है। "सरस्वती मंदिर" नामका एक भवन बनानेका सभाका विचार है। यों तो मोरिशसमें हिन्दुओंकी ६३ संस्थाएं हैं; पर हिन्दी प्रचारिणी सभा प्रति हमारा विशेष भाव है। उनका कार्य-क्षेत्र भी विस्तीर्ण है। यह सभा सतत दीर्घ काल तक काम कर सकती है। विद्या दान ही उसका कार्य होनेसे जनताकी सहानुभूति उसे मिल सकती है। सभाको हम दीर्घायु इच्छते हैं, और मोरिशसकी हिन्दू जनताको, अपना सहयोग, सहानुभूति और सहायता द्वारा उसकी

खोलना हिन्दी प्रचारके और भी मार्ग हैं। इन सभोंसे काम लेना चाहिये।

हिन्दी प्रचारिणी सभा और एक काम कर सकती है। एक पंच वार्षिक कार्यक्रम बनाया जाय, जिनमें टापू भरके समस्त हिन्दू पुरुष वर्गको साक्षर बना दिये जानेकी योजना हो। जात, धर्म, पंथ सबको एक तरफ रखकर केवल इस एक ही ओर अपना सारा बल लगा दिया जाय। मोरिशसमें जितनी सभा सोसाइटियां हैं, उन सबोंके साथ सहयोग करना होगा। धनी मानी लोगोंकी सहानुभूति प्राप्त करनी होगी। हर एक जिलेमें दस पंद्रह प्रतिष्ठित मनुष्योंकी एक कमिटी नियुक्तकी जाए। वह अपने अपने जिलेमें साक्षरताके प्रचारके लिये जवाबदार रहे। यह एक महान और कठिन कार्य है और उसके लिये पैसा तथा कार्यकर्त्ताओंकी आवश्यकता है। पाच सालके बाद एक भी हिन्दू पुरुष अनपढ नहीं रह सके इस श्रेष्ठ उद्देश्यसे हिन्दी प्रचारिणी यदि कार्य-क्षेत्रमें उतरे तो हमे आशा है कि, उसके लिये पैसा और कार्यकर्त्ता मिल सकेंगे। इस पंच वर्षीय आयोजनामें हमने स्त्री-शिक्षाके प्रश्नको हाथ नहीं लगाया है। पुरुष वर्गके साक्षर हो जानेपर ध्यान देना ठीक होगा। साक्षरताका अर्थ, लोगोंको वेद गीता पढाने का नहीं है; किन्तु मामूली हिन्दी लिखना पढना ही है। उतना हो जानेपर ऊंची शिक्षाके लिये क्या करना चाहिये उसका विचार पीछेसे ही कार्यकर्त्ताओंको सूझेगा। पहले मोताई लोंग मे आरम्भ करके एक जलसे द्वारा मारिशसको उस प्रोग्रामकी सूचना देना बहुत उचित होगा। पांच वर्षके लिये सीमित स्कीम

वेचू माधु, माननीय गजाधर आदि सज्जनोंके आंगनोंमे नृत्य करनेवाली लक्ष्मी यदि परस्पर प्रेमसे चुम्बन करेगी तो हमें विश्वास है कि, मोरिशसके समस्त देवी देवता उनपर पुष्प-वृष्टि करके उनको शुभाशिर्वाद देंगे। इस गंगा जमनाके प्रवाह के जलसे मोरिशसकी हिन्दीकी खेती क्या हरी भरी नहीं होगी। हिन्दी प्रचारिणी सभाको उपरोक्त सरस्वती पुत्र और लक्ष्मी पुत्रोंसे परामर्श करना चाहिये। इस लक्ष्मी सरस्वतीके मिलनेका सुख-स्वप्न देखते हुए हमने हमारे लेखकी तथा पुस्तककी भी समाप्ति कर देते हैं।

## पुनरागमनायच

ओ रेवुआर (au revoir)

खाईमें कुछ भर देना यदि इसी तरह जीवन व्यतीत करना है, जैसा कि आज तक होता आया है, तो लिखाई पढ़ाई की कोई जरूरत नहीं है। परन्तु मजदूरोंका दृढ़ स्थापन करना उनका संगठन करना, जितना काम करते हैं, जितना पसीना बहाते हैं, उसके प्रमाणमें वेतन मिलता है या नहीं यह देखना, काममें दुर्घटना हो जानेपर हरजाना मांगना, कामका पूरा बदला मिलनेपर अपने हकके लिये मालिकोंके पीछे पड़ना और जीवन को जरा सुखमय बनाना इत्यादि मजदूरी के बाहरका कार्य करना हो तो सिवाय साक्षरताके हो नहीं सकता है। सभ्य समारके मजदूर साक्षर होते हैं। इन्होंने अपनी स्थिति सुधार ली है। हमें भी उसी रास्तेसे जाना चाहिये। मजदूरी करनेमें न पाप है न शर्म ही। हर एक मनुष्य अपने२ ढंगका मजदूर ही है। पढ़ा मजदूर, चाहे कुदाडीवाला, चाहे कलमवाला, अपनी मजदूरीका बदला योग्य प्रमाणमें मांगता है और अनपढ़ मजदूर, बैलके समान दिया हुआ चारा खाकर दिन भर चुप चाप नीचे मुंडी डालकर मालिक का बोझा खींचता ही रहता है। इतना ही केवल दोनोंमें फरक है।

जर्मनी देशका नाम हमारे पाठक जानते ही हैं। उसको मोरिशसमें 'लालमाई' कहते हैं। महा युद्धमें जर्मनी हार गया था और अंगरेज, फ्रांस आदि मित्र राष्ट्रोंने उसको आज तक दबा रखा था। जर्मनीमें अनेक राजनैतिक दल पैदा हुए, पर किसीसे जर्मनीकी गरदनपर रखे हुए पत्थरको उठाकर फेंक देना नहीं बन सका। अन्तमें हिटलर नामक एक साहसी व्यक्तिने

नेता और हिन्दू समाजके हितचिंतकोंपर भी, जो भारी जवाब-दारी है, उसे उनको पूरी करनी चाहिये। उन्नति करो कहने से उन्नति होती नहीं। पहिले उनको पढाओ।

इस सभाकी स्थापनामें पांच छ: साल लगे हैं; पर वह दृढ़ पायेपर जम गई है यह एक पहिली प्रसन्नताकी बात है। मोतांई गाँवके साहित्य प्रेमी निवासियोंने अपने गांवको 'धारा-नगरी' यह हिन्दु-कर्ण-मधुर नाम दिया है। प्राचीन कालमें साहित्य विशारदोंका वह नगरी एक केंद्र था। कहते हैं कि, महा कवि कालिदासका निवास वहीं था। इस मोरिशीय धारा नगरी में भी वर्त्तमान समयके साहित्य सेवी श्री० रामलाल भगत और उनके भाई सूरजप्रसाद निवास करते हैं। आप दोनों हिन्दीके प्रेमी हैं और विशेष कर उन्हींके उद्योगसे सभा की स्थापना हुई है। भारतके प्रसिद्ध हिन्दी मासिक आदि मंगाकर हिन्दी साहित्यमें रुचि रखनेवाला मोरिशसमें यही एक कुटुम्ब है। पं० बोलाराम झुक्काराम सभाके प्रधान हैं। श्री० गिरधारी भगतजीने लगभग ३,००० रुपया मूल्यकी ११ बीघा भूमि सभा को प्रदान की है। इसकी सालाना आमदनी ३०० रुपया है। पिछले तीन सालसे सार्वजनिक चंदे द्वारा और एक बीघा ज-मीन सभाके लिये खरीदी गई है। उससे भी ५०–७५–१०० तक वार्षिक आय हो जाती है। एक दिन भरकी पाठशाला सभाकी ओरसे चलती है, जिसमें लगभग ५०--६० बालिकाएं हिन्दीकी प्राथमिक शिक्षा पाती है। अध्यापक श्री० नेमना-रायण गुप्त है। आप भी हिन्दीके उत्साही भक्त हैं। उसके उत्साहका एक नमूना हमारे पास अब तक मौजूद है। तेरह

अभिवृद्धि करनेकी प्रार्थना करते हैं। इस समय मोरिशसमें हिन्दीकी क्या दशा है, भाषा जीती जागती रखनेके लिये क्या उपाय करना चाहिये, भाषाका लोप हो जानेपर हिन्दुओं पर धार्मिक और सामाजिक क्या परिणाम होनेका संभव है आदि बातोंका विचार करके इस सभाकी स्थापना हुई है। उसके जन्मदाता, चालक और सहायकोंको हम धन्यवाद देने बिना नहीं रह सकते।

सनातन धर्मार्कके उत्साही, परिश्रमी और बहुश्रुत संपादक श्री० नरसिंहदासने लगभग पिछले ३० सालसे राष्ट्र भाषा हिन्दीका झण्डा मोरिशसमें फहराता रखा है। इसी प्रकार एक कालीन मोरिशस इंडियन टाईम्सके भूत पूर्व संपादक पं० देवदत्त शर्मा तथा पं० पं० काशीनाथ, लक्ष्मीनारायण चौबे, बेणीमाधव, प्रयागदत्त राजपाल, जदुनंदन, गिरजानन बी० ए० श्री. श्री. गुमानीसिंह, भूतपूर्व "मोरिशस मित्र" के संपादक मँगलसिंह, हीरालाल गुप्त प्रभृति अनुभवी हिन्दी साहित्य सेवक एवं पं० पं० रामजगन शर्मा, दीपलाल शर्मा, देवशरण, रामरतन, अवधेश, लक्ष्मीप्रसाद बद्रीनारायण, श्री० श्री० रामरतन विद्यार्थी, अग्गू, आर० रामटोहल, वासुदेव शंभु, सुंदरसिंह, शैनविहारी, धनपत घूरा, हेमराज, बाबूराम शिवराज, शिवप्रसाद जिवलाल, एस० बर्टन, वासुदेव नीताई, सुंदर शर्मा, रामप्यार गुप्त, ब्रिजचंद मंगर, सु० बिसुनदयाल आदि उदयमान लेखकोंकी इष्ट देवी सरस्वती—और श्री० श्री० दुखी गंगा, घूरनसिंह एम० बी० ई०, हनुमान बिसेसर, पंचुप्रसाद, शिवगोविन्द, दुर्गाप्रसाद भगत, सेठ वल्लभभाई, सेठ नत्थुभाई, सेठ भगवानदास काला,

# शान्ति पाठ

---

अब केवल एक विधि शेष रह गयी है, और वह है शांति पाठ। आज कल इसका बहुत प्रचार हो गया है। वह एक धार्मिक क्रिया समझी जाती है। हम यहां पर स्पष्ट करना चाहते है कि, इस पुस्तकमे धर्म चर्चा नहीं है, किन्तु धर्मकी वर्त्तमान स्थितिकी चर्चा हैं। दूधका रंग सफेद क्यों होता है इस संबंधकी चिकित्सा इस पुस्तकमें नहीं है; किन्तु दूध उबाला अच्छा या कच्चा अच्छा इस संबंधकी हमने चर्चा की है। धर्म चर्चा और धर्म स्थितिकी चर्चा इसमे क्या फरक है, यह हमारे पाठक अब भली भांति समझ सकेंगे। वैदिक शांति पाठ, धर्म विधिके पश्चात किया जाता है। इस पुस्तकमें कोई धर्म चर्चा या धर्म-विधि न होनेसे वैसा शान्ति पाठ करना औचित्यसे विपरीत मालूम होता है; अतएव प्रसंगके अनुकूल कोई नवीन शान्ति पाठ हमे रचना चाहिये। प्राचीन धार्मिक शान्ति पाठमे आकाश, पृथ्वी, जल, वायु, तेज, औषधि, वनस्पति आदियोंसे शांति मागी जाती है, परन्तु हमारे मोरिशसीय सामाजिक शांति पाठमें पंच महाभूतादिके स्थानपर हम निम्न लिखितोंकी स्थापना करते हैं और कहते है, शांति हिन्दू, शान्ति नेता, शान्ति लेखक, शान्ति कवि, शान्ति विद्वान, शान्ति मूर्ख, शान्ति टीकाकार, शान्ति पंडित, शान्ति मित्र, शान्ति शत्रु।

शान्ति. शान्तिः शान्तिः